दो शब्द

"शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्" "एक तन्दुरुस्ती हजार नियामत" आदि उक्तियों द्वारा सभी देश निवासियों और धर्मावलम्बियों ने एक मत और एक स्वर से स्वास्थ्य को ही सर्वोच्च आसन दिया है। इसी लक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुये हमारे नेताओं ने हमें स्वतन्त्रता दिलाने के बाद हमारे स्वास्थ्योन्नति के साधनों को सफल बनाने के हेतु अपना क़दम बढ़ाया है और फलस्वरूप "स्वास्थ्य विज्ञान" तथा "शरीर रचना शास्त्र" आदि महत्वपूर्ण विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान दिलाया गया क्योंकि वह इस बात को भली भांति अनुभव करते हैं कि राष्ट्र ध्वज का मान तथा प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए भारतीय युवकों को निरारोग्य एवं शक्तिशाली बनना कितना आवश्यक है। इतना होते हुये भी यही लिखना पड़ता है कि इस विषय पर अपनाने योग्य जो पुस्तकें मिलती हैं व अधिकांश में अंग्रेजी भाषा में ही मिलती हैं। मातृ भाषा में इस विषय पर जो कुछ थोड़ी बहुत पुस्तकें प्र्याप्त हैं वह एक प्रकार से न होने के बराबर हैं।

इसके अतिरिक्त जिस समया प्रो० राममूर्ति नायडू कलयुगी भीम का जयपुर शुभागमन हुआ था उस समय आप के सुललित सुन्दर स्वास्थ्य सम्बन्धी उपदेशों को श्रवण कर मेरे हृदय में यही विचार उत्पन्न हुआ था कि यदि मैं भी स्वास्थ्य सम्बन्धी छोटी मोटी पुस्तक की रचना करूं तो उत्तम हो।

बस उक्त दोनों प्रेरणाओं से प्रेरित होकर प्रस्तुत पुस्तक की रचना की गई है। पुस्तक में शरीर की साधारण रचना, शरीर सम्बन्धित प्राकृतिक नियमों तथा स्वास्थ्य रक्षा के सिद्धान्तों पर पूर्ण प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक कितनी लोकप्रिय हुई, यह इसी से ज्ञात हो सकता है कि पुस्तक का पंचम संस्करण आज आप के करकमलों में है। पुस्तक में जिन २ महत्वपूर्ण तथा गूढ़ातिगूढ़ विविध विषयों का दिगदर्शन करने की चेष्टा की गई है वे निरस हैं या सरस, लाभदायक या हानिकर हैं आदि बातों का निर्णय केवल पाठकों की रुचि पर निर्भर रखा गया है।

पुस्तक में स्वानुभूत विषयों के अतिरिक्त अन्य कितनी ही पुस्तकों से भी सहायता ली गई है। अतः मैं उनके सहृदय लेखकों से क्षमा प्रार्थी हूं। प्रो० राममूर्ति नायडू (कलयुगी भीम) का भी हृदय से कृतज्ञ हूँ कि जिन्होंने पुस्तक की भूमिका लिखने की कृपा की थी। उन साहित्य प्रेमियों का भी मैं सदैव आभारी रहूंगा कि जिन्होंने अपनी २ सुसम्मतियां प्रदान कर मुझे उत्साहित किया है।

यदि किसी ने भी पुस्तक को मनन पूर्वक आद्योपान्त अध्ययन कर एक भी स्वास्थ्य विषयक नियमों का पालन किया तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

लेखक—

दयाशंकर पाठक।

पाठक प्रवर ! यह बात प्रकाशित करते हुये प्रसन्नता प्राप्त होती है कि मुझे ऐसे विषय पर पुस्तक की भूमिका लिखने के लिये कहा गया है कि जिससे मुझे स्वाभाविक स्नेह है और जिसके व्यवहार तथा प्रचार में मैं अपनी अवस्था का विशेष भाग व्यतीत कर चुका हूँ ।

× × ×

श्रीमान् श्री राज सवाई महाराजा मानसिंह जी जयपुराधीश के तिलकोत्सव पर जब मेरा जयपुर जाना हुआ । उसी अवसर पर इस पुस्तक के रचियता श्रीयुत दयाशंकर पाठक से मेरा परिचय हुआ नवयुवक में मेरे व्यायाम सम्बन्धी खेलों से स्वभावतः विशेष श्रद्धा, प्रेम तथा उत्साह दृष्टिगोचर हुआ। आपने कई एक विशेष नियमों का जिज्ञासू होकर मुझ से भी तद्विषयक रीति नीति की पूछ ताछ की ।

× × ×

"होनहार बिरवान के होत कितने पात"

इस उक्ति को चरितार्थ करते हुये आपने व्यायाम सम्बन्धी विषय को हृदयगम करने में विशेष प्रयत्न किया है और परमात्मा

की कृपा से उस में भली भांति योग्यता भी प्राप्त की है जिसका प्रतिफल स्वरूप यह स्वास्थ्य शिक्षा नामक पुस्तक आप सज्जनों के सामने प्रस्तुत है। पुस्तक में लेखक ने प्राचीन भारतीय व्यायाम-शिक्षा पद्धति का महत्व दिखाते हुये आधुनिक पाश्चात्य प्रणाली का भी दिग्दर्शन कराया है तथा संसार के जगत्विख्यात मल्ल विद्या विशारदों का भारतीय पहलवानों के साथ तुलनात्मक वर्णन किया है जिससे लेखक का सिद्धान्त स्पष्ट हो जाता है।

× ×

आरोग्यता के लिये मनुष्य की नैतिक दिनचर्य्या, अहार विहार, व्यायाम, प्राणायाम, ब्रह्मचर्य, भक्ष्याभक्ष्या, पथ्यापथ्य तथा अन्य कितने ही आवश्यक उपयोगी विषयों का बड़ी ही योग्यता के साथ समावेश किया गया है। यह पुस्तक सर्व साधारण को कितनी उपादेय है, यह सहृदय पाठकों के पुस्तकावलोकन से ही ज्ञात होगा।

विनीत—

(*Sd.*) *K. Ram Murti*

स्वास्थ्य ?

यदि अपना कल्यान आप हैं चाहते,
दीर्घ आयु सुख स्वास्थ्य पूर्ण यदि इष्ट है ।
तो स्वाभाविकता से नाता जोड़िये,
चलिये प्रकृति प्रदर्शित सुखों के मार्ग पर ।।

—:*:—

यह निर्विवाद सिद्धि है कि स्वास्थ्य का जीव मात्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है अथवा यों कहिए कि मनुष्य मात्र ही नहीं वरन् जीव मात्र का स्वास्थ्य ही उसके जीवन का मूल है क्योंकि अस्वस्थ्य मनुष्य चाहें वह कितना भी धनी और वैभव सम्पन्न क्यों न हो तो भी सुखमय जीवन व्यतीत नहीं कर सकता और न आई हुई आकस्मिक आपत्तियों को सहन करने अथवा

अपने विपक्षियों का साहस पूर्वक मुकाबिला और सामना करने योग्य ही बन सकता है।

महात्मा शुश्रुत का कथन है कि मनुष्य का पूर्ण आयु प्राप्त होने के पूर्व ही मर जाना महापाप है। चरक ने भी अपने मत में अत्युन्नतियों का मूल मन्त्र और एहिक तथा पारलौकिक श्रेयों का प्रथम साधन शरीर को स्वस्थ्य रखना ही बतलाया है किन्तु हम स्वयं अपनी ही उदासीनता तथा क्षणिकानन्ददायनी कुवासनाओं की तृप्ती कर समय के पूर्व ही सांसारिक सुखों से वंचित हो जाने के अतिरिक्त अल्प जीवन प्राप्त करते हैं।

अब यह प्रश्न उठता है कि स्वास्थ्य क्या है ? और स्वस्थ्य मनुष्य किसे कहा जा सकता है। इसके उत्तर में हम तो केवल इतना ही कह देना पर्याप्त समझते हैं कि न तो हम लम्बे चौड़े, स्थूलकाय शरीर वाले अथवा मांसल और गोलमटोल शरीर वाले को ही स्वस्थ्य जीव कह सकते हैं और न क्षीणकाय अथवा हड्डी चमकने वाले जीव को अस्वस्थ्य ही कह सकते हैं। स्वास्थ्य विज्ञान तो उसी जीव को स्वस्थ्य कह सकता है जिसकी समस्त इन्द्रियां तथा अंग प्रत्यंग यथा विधि और समय पर भली भांति काम देती रहें और जिसकी मानसिक, आत्मिक और शारीरिक शक्तियां सबल बनी रह कर उनका उचित उपयोग होता रहे। यों तो स्वास्थ्य के अनेक रूप और कितनी ही परिभाषाऐं हैं किन्तु सब का मूल
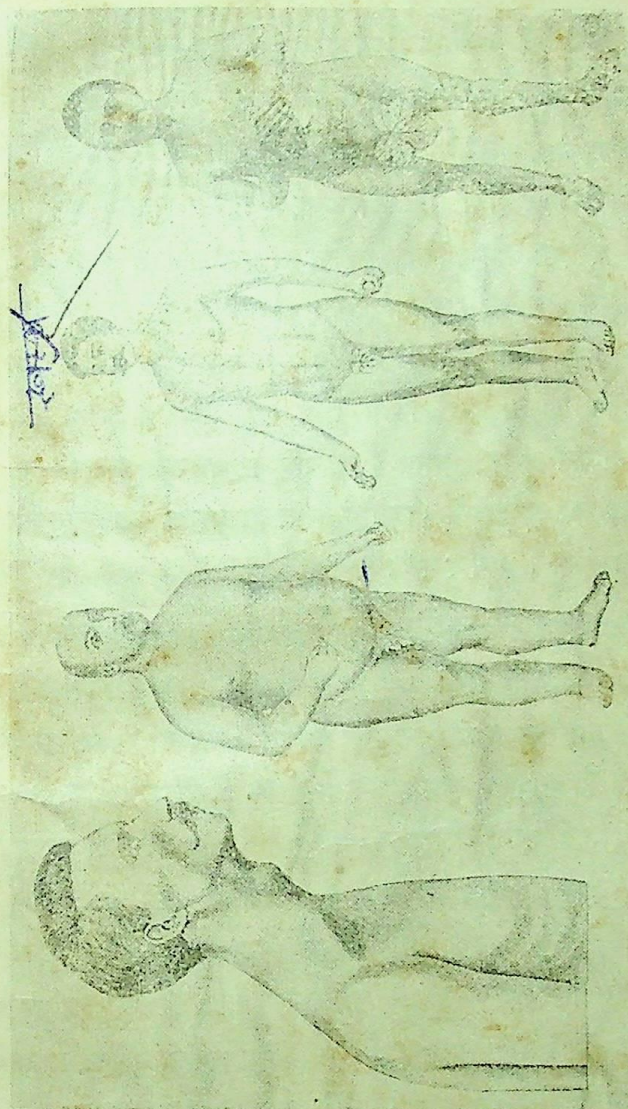
कहिए इनमें से आप किसे स्वस्थ्य समझते हैं ?

तत्व एक ही है और अन्तिम धैय्य भी एक ही है। स्वास्थ्य प्रकृति की देन है जिसे वह प्रत्येक जीव को समान रूप से बांटा करती है किन्तु साथ ही यह बात भी और कहे बिना नहीं रहा जा सकता है। कि जो इसका इच्छुक होता है उसे अवश्य प्राप्त होता है और जो प्रकृति के आदेशों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है तो स्वास्थ्य भी सबसे कोसों दूर भाग जाता है। इसके अतिरिक्त नवजाति शिशु पर उसके माता पिता के स्वस्थ्य और अस्वस्थ्य होने का भी कुछ आंशिक प्रभाव पड़ बिना नहीं रह सकता। अतः माता पिताओं का कर्तव्य हो जाता है कि यदि वह अपनी सन्तान को सबल और स्वस्थ्य देखना चाहते हैं तो प्रथम प्रकृति आदेशानुसार चल कर वह प्रथम स्वयं स्वस्थ्य बनें।

यदि आप पृष्ट तीन के अंकित चित्र का ध्यानपूर्वक मनन करेंगे तो आपको समझने में देर न लगेगी कि चारो आकृतियों में किस आकृति को हम स्वस्थ्य और किसको अस्वस्थ्य कह या समझ सकते हैं। न० १ की आकृति स्पष्ट बता रही है कि किसी समय अवश्य यह स्वस्थ्य जीवी होगा और उसकी अस्थियों का डील डौल भी अच्छा होगा किन्तु अब वह क्षय का रोगी है। आँखे धँसी हुई, गाल चिपके हुये, कंधे लटके हुये, सीना बैठा हुआ और मांस विहीन शरीर केवल अब हड्डियों का ढांचा मात्र ही रह गया है। नम्बर २ देखने में मोटा ताजा है और सर्व भांति स्वस्थ्य मालूम पड़ता है किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है क्योंकि इसका सारा शरीर

बादीपन से लदा हुआ है। ऐसा मनुष्य न तो शारीरिक परिश्रम ही कर सकता है और न भाग दौड़ का कार्य ही। ऐसे शरीर में वायु प्रकोप के कारण जोड़ों में दर्द बना रहता है और कभी २ आवश्यकता से अधिक चर्बी बढ़ जाने पर हृदय रोगादि हो जाने का भी भय रहता है अतः इसे भी हम स्वस्थ्य नहीं कह सकते। हां नम्बर ३ की आकृति का वाह्य स्वास्थ्य ठीक मालूम पड़ता है, जो न अधिक स्थूलकाय है और न अधिक क्षीणकाय ही है बलकि हृष्ट पुष्ट और सुगठित शरीर वाला है। ऐसी आकृति वाला मनुष्य प्रायः रोगों से मुक्त और दीर्घ जीवी होता है। अगर्चे उसकी आन्तरिक इन्द्रियां सबल सचेत हुईं अन्यथा इसे भी हम स्वस्थ्य नहीं कह सकते। अब नम्बर ४ की आकृति को देखिये स्पष्ट रूप से विदित हो रहा है कि उसका शरीर लकवा से मारा गया है। आधा अंग वास्तविक रूप में है और आधा अंग सूखा हुआ और पतला पड़ गया है तथा गर्दन टेढ़ी हो गई है अतः यह भी स्वस्थ्य नहीं कहा जा सकता।

यह तो हुआ स्वास्थ्य का वाह्य रूप किन्तु आन्तरिक स्वास्थ्य की विवेचना चित्रों द्वारा नहीं बतलाई जा सकती। पूर्ण स्वस्थ्य मनुष्य वही कहा जा सकता है कि जिसका वाह्य स्वास्थ्य सुन्दर हो, आन्तरिक शक्तियाँ व इन्द्रियाँ सबल हों, पूर्णरूप से अपना २ कार्य करती हों और साथ ही वाह्य शारीरिक अंग प्रत्यंगों का गठन सुन्दर स्वस्थ्य और उनके कार्य के अनुरूप हो अर्थात् ऐसा न हो कि एक आँख

छोटी हो तो दूसरी बड़ी, आधा मुख सुडोल हो किन्तु दूसरी तरफ का सूखा चपटा आदि जैसा कि छटे पृष्ठ के चित्र में दिखाया गया है।
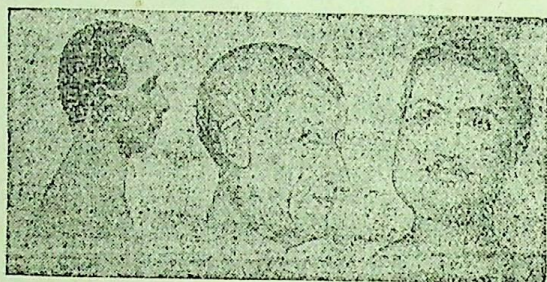
स्वस्थ्य और अस्वस्थ्य मुखाकृति।
१ २ ३

नम्बर १:—कंधे और गर्दन एक हो रहे हैं। सिर कोनेदार और पिछाड़ी से दबा हुआ है। गर्दन लम्बी और रेखा विहीन है।

नम्बर २:—सिर बहुत बड़ा, आंखे छोटी, जबड़े लम्बे और नीचे की तरफ लटके हुये हैं।

नम्बर ३:—एक तरफ का गाल मांसल किन्तु दूसरी तरफ का मांस विहीन। एक तरफ का कंधा निकासू तो दूसरी तरफ का अन्दर की तरफ दबा हुआ है और यही दशा सिर की भी है।

इन तीनों मुखाकृतियों को भी हम पूर्ण स्वस्थ्य और सुन्दर नहीं कह सकते। संभव है कि इनका आन्तिरिक स्वास्थ्य ठीक हो किन्तु बाह्य स्वास्थ्य जैसा चाहिए वैसा नहीं है।

हां इतनी बात अवश्य है कि स्वास्थ्य व सौन्दर्य विषयक बातों में एक देश से दूसरे देश में भिन्नता और रूपान्तर अवश्य पड़

जापानी महिला

जापानी महिला जिसे लोहे के जूते पहिना कर उसके पैरों की कुरूपता और अस्वस्थ्यता का रूप दे दिया गया है। किन्तु जापान की महिला समाज में ऐसा होन गौरव माना जाता है।

जाता है जैसे जापान में चपटी नाक, छोटी आंखें, छोटे पैर और

शरीर का पीला रंग। अफ्रीका में काला रंग, मोटे २ होंठ। पाश्चात्य देशों में पतली कमर, नीली भूरी आंखें और कुष्ट समान गौर वर्ण को स्वास्थ्य और सौन्दर्य का द्योतक मानते हैं किन्तु इन्हीं स्वास्थ्य और सौन्दर्य दर्शक बातों को हम भारतीय अस्वास्थ्य और कुरूपता का द्योतक कहते हैं और घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इसी प्रकार अधिक मोटा होना सभ्य समाज में असुन्दरता समझा जाता है किन्तु न्यूजीलैंड, ईरान, आदि में इसे सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। सच तो यह है कि भारतीय सौन्दर्य स्थायी और प्राकृतिक है और पाश्चात्य सौन्दर्य बाह्य आडम्बरों पर अवलम्बित है और दीर्घकालीन भी नहीं है।

पाश्चात्य रमणी स्प्रिंगग द्वारा बनी हुई कारसेट पहन कर अपनी कमर पतली करने के प्रयत्न में है किन्तु ऐसा करना स्वास्थ्य हित के लिए सर्वदा हानिप्रद है।

प्रकृति

हमारे स्वास्थ्य की स्वयं रक्षा करती है।

यों तो मनुष्य जाति ने स्वास्थ्योन्नति के लिए अनेकानेक आविष्कार किये हैं। कोई वैद्यों के चक्कर में है, कोई डाक्टरों के हाथ की कठपुतली बन रहे हैं तो कोई जन्त्र मन्त्र के पीछे ही हाथ धोकर पड़े हैं, और कोई कोई भाग्यवान भाग्य की भावनाओं में ही भ्रमण कर रहे हैं किन्तु यह सब उनकी भ्रामिक कल्पनायें और गलत रास्ते हैं। हमारा तो यही विश्वास है कि यदि हम यथा विधि प्रकृति प्रदत्त प्राकृतिक नियमों का पालन करते रहें तो हम कदापि अस्वस्थ्य नहीं कहलाये जा सकते क्योंकि प्रकृति के प्रतिकूल आहार, विहार के विपर्य से ही रोग उत्पन्न होता है। साथ ही हम तो इतना और भी कहने को तैयार हैं कि रोग हमारे शत्रु नहीं हैं बल्कि हमारे हित के लिए प्रकृति द्वारा भेजे गये हमारे हितकर मित्र ही हैं। रोग हमें कष्ट नहीं देते बल्कि हमारे शरीर में जो दूषित विजातीय द्रव्य इकट्ठा हो जाता है उसको निकाल कर हमें स्वास्थ्य प्रदान करते हैं और इस क्रिया के होने में जो कष्ट होता है उसी का नाम रोग उत्पन्न होना कहा जा सकता है। अन्त में हमें यही कहना पड़ता

है कि प्रकृति ही हमारा वैद्य, हकीम और डाक्टर है जो सदैव निशुल्क सहायता करने और रोगों को बिना औषधोपचार के निर्मूल करने को तैयार रहती है। भाव प्रकाश में भी लिखा है कि:—

विनापि भेषजै व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते ।
नतु पथ्य विहीनानां भेषजानां शतैरपि ॥

अर्थात्—पथ्य द्वारा ही रोग आरोग्य हो सकता है, पथ्य विहीन सैकड़ों ही औषधियों से रोग आराम नहीं हो सकता।

अस्तु हमें उचित है कि हम प्रकृति के प्रतिकूल पदार्थों का उपयोग न करें, और न उसके स्वर्णमय सिद्धान्तों की अवहेलना ही करें ताकि हमारी शारीरिक इन्द्रियों व शक्तियों को रोगों का मुकाबिला अथवा प्रतिकार करने में व्यर्थ ही अपनी शक्ति नष्ट न करनी पड़े और निर्बलता को प्राप्त होकर उनसे हमें दब न जाना पड़े। प्रथम तो प्रकृति ने स्वयं ही शरीर की शुद्धी हितार्थ चार रास्ते गरीब, अमीर, छोटे, बड़े, रोगी, निरोगी आदि सभी को समान रूप से प्रदान कर रखे हैं और वह यह हैं। प्रथम तो फैंफड़े, जिनके द्वारा रक्त आदि से सम्मिलित कार्बोनिक गैस भाप रूप में निकलती रहती है और जो रक्त सारे शरीर में पहुंचाता है तथा शुद्ध करता है। दूसरा त्वचा के रोम कूप जिन में होकर शुद्ध पवन शरीर में प्रवेश कर शरीरस्थ विषैले विकारों को शुद्ध करती रहती है। मनुष्य बिना भोजन पानी के कुछ दिनों तक जीवित रह सकता है परन्तु यदि हमारे समस्त शरीर के रोमकूप किसी ऐसे पदार्थ से बन्द कर दिये जावें कि जिसमें होकर हवा न जा

सके तो हम कुछ ही समय में मर सकते हैं। तीसरे गुदा और चौथे मूत्रेन्द्रिय जिनके द्वारा मूत्र तथा विष्टा आदि के रूप में शरीर के विष उत्पादक मलीन पदार्थ नित्य प्रति निकलते रहते हैं। इतना होते हुये भी यदि कभी कोई हमारी भूल के कारण अस्वाभाविक आपत्ति की आकांक्षा हो भी उठती है तो प्रकृति स्वयं ही तत्क्षण उसके निवारण का उपाय भी बता देती है। यथा अत्याधिक सर्दी होने पर वस्त्र धारण करने की, गर्मी होने पर शीतल पवन व जल सेवन करने की, अपच होने पर उपवास करने की आवश्यकता हमें स्वय ही अनुभव और प्रतीत होने लगती है। दूसरे रूप से यों समझिये कि जब कोई आपके सिर पर किसी भी प्रकार का प्रहार करता है तो स्वय ही हाथ सिर की तरफ भागते हैं और उसकी रक्षा करते हैं, आंख के पास तिनका आदि आते ही आंखें स्वयं बन्द हो जाती हैं, दुर्गन्धमय पदार्थ के पास आते ही हाथ नाक के पास उसे बन्द करने को पहुंच आता है और हम श्वांस रोकने लगते हैं अथवा थूकने लगते हैं। इन सब उपायों के करने का आदेश तथा चेतावनी देती है हमारी प्रकृति माता ही। यदि हम उसकी आज्ञा का पालन कर लेते हैं तो स्वस्थ्य रहते हैं अन्यथा रोग दशा को प्राप्त होते हैं।

अब हम कुछ ऐसे विषय रखेंगे कि जिनके सहारे चलने से हम अपने स्वास्थ्य में बहुत कुछ सुधार कर दीर्घ जीवन पाप्त कर सकेंगे।

स्वास्थ्य प्रदत्त

कुछ हिन्दू संस्कृति प्रणालियां

यह तो हुई प्रकृति अवहेलना की बातें। इनके अतिरिक्त अन्य कुछ ऐसे विषय और भी हैं जिनका एक रूप से प्रकृति का सम्बन्ध तो है किन्तु विशेष रूप से नहीं और जिनका यथा विधि पालन करते रहने पर हम आप स्वस्थ्य रह कर दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकते हैं किन्तु खेद है कि हमने हमारे पूर्वजों द्वारा स्थापित और प्रचलित किये गये स्वास्थ्य प्रदत्त हिन्दू संस्कृति सम्बन्धी बातों का परित्याग कर उनकी जगह पाश्चात्य प्रदेश की प्रथाओं को अपना कर हम अपने स्वास्थ्य और अर्थ दोनों को नष्ट कर रहे हैं। यही कारण है कि जिस भारत में पिता के आगे पुत्र का मर जाना पाप समझा जाता था अथवा शतवर्षी न होना कलंक माना जाता था उसी भारत की आज आयु की औसत अन्य देशों की अपेक्षा गिरती ही चली जा रही है, और जो आज हमारे स्वास्थ्य की दशा हो रही है वह किसी से छिपी हुई नहीं है।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारे धर्माचारियों द्वारा हिन्दू संस्कृति में जितने भी सदाचार या शौचाचार रखे गये हैं वह सब

प्रकृति के स्वाभाविक सिद्धान्तों की ही नींव पर रखे गये हैं किन्तु उन्हें धर्म का रूप देकर हमें और आपको वाध्य कर दिया है
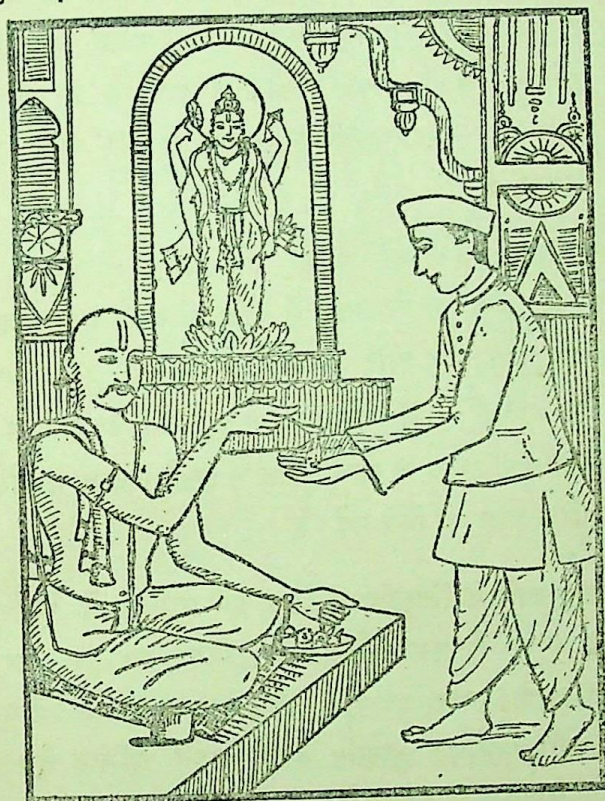
आरोग्य वर्धक तुलसीदल

हमारे पूर्वज स्वास्थ्य प्रदत्त अमृत बेला का सेवन करते हुये देवालय पहुँच अनेक रोगनाशक परमौषधि तुलसीदल का ग्रहण कर स्वास्थ्यमय दीर्घ जीवन प्राप्त करते थे।

कि उनको अपना धर्म रूपी कर्तव्य समझकर पालन करें। इस उन्नति काल में भी अधिकांश मनुष्य अपना परलोक सुधार निमित्त ही ऐसा करते हैं। उन्हें यह ध्यान नहीं आता कि यह सब क्रियायें धार्मिक होने से उनका परलोक से सम्बन्ध तो है ही, किन्तु साथ ही उनका लौकिक लाभों से भी बहुत कुछ सम्बन्ध रहता है।

उदाहरणार्थ देव मन्दिर में ही जाने को ले लीजिये। सर्व साधारण की दृष्टि में देवालय में जाने का अर्थ लगाया जाता है केवल देव पूजा लक्ष्य और देवता को प्रसन्न कर उससे अपने अभिष्ठ की सिद्धि प्राप्त करना। किन्तु इसमें केवल ऐसा ही नहीं है वरन पूजा लक्ष्य के साथ साथ २ इसमें अनन्त मानसिक तथा शारीरिक लाभ भी छिपे पड़े हैं।

देवालय जाने के लिए विवश होकर हमें सूर्योदय से पूर्व तो उठना ही पड़ता है तथा शौचादि से निबट कर स्नान करना पड़ता है। इसके पश्चात् हम शुद्ध स्वच्छ वस्त्र धारण करते हैं तथा धूप, दीप और सुगन्धित पुष्पादि लेकर अपने अभिष्ट देव के पास यानी देवालय में पहुँचते हैं। वहाँ पहुँचकर अपने आराध्य देव से प्रेम पूर्वक प्रार्थना करते हैं, एकाग्रचित हो (जो एक प्राणायाम का अंग माना जा सकता है) अपना तथा दूसरों के कल्याण की इच्छा प्रदर्शित करते हैं। पुष्प भेट करते हैं, धूप दीप

जलाते हैं, चन्दन अर्पण करते हैं तथा कपूर से आरती उतारते हैं। तत्पश्चात् ताम्रपात्र में रखा हुआ तुलसीदल को अनेकानेक
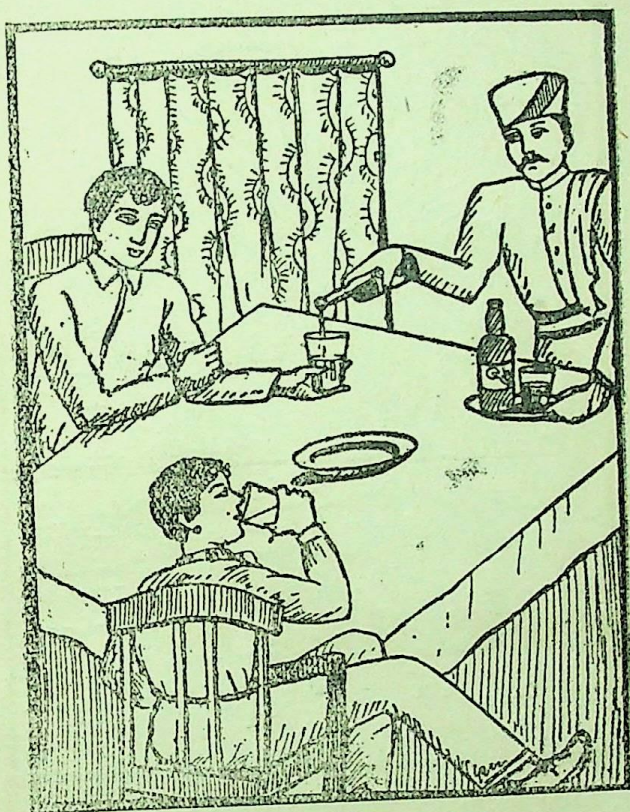
अपटूडेट जेंटिलमैनों की पद्धति

पाश्चात्य रंग में रंगे हुये आधुनिक जैंटिलमैन सूर्योदय के पश्चात उठ कर मित्र मंडली सहित चाय, काफी, सिगरेट अथवा शराब आदि मादक वस्तुओं का उपयोग कर स्वास्थ्य से कोसों दूर भाग रहे हैं।

रोगों को दूर करने में समर्थ्य होता है को ग्रहण करते हैं और सांसारिक फूँट, दम्भ, क्रोध, द्वेष, ईर्षा आदि कुवृत्तियों का किंचित लेश

कल्याणप्रद हिन्दू संस्कृति पद्धति

प्राचीन हिन्दू संस्कृति के प्रेमी सूर्योदय के पूर्व बहती हुई सरिता में स्नान व अमृत वेला समीर के छत्र छाया में पूजा पाठ करते थे। उस समय बाल रवि की मन्द मन्द किरणें उनके शरीर पर पड़ कर शरीरस्थ अनेक रोगों का विनाश कर उपासक को स्वास्थ्य प्रदान करती थीं।

मात्र ध्यान न रखते हुये उसके स्थान में शुद्ध सात्विक, परोपकारी सद्‌भावनायें लेते हुये अपने घर चले आते हैं। हमें और आपको बलिहार हो जाना चाहिए अपने पूर्वजों की बुद्धि पर जिन्होंने धार्मिक लक्ष्य की आड़ में ही स्वास्थ्य प्राप्त करने की कुञ्जी हमारे हाथ में दे रखी है। क्या आपने कभी विचारा कि केवल एक देवालय जाने में ही हमारा कितना हित भरा पड़ा है और इन छोटी २ बातों में हमारे स्वास्थ्य का कितना अधिक उपकार होता है। देखिये घृत दीप तथा कपूर से नेत्र ज्योति बढ़ती है, चन्दन से मस्तिक सम्बन्धी रोग दूर होते हैं, तुलसी से ज्वरादि विकार और ताम्रपात्र में रखे हुए जल से छाती पर जमे हुये विषमय दोष नष्ट होते है तथा पाचन क्रिया तीव्र होती है। धूप तथा पुष्पादि की सुगन्धि से उपासक के चारों तरफ की वायु शुद्ध होती है तथा श्वांस के साथ अन्दर पहुँच कर हृदय और मस्तिष्क को बल प्रदान करती है और साथ ही रक्त विकारों को नष्ट कर चर्म रोगों को दूर करती है।

हमारे शास्त्रों में प्रातःकाल जलाशय पर जाकर स्नान करना तथा सूर्य देव को अर्घ देने आदि की परिपाटी लिखी हुई है। इसे भी हमारे पूर्वजों ने अपने हिन्दू संस्कृति का धार्मिक अंग मान लिया है। किन्तु वास्तव में ऐसा करने से अर्घदाता के शरीर पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं जो एक प्रकार से जीवन शक्ति संचारित करती हैं। सूर्य में बैंजनी, नीला, आसमानी, हरा,

पीला और नारंगी यह ६ प्रकार के रंग होते हैं। यही रंग किरणों द्वारा हमारे शरीर पर पड़ कर कितने ही प्रकार के चर्म
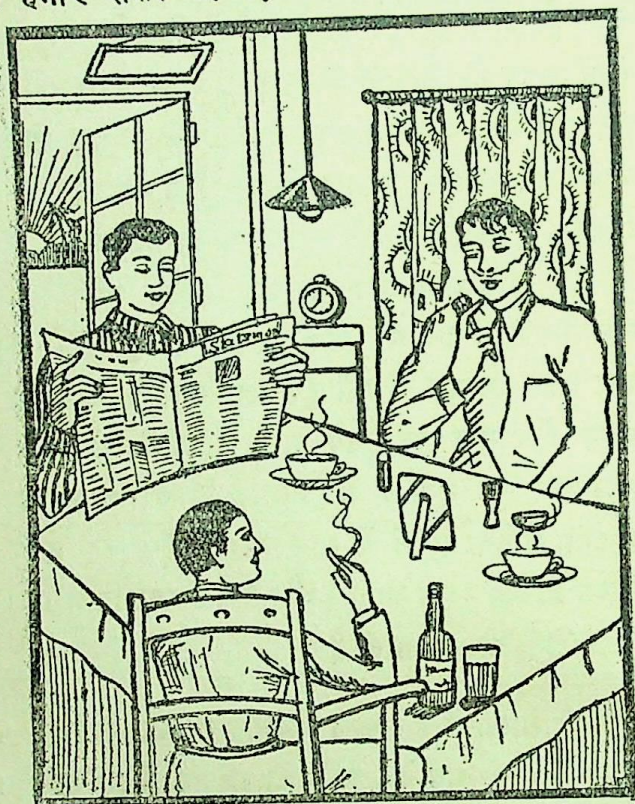
पाश्चात्य सभ्यता के उपासक

अर्ध रात्रिपर्यन्त सिनेमा गृहों में रंग रेलियां मनाकर दोपहर तक शैया पर पड़े रहते हैं। तुलसी दल के बजाय मादक वस्तुओं का सेवन कर स्वास्थ्यहीन हो रहे हैं। पूजा-पाठ, हवनादि शुभ कृत्य की जगह अश्लील उपन्यास पढ़ते हैं।

रोगों व अन्दरूनी कमियों को दूर कर हमारे शरीरस्थ्य रसायनिक तत्त्वों की पूर्ती करते रहते हैं। इसका विशेष विवरण अन्यत्र इसी पुस्तक में आपको पढ़ने को मिलेगा। इसके अतिरिक्त जलाशय के बहते हुये जल में एक प्रकार की विद्युत प्रवाहित रहती है जो स्वास्थ्य वर्द्धक होती है और साथ ही साथ शारीरिक स्नायुओं का व मांस पेशियों का भली भांति संचालन रूपी व्यायाम भी हो जाता है।

किन्तु खेद है कि आज कल इन सब बातों के बजाय दूसरी ही परिपाटी चल पड़ी है। यथा प्रातःकाल उठने के बजाय धूप निकल आने तक पलंग पर पड़े रहना, तुलसीदल के स्थान पर चाय, काफी, शराब आदि पीना, हवन आदि करने के बजाय बीड़ी सिगरेट अथवा हुक्का पीना या तम्बाकू आदि खाना। परोपकार सम्बन्धी शुद्ध भावनाओं के जागृति करने अथवा सद्ग्रन्थों के पठन करने के स्थान पर मुंह में सिगार लगा कर पलंग पर पड़े २ समाचार पत्रादि या कोई अशलील पुस्तकों का पढ़ना अथवा मित्र मण्डली के साथ दूसरों में दोषारोपण करना, बुराइयां ढूंढ निकालना और अपने स्वार्थ साधन निमित्त प्रपंच रचना आदि हानिकर प्रथायें चल पड़ी हैं जिनके द्वारा हमारे स्वास्थ्य का ह्रास होने के अतिरिक्त हमारी आत्मिक, मानसिक तथा शारीरिक शक्तियां भी शनैः २ पराजय को प्राप्त होती चली जा रही हैं।

प्रातःकाल उठना।
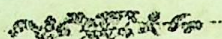
ब्राह्मे-मुहूर्त्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थं मानुषः
भाव प्रकाश

अर्थात्-प्रातःकाल उठना मनुष्य को बुद्धिमान और स्वास्थ्य बनाता है।

आरोग्यता प्राप्त करने के लिये सब से प्रथम मनुष्य को प्रातःकाल उठने का अवश्य अभ्यासी होना चाहिये। प्रातःकाल उठने से बुद्धि निर्मल और स्मरण शक्ति की बृद्धि होने के अतिरिक्त अत्याधिक परिश्रम करने पर भी चित्त में प्रफुल्लता और उत्साह का श्रोत प्रवाहित रहता है। कभी कभी वह रोगी जो हजारों औषधियों के करने पर भी अच्छे नहीं हुए केवल प्रातःकाल की खुले जंगलों की अमृत तुल्य शुद्ध पवन के सेवन मात्र से अच्छे होते हुए देखे गये हैं। सूर्योदय के पश्चात् तक शय्या में पड़े रहने से आलस्य, कुबुद्धि तथा सिर दर्द आदि शारीरिक व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं।

कितने ही लोग प्रातः उठते ही बिना मल मूत्र त्याग किये अथवा बिना हाथ मुँह धोये, बिछोने पर पड़े २ ही तिवासी बिस्कुट खाकर, सड़ी गली चाय व काफी आदि पीने अथवा अंडे आदि का शोरबा लेने के अभ्यासी हो जाते हैं किन्तु उन्हें यह ध्यान नहीं आता कि यह सब बातें हमारे स्वास्थ्य के लिये

हितकर नहीं हैं। इसके विपरीत यदि वह सूर्योदय के पहिले उठकर और शौचादि जाने के पूर्व पाव भर से लेकर तीन पाव तक ताजा और शुद्ध जल पीने का अभ्यास करलें तो उन्हें न कभी कब्ज की शिकायत रहेगी, न पित्त जनित रोग ही सतायेंगे बल्कि रक्त शुद्ध होकर हृदय को बल मिलेगा। इस उषः पान के लिए तो यहां तक लिखा है।

सवितुरुदयकाले प्रसृतीः सलिलस्य पिबेदष्टौ।
रोगजरापरिमुक्तो जीवेद्वत्सरशतं साग्रम्॥

अर्थात्:—सूर्य निकलने के समय आठ अंजुलि जल पीने से मनुष्य कभी बीमार नहीं पड़ता; बुढ़ापा नहीं सताता और सौ वर्ष तक जीवित रहता है।

वायु के अन्दर एक प्रकार की Oxyzen gas होती है, जिसका प्रमाण वायु में पांचवां भाग रहता है जो रक्त को शुद्ध करने तथा शरीरस्थ विकार और मैल को नष्ट करने में विशेष कार्य करती है। यह हमें प्रचुर मात्रा में प्रातःकाल ही मिल सकती है क्योंकि वृक्ष और पौधे उक्त वायु को प्रचुर मात्रा में प्रातःकाल ही निकालते हैं इसीलिये प्रातःकाल बगीचों अथवा खुले मैदानों में भ्रमण करना स्वास्थ्यप्रद होता है।

इसके अतिरिक्त एक और प्रकार की शक्ति होती है जो प्रत्येक प्राणी में पाई जाती है, जिसे हम प्राण शक्ति के नाम से पुकारते
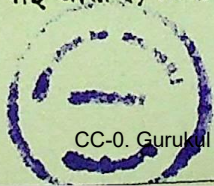
हैं। इसी के कम होने पर हम में निर्बलता तथा अशक्ति आजाती है और इसकी पर्याप्त मात्रा रहने पर हम सबल और सशक्ति बन जाते हैं। यह प्राण शक्ति हमारे स्नायु केन्द्रों (Nervous centres) में एकत्रित होती रहती है और चलने, फिरने, खाने, पीने और प्रत्येक क्रिया करते समय इसका क्षय होता रहता है। यह शक्ति भी हमें प्रातःकाल सूर्य की किरणों से बहुत कुछ मिल सकती है। सूर्य को किरणों से क्षय जैसे भयंकर रोग तक मिटाये जा सकते हैं। सच तो यह है कि सूर्य की किरणों से संचारित और परिष्कृत होने वाली वायु पर ही हमारी जीवन शक्ति निर्भर है।

इन दोनों बातों के अतिरिक्त प्रातःकाल चार बजे वायुमंडल में एक बड़े तेज रूप का आक्सिजन जिसे ओजोन (Ozone) प्राण वायु कहते हैं पैदा हुआ करता है। यह तेज पुंज पहाड़ों के ऊँचे २ शिखरों पर, समुद्र के किनारों पर अधिक और देहातों के खुले मैदानों पर कम प्रमाण में पाया जाता है। इसीलिये क्षय रोगी को पहाड़ों पर रहना स्वास्थ्यप्रद रहता है।

यह ओजोन पानी की भाप का विद्युत के साथ संपर्क होने से वायु-मंडल में एक प्रकार की गैस के रूप में बनती है। इसमें एक प्रकार की विशेष गंध आया करती है जिसे सूंघ कर आसानी से पहिचाना जा सकता है। यह गैस स्वास्थ्य के लिए, मस्तिष्क को तरावट देने के लिए तथा त्वचा के कार्यों में संचालन शक्ति उत्पन्न करने में विशेष महत्व रखती है।

अन्त में हमें यही कहना पड़ता है कि वह जीव बड़े ही मन्दभाग्य हैं जो इन तीनों प्रकार की प्राकृतिक प्रदत्त निशुल्क सुविधाओं से लाभ नहीं उठा सकते हैं। न इस के लिए रुपयों की आवश्यकता

स्वास्थ्य इच्छुक बाल रवि की किरणों से प्राण शक्ति को अपने शरीर में संचारित कर रहा है।

है और न किसी योग्य चिकित्सा की यह तो ईश्वर की ओर से प्रत्येक जीव मात्र को प्रसादी के रूप में बिना मांगे वितरण होता है।

मल-मूत्र विसर्जन

प्रातःकाल उठते ही हमारा सर्व प्रथम आवश्यक कर्त्तव्य होता है मल-मूत्र का विसर्जन करना। जो ऐसा नहीं करते वह प्रायः रोगी ही बने रहते हैं। अधिकांश आज समय मनुष्य चाय, बीड़ी, सिगरेट आदि पीकर या अफीम और तम्बाकू आदि खाकर फिर कहीं मल विसर्जन करते हैं। कोई २ भाग्यवान तो इतने भाग्यशाली होते हैं कि जब तक वह नाश्ता न करलें तब
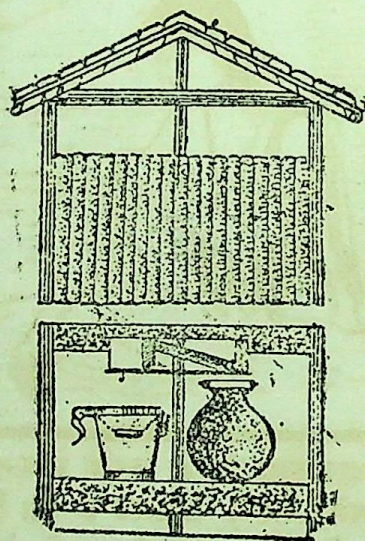
पुरानी पद्धति का बना हुआ शौचालय

तक उनको मल ही नहीं उतरता। किन्तु यह सब आदतें खराब हैं और अन्त में उन्हें अपच, अजीर्ण और मन्दाग्नि अथवा संग्रहणी आदि रोग होजाते हैं।

किसी समय में प्रायः सभी गांव या शहर के बाहर ही मल त्यागने के लिए जाया करते थे तथा स्नान करने के लिए किसी जलाशय पर जाते थे किन्तु अब वह पुरानी स्वास्थ्यप्रद प्रथा उठ गई।
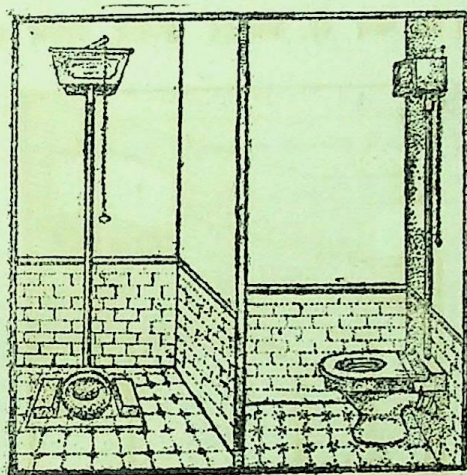
आधुनिक पद्धति से बना हुआ शौचालय जिसके दो रूप चित्रित किये गये हैं।

गांवों को छोड़ कर शहर निवासी तो इन क्रियाओं से घर पर ही छुट्टी पा लेते हैं और प्रायः उनके घर रोग उत्पादक वायु से दूषित रहा करते हैं और इसी कारण वह भी प्रायः स्वयं रोगी बने रहते हैं।

मल त्याग के लिए घर ही में बने हुये गंदे और विषैले रोग टाणुओं से पूरित शौचालयों में न जाकर खुले मैदानों में जाना कहीं स्वास्थ्यप्रद है या होता है किन्तु यह सुविधा देहाती यों क ो ही प्राप्त हो सकती है। शहर निवासियों को तो शौचालय की शरण लेनी पड़ती ही है किन्तु खेद है कि इतना होने पर भी वह शौचालय की तरफ से कतैई लापरवा रहते हैं। उन्हें चाहिए कि कम से कम हर सप्ताह अपने शौचालय को
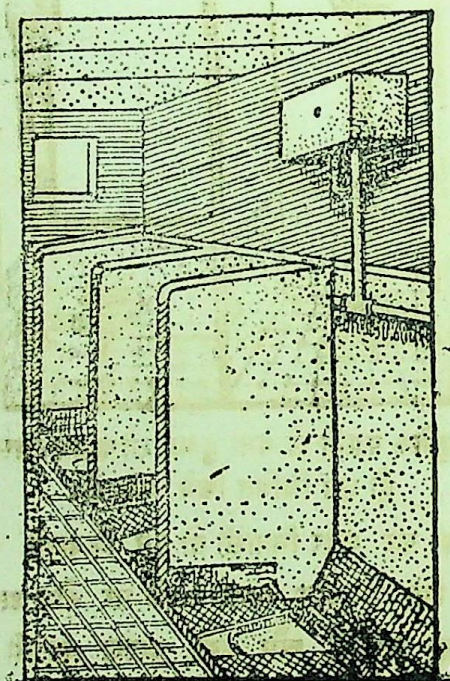
आधुनिक पद्धति का बना हुआ पेशाब घर

धुलवाते रहें तथा उनमें फिनायल (Phenyle) सफाई के लिये (एक अंग्रेजी दवा) छिड़कते रहा करें ताकि विषैले रोगोत्पादक कीटाणुओं का नाश होता रहे और उनके स्वास्थ्य पर भी कोई बुरा प्रभाव न पड़े अन्यथा रोग कीटाणु स्वयं चल कर, हवा से उड़ कर अथवा मक्खियों द्वारा हम तक या हमारे खाद्य पदार्थों तक पहुँच कर अपना बुरा प्रभाव दिखायें बिना नहीं रहते।

यह फिनायल प्रायः सभी अंग्रेजी दवा बेचने वालों की दूकान से मिल सकती है। फिनायल डामर से बनता है और कार्बोलिक आम्ल का एक भाग होता है। इस आम्ल द्वारा और भी कितने ही जंतु नाशक द्रव्य बनाये जाते हैं जो मकानों के फर्श दीवाल आदि धोने के काम में आते हैं। इस फिनाइल के अतिरिक्त क्रेसॉल (Cresol) लाईसोल (Lysol) क्रिओलिन (Creoline) लिझन हाईकोल (Hycol) आदि भी जन्तु नाशक द्रव्य प्रायः डामर (Coal Tar) से ही बनाये जाते हैं। अब हम पाठकों को मल-मूत्र सम्बन्धी कुछ वैज्ञानिक बातें भी बतलावेंगे जिनका सारांश निम्न प्रकार है।

मल किस प्रकार बनता है।

यह तो हम सभी जानते हैं कि जो कुछ हम खाते हैं उसीका मल बनता है। खाये हुए पदार्थ, अन्न नलिका (Oesaphagus) जो १० इञ्च लम्बी मांस पेशी युक्त नली होती है और ऊपर गले से

और नीचे आमाशय से जुड़ी रहती है, में होकर आमाशय (Stomach) में पहुंचता है। आमाशय का चौड़ा अङ्ग ऊपर की तरफ अन्न नलिका से और दूसरी तरफ का सिकुड़ा हुआ भाग का आखरी सिरा छोटी आंतों से जुड़ा रहता है। जिसे आंत्रद्वार (Pylaric opening) कहते हैं।

थैली के अन्दर के भाग में जहां तहां छोटी-छोटी ग्रन्थियां गठाने (Glands) जुड़ी रहती हैं जिनमें से जठर रस (Gastric Juice) बहता है और आमाशय की मांस पेशियों के खिचन और सिकुड़ने से जो गति पैदा होती है उसीसे यह रस खाद्य पदार्थ में मिलकर उसे पचाता है। पोषक द्रव्य रक्त में मिल जाते हैं और व्यर्थ अपच भाग छोटी आंत (Small Intestine) में पहुंचता है। इस छोटी आंत में दाहिनी तरफ से एक छोटी नलिका और आकर मिलती है जिसके द्वारा यकृत (Liver) के पीछे बसी हुई पित्ताशय (Gall bladder) नामक थैली से बह कर आने वाला पित्तरस (Bile) और क्लोम-ग्रन्थि से स्वाद रस (Pancreatic Juice) आकर मिलते हैं। इसके अतिरिक्त एक और रस मिलता है जिसे (Intestinal Juice) कहते हैं और यह छोटी आंत से ही प्राप्त होता है। खाये हुए पदार्थ का वह अंश जो नहीं पचपाता है पाकस्थली से आंतों में आने के बाद इन तीन रसों से मिल कर फिर पीसा जाता है। इस प्रकार खाद्य पदार्थ का सार पच कर रक्त में परिणित हो जाता है और असार भाग सांप की कुण्डली की भांति समूचे

आंत में घुमता हुआ मल के रूप में बड़ी आंत में पहुँच जाता है। बड़ी आंत (Large Intestine) की लम्बाई साधारणतः ५–६ फुट होती है और इसके तीन भाग होते हैं जो क्रमशः निम्न प्रकार हैं।
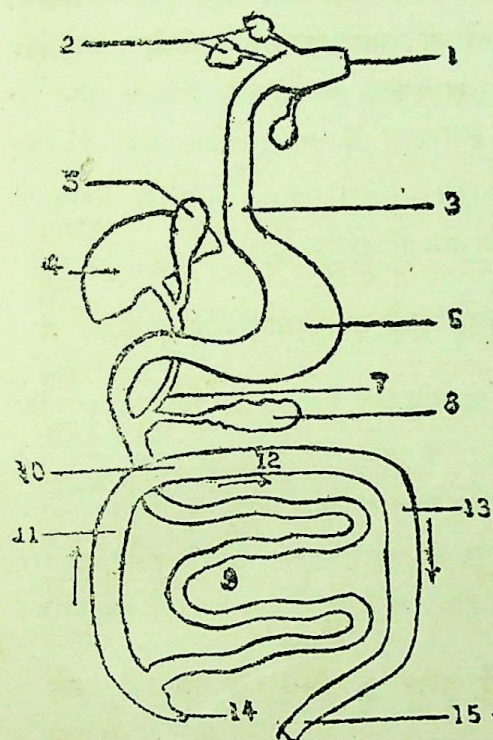
1. Mouth मुंह
2. Salivary glands लालोत्पादक ग्रंथियां
3. Oesaphagus अन्न नलिका
4. Liver यकृत,
5. Gall bladder पित्ताशय
6. Stomach अन्नाशय, जठर
7. Bile duct पित्त वाहिनी
8. Pancrease स्वादु पिंड
9. Small Intestine लघु-आंत्र, छोटी आँत

(Digestive system) अन्न- पाचन संस्था 10. Large Intestine बृहदांत्र, बड़ीं आंत 11. Ascending colon उद्गामी बृहदांत्र 12. Transverse colon अनुप्रस्थ बृहदांत्र 13. Descending colon अधोगामी बृहदांत्र 14 Appendix आंत्र—पुच्छ 15. Rectum मलाशय।

ऊर्द्ध्वगामी अन्त्र भाग (Ascending colon) अनुप्रस्त अन्त्र भाग (Transuers colon) और तीसरा अधोगामी अन्त्र भाग (Descending colon) यह बड़ी आंत यकृत और पाकस्थली के नीचे से उदर गह्वर के बांई ओर घूम कर गुह्य-द्वार तक उतर गई है। खाद्य पदार्थों का अपच भाग इतनी क्रियायें होने के पश्चात् अन्त में इसी बड़ी आंत में जमा होता रहता है और आवश्यकतानुसार इसी गुह्य द्वार द्वारा बाहर निकलता रहता है और इसे ही हम मल के नाम से पुकारते हैं।

मल किस प्रकार आता है।

जब हम मल त्याग करने के लिए बैठते हैं तो हमारी इच्छा शक्ति और श्वांस का दबाव पेट के मांस के पुट्ठों पर और पुट्ठों का दबाव छोटी आंत पर और तदन्तर छोटी आंत के अंतिम भाग पर पहुंच कर मल द्वार पर जो एक मांस का टुकड़ा बतौर ढक्कन के अटका रहता है उसे हटा देता है ताकि मल बाहर निकल सके।

मल में क्या २ होता है ?

मल में पानी, बिना पचा भोजन का अंश, इण्डोल नामक पदार्थ जो आंतों में मल के सड़ने के कारण पैदा होते हैं, अन्त्र मार्ग की श्लैष्मिक झिल्ली की सेंले और पाचक रसों का कुछ भाग आदि रहते हैं।

मल दुर्गन्धित क्यों होता है ?

भोजन चाहें जितना उत्तम और सुगन्धित क्यों न खाया जाय तो भी मल दुर्गन्धित ही निकलेगा। इसका कारण यह है कि दोनों आंतों में असंख्य विषैली सूक्ष्म जन्तुओं की बस्ती रहती है जो विष उत्पन्न करते रहते हैं और इसी विष से भोज्य पदार्थों में सड़ान उत्पन्न होकर दूषित वायु (Gases) पैदा होती रहती हैं जो आवश्यकता से अधिक बनने पर गुदा द्वार द्वारा एक प्रकार की आवाज करती हुई निकल जाती है। जब वह वायु ही दुर्गन्धमय होती है तो जिससे यह बन कर निकलती तो वह दुर्गन्धपूर्ण क्यों न हो।

जब इस प्रकार की वायु की मात्रा विशेष हो जाती है तो यह दूषित वायु हृदय पर आघात कर हृदय गति को तीव्र कर देती है जिस से रोगी का दिल घबड़ा उठता है। यदि यह वायु और भी अधिक तीव्र और बेगवती हो जाती है तो हृदय की गति को तीव्र करती हुई मस्तिष्क पर भी अपना प्रभाव दिखाती है और कभी २ रोगी मूर्छा अवस्था को भी प्राप्त होने लगता है।

सात्विक और फलाहार करने वालों की अपेक्षा उन मनुष्यों का मल विशेष दुर्गन्धयुक्त होता है जो मांसाहारी होते हैं अथवा जो मादक द्रव्यों और गरम मसालों का अधिक सेवन करते हैं।

मल परीक्षा

मल का रंग भोजन पर निर्भर रहता है। शाकाहारियों का मल पीलापन लिए, मांसाहारियों का भूरा और रोगियों का मटमैला या काला होता है। पित्त के अभाव में भूरा, कीचड़ की तरह पाण्डु या मट मैला, पित्त की अधिकता में काला, कुचैला, पाकस्थली में अम्लत्व होने पर हरा और आंत के प्रदाह में खूनी आंव मिला दस्त होता है

मल कठिन हो तो समझना चाहिए कि अन्त्रावरक झिल्ली की उग्रता, भीतरी उत्ताप में कमी या अधिकता और आंतों के रस में कमी को शिकायत हो गई है। स्वाभाविक मल का रंग पीला होता है। Piles बवासीर Fistula भगन्दर Dysentry पेचिश आदि के कारण रक्तवर्ण का मल होता है। आवश्यकता से अधिक दूध पीने पर सफेदी लिए हुए और फटा २ सा धक्केदार मल आता है। Mucous आंव की शिकायत उन लोगों के मल में होती है जिन्हें Dysentry, पेचिश Thread worm, कृमि Cancer of rectum, बड़ी आँत का नासूर Rickets गठिया आदि में से कोई रोग हो जाता है। हैजा Coloura में चांवल के पानी की तरह मल होता है। स्वस्थ्य मनुष्य का मल बंधा हुआ और एक ही बार में आसानी से निकल जाता है। जिसे मल प्रथम कड़ा और बाद में पतला आवे अथवा रुक रुक कर या जोर लगाने पर थोड़ा २ निकले तो पेट में शिकायत समझना चाहिए और यथाशक्ति

प्राकृतिक उपचारों द्वारा ही दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए न कि औषधों उपचार द्वारा । क्योंकि प्राकृतिक उपचार स्थायी और औषधोपचार अस्थायी होता है।

वस्ती (एनीमा Enema)

एनीमा का प्रयोग अंतड़ियों को साफ करने के लिए किया जाता है या उस समय इसका प्रयोग किया जाता है कि जब रोगी के पेट में मल के सुद्दे पड़ गये हों और मल न निकल सकता हो, या अजीर्ण या मल विकार के कारण पेट में दर्द हो रहा हो और पीड़ा से रोगी व्याकुल हो रहा हो। यों तो सर्व साधारण में एनीमा शब्द का प्रयोग किया जाता है किन्तु वास्तव में इसके चार रूप होते हैं। (१) Douche डूश, (२) Enema Syringe एनिमा सिरिंज (३) Glyecrine Syringe गिलीसरिन सिरिंज किन्तु इन्हें पृथक नाम से पुकारते हैं, जैसा कि नीचे उल्लेख किया गया है।

४ प्रकार के एनिमा

१ इवैक्वैन्ट:—गुदा द्वारा दस्त कराने की औषधि पहुंचा कर दस्त कराने को इवैक्वैन्ट एनिमा कहते हैं। इस का प्रभाव केवल बड़ी आंत तक ही सीमित रहता है।

२. न्यूट्रैन्ट:—शारीरिक निर्बलता हो जाने पर द्रव पदार्थ को मल द्वार के मार्ग से शरीर में पहुंचाने को न्यूट्रैन्ट एनिमा कहते है।

इसका प्रयोग रोगी के मुख, कंठ, जिह्वा आदि के सूज जाने तथा आमाशय आदि में घाव होजाने पर जब मुख खुलना कष्टकर होता है तो इसके द्वारा मल द्वार से खाद्य पदार्थ या औषध देते हैं।

स्टीम्यूलैन्ट:—मलद्वार के रास्ते से अन्दर ब्राण्डी पहुँचाने को स्टीम्यूलैन्ट एनिमा कहते हैं। जब रोगी का मेदा अत्याधिक निर्बल होकर भोजन न पचाने योग्य हो जाता है तो ऐसी दशा में ब्रांडी का प्रयोग करते हैं।

मेडीकेटेड:—मलद्वार मार्ग से द्रव रूप की औषधि पहुँचाने का नाम मेडीकेटेड एनिमा कहलाता है।
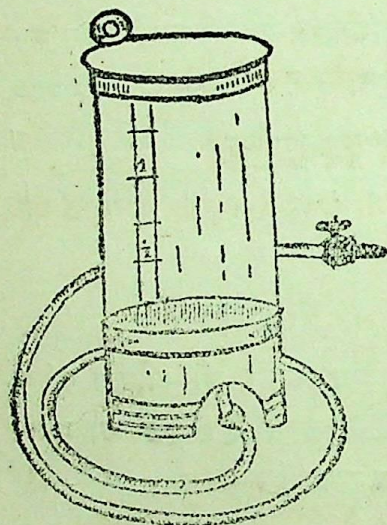
डूस, रबड़ की नली और नौजिल

Douche डूश यह एक तामचीनी चढ़ा हुआ लोहे का बर्तन होता है जिसके ऊपरी हिस्से में दीवाल पर टांगने के लिए एक छल्ला लगा हुआ रहता है और नीचे के भाग में रबड़ की नली (Tube) लगाने के लिए एक छोटी सी नलिका होती है। इसी रबड़ की नली के दूसरे सिरे पर एक प्रकार का स्क्रू Screw लगा देते हैं जिसे Nozel नौजिल कहते हैं। नौजिल

भी दो प्रकार का होता है एक छोटा और दूसरा बड़ा। छोटा नौजिल ही डूश की रबड़ नलिका में लगाया जाता है और इसकी शक्ल सीधी होती है । बड़ा नौजिल आकार में बड़ा और मुड़ा हुआ होता है और मुख्यतः स्त्रियों के वैजाइनल इन्जेक्शन
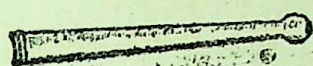
छोटा नौजिल

बड़ा नौजिल

(Vaginal Injection) में काम आता है।

डूश लेने का तरीका

प्रथम सेर सवा सेर या रोगी की अवस्थानुसार गुनगुना साफ
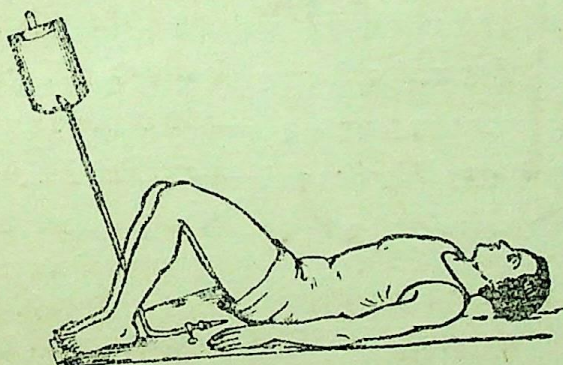
रोगी के डूस लगाया जा रहा है

पानी तसले में लेकर उसमें बढ़िया मुलायम साबुन हाथों से मल २

कर उसमें भली भांति घोल डालो। जब पानी में झाग पैदा हो जायें तो यदि आवश्यकता समझो तो छटांक आधी छटांक के लगभग अंडी का तेल (Castoroil) मिला कर उस पानी को डूश में भर दो। पानी में कैस्ट्रायल मिला देने से टट्टी आसानी से हो जाने के अतिरिक्त पेट व आंतों में खुश्की पैदा नहीं होने पाती है।

रोगी को पलंग पर या जमीन पर दायें या बायें करवट या चित्त जिस में रोगी को सुविधा रहे लिटा देना चाहिए और दोनों घुटने पेट की तरफ मोड़ देने चाहिए। अब डूश किसी ऊँची जगह या मेज कुर्सी पर रखदो ताकि पानी आसानी से पेट में जा सके। रोगी की सहन शक्ति के अनुसार डूश ऊँचा नीचा किया जा सकता है। डूश जितना नीचा रखा होगा उतना ही पानी का वेग कम रहेगा और जितनी ऊँचाई पर होगा उतना ही वेग जोरदार रहेगा। अब नौजिल की चाबी घुमा कर उसके भीतर से थोड़ा पानी बाहर निकाल दो ताकि उसके भीतर की हवा निकल जाय। अब चाबी बन्द कर अपान नलिका पानी नौजिल के अन्त में वेसलीन आदि चुपड़ कर गुदा द्वार में प्रवेश करो और चाबी खोलदो पानी चढ़ जाने के पश्चात् रोगी को चित्त लेट कर कुछ समय पानी यथाशक्ति रोकना चाहिए और जब रोक ही न सके तो बैठ कर टट्टी करा देना चाहिए। यदि एक बार एनिमा लेने से पेट का भारीपन या दर्द बन्द न हो तो कुछ समय ठहर कर फिर दुबारा यही क्रिया करनी चाहिये।

ऐनीमा सिरिंजः—यह लम्बी रबड़ की खाली नली होती है जिसके बीच में एक गोल भाग होता है जो गेंद की तरह गोल दिखाई पड़ता है इसके गोल भाग को बार २ दबाने और छोड़ने से दवा गुह्य द्वार के द्वारा रोगी के पेट में पहुंच जाती है। इस
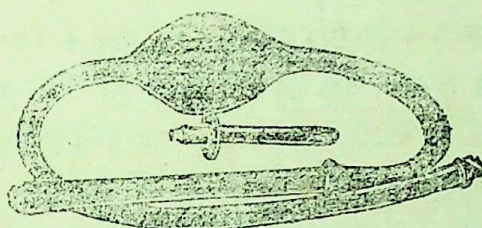
एनिमा सिरिंज

नली के मुंह पर नौजिल लगा दिया जाता है और दूसरी तरफ का मुंह दवा करा साबुन के घोल में रख दिया जाता है। इस प्रकार सिरिंज में लगी हुई गोल गेंद के सामने वाले भाग को दबाने और छोड़ने से दवा गुह्य द्वार द्वारा अंदर पहुँच जाती है।

गिलीसरीन सिरिंजः—यह एक प्रकार की पिचकारी होती है जिसके बीच के हिस्से को नली कहते हैं जो देखने में गोल और लम्बी होती है। इसके एक सिरे पर नौजिल और दूसरे पर पिस्टन लगा होता है। इसमें पिस्टन निकाल कर दवा भर देते हैं और फिर पिस्टन लगा कर इसे व्यवहार में लाते हैं। इसमें भी डूस की भांति पानी भरा जा सकता है। केवल अन्तर इतना ही होता है कि डूस में पानी भर कर ऊंचा दीवार पर लटका देते हैं और

इसके लिये केवल तसले ही में पानी भरा रहने देते हैं। सिरिंज का एक सिरा पानी के तसले में और दूसरा सिरा जिसमें नौजिल लगी रहती है रोगी की गुदा में रहती है।

पिस्टनः—यह एक प्रकार की कांच की नली का ढक्कन होता है, जिसके बीच में एक छिद्र होता है। इस छिद्र में होकर एक धातु अथवा रबड़ की नली फँसी हुई होती है जो ऊपर नीचे की जासकती है। इस नली के बाहरी मुख पर तीन गोल कुन्दे लगे हुये रहते हैं जिन्हें अंगुलियों तथा अंगूठे की सहायता से नली को सुगमता से ऊपर नीचे कर सकते हैं।

नौजिलः—यह काले रंग की मुड़ी हुई अथवा सीधी लगभग ३ इञ्च लम्बी नली होती है। एनिमा देने के समय यही नौजिल गुदा में प्रवेश की जाती है।

यह सब वस्तुऐं हर गृहस्थी को अपने पास रखनी चाहिए। समय पड़ने पर जीवन रक्षा करती तथा कष्ट से छुटकारा दिलवाती हैं। यह वस्तुऐं अंग्रेजी दवा बेचने वालों के यहां मिलती हैं

मूत्र विज्ञान

मूत्र की मात्रा व वर्ण परीक्षा

जिस प्रकार हमें नित्य प्रति दोनों समय मल त्याग के लिये जाना आवश्यक और स्वास्थ्य के लिये हितकर है, उसी प्रकार मूत्र त्याग करना भी हमारे लिये आरोग्यप्रद है। मूत्र बन्द होजाने से कभी २ तो मृत्यु तक हो जाती देखी गई है। मूत्र भी शरीर का मैल है जिसे वृक रक्त में से पृथक करके मूत्र प्रणालियों द्वारा मूत्राशय में भेजते रहते हैं। इसके पश्चात् मूत्राशय परिपूर्ण होने पर अपनी स्वाभाविक संकोचन शक्ति से मूत्र को मूत्र मार्ग द्वारा बाहर निकाल देता है।

स्वस्थ्य व्यक्ति के मूत्र का रंग हलका पीलापन लिये हुये और पतला होता है। जिस प्रकार ज्वरादि अवस्था में तापक्रम बढ़ जाने से शरीर का जलीय अंश शुष्क हो जाने के कारण मूत्र कम आता है उसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में भी हमारे शरीर का तापक्रम बढ़ जाने से पेशाब को मात्रा कम हो जाती है। इसके विपरीत यदि मूत्र में अम्ल व क्षार की मात्रा अधिक हुई तो भी रंग गहरा हो जाता है। यदि पेट में कृमी पड़ गये हों तो पेशाब के बाद दूध

की तरह या चूने के पानी की तरह सफेद पेशाब आता है। यदि मूत्र बार २ जल्दी २ और अधिक मात्रा में आवे तो स्नायुविक सम्बन्धी रोग या दुर्बलता समझना चाहिये। मूत्र में एमोनिया होने के कारण एक प्रकार की तेज गन्ध आती है किन्तु ठंडा होने पर यह गन्ध उड़ जाती है, या कम हो जाती है। रात्री की अपेक्षा दिन में मूत्र का प्रमाण अधिक होता है। आयुर्वेद के मतानुसार
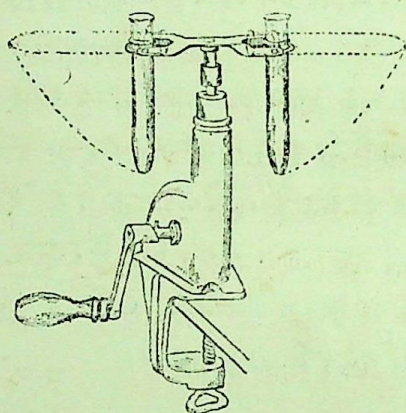
मूत्र परिभ्रामक यन्त्र

इस यंत्र की दोनों नलियों में मूत्र भर कर घुमाया जाता है। ऐसा करने से मूत्र में जो भी षित अंश अथवा कीटाणु होते हैं वह नलो के पैदें में बैठ जाते हैं। इस के बाद मूत्र निथार दिया जाता है और तलहटी के अन्श को दो चार बूंद काच पट्टिका पर रख कर अनुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षा की जाती है।

बात का प्रकोप होने पर मूत्र पाण्डु अथवा नील वर्ण व स्निग्धता का अभाव होता है। पित्त कुपित होने पर पीत वर्ण और स्निग्धता रहती है तथा कफ के कुपित होने पर श्वेत वर्ण, झागदार और स्निग्धता विशेष रहती है। मूत्र पर तिनके से तैल की बिन्दु डालो, यदि वह फैल जाय तो साध्य, यदि एक ही जगह तैरता रहे तो कष्ट साध्य और यदि डूब जाय तो असाध्य रोग के लक्षण समझना चाहिए।

अतिसार में लालिमायुक्त, जलोदर में घृत कणों के समान दाने, आमवात में वसा के समान स्निग्ध और तक्र के समान घन होता है वातज्वर में केशर के समान, पित्तज्वर में पीत वर्ण और सन्निपात में कृष्ण वर्ण का मूत्र आता है।

मूत्र कहां बनता है ?

मूत्र-मूत्राशय (Urinary Bladder) जो इच्छावर्ती मांस पेशियों की बनी हुई तिकौनी थैली होती है में आ २ कर एकत्रित होता रहता है। मूत्र पिंड कितनी ही बारीक नलियों का बना हुआ होता है और इन नलियों के आस पास बाल के समान बारीक नलियों का एक प्रकार का जाल फैला हुआ होता है, जिसमें से इन नलियों के शोषण करने वाले परमाणु पेशाब को खींचते रहते हैं और फिर मूत्र नल द्वारा मूत्र, मूत्राशय में पहुंचता है। इस प्रकार मूत्र द्वारा मूत्राशय के भरजाने पर उसके स्नायु संकुचित होकर मूत्र को गति प्रदान करते हैं और इसीको मूत्रवेग होना कहते हैं।

मूत्रवेग को रोकने से कभी २ जनेन्द्रियों में पीड़ा, मूत्र कृच्छ्र,
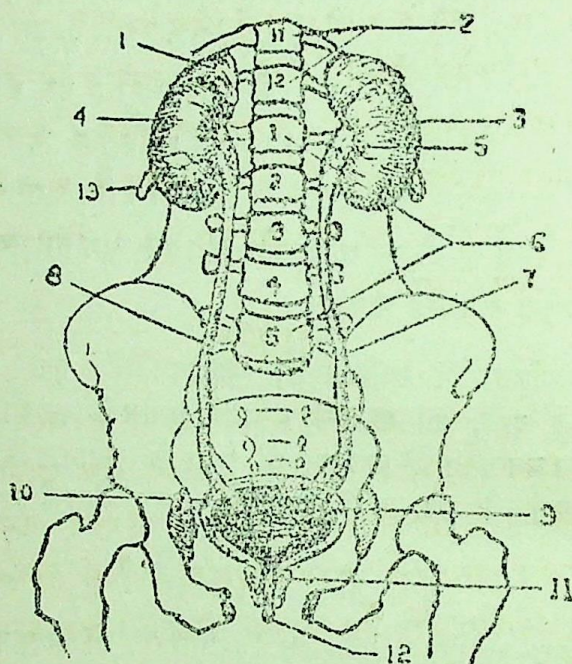
Urinary System मूत्रविसर्जन-संस्था

1 Adrenal gland मूत्र पिंडस्थग्रंथि 2 Vertebrea रीढ की हड्डियां पीठ 3 Left kidney बांया मूत्र-पिंड 4 Right kidney दांया मूत्र पिंड 5 Peilvlo of the kidney मूत्रपिंड श्रोणी 6 Lumber vertbrae रीढ की हड्डियां कमर 7 Left ureter मूत्र प्रणाली बांई 8 Right ureter मूत्र प्रणाली दांई 9 Bladder मूत्राशय 10 Ureteral opening मूत्रप्रणालीछिद्र 11 Urethra मूत्र मार्ग 12 Urethral opening मूत्र नलिका छिद्र 13 12th Hanging rib १२ वीं लटकती पसली।

सिर दर्द आदि रोग होजाते हैं। इस मूत्राशय के पिछाड़ी पुरुषों के मलाशय और स्त्रियों के गर्भाशय रहता है। दो मूत्र प्रणालियां (Ureters) इसी के ऊपरी भाग में प्रवेश करती हैं तथा नीचे के भाग में मूत्रोत्सर्जक नलिका (Urethra) जुड़ी रहती है। यह नलिका साधारणतया ६ से ८ इञ्च तक लम्बी होती है तथा इसकी दूसरी तरफ एक छिद्र होता है जो जननेन्द्रिय के अन्त में बाहर की तरफ खुलता है। यह सब वाले पृष्ठ ४१ के चित्र को मनन करने से ज्ञात हो सकेंगी।

घनत्व

मूत्र वर्ण अथवा तत् सम्बन्धी रोगों की परीक्षा करने के पूर्व उसकी घनता (Specific Gravity) की भी जांच करनी चाहिए स्वस्थ्यावस्था में मूत्र का घनत्व १०१५ से १०२५ तक रहता है। न्यून से न्यून १०१० और अधिक से अधिक १०३० माना गया है जो रोग होने का सूचक होता है। कुछ समय मूत्र

मूत्र की घनता बताने वाला यूरिनोमीटर
(Urinometer)

रखा रहने से उसका घन्तव बढ़ जाता है। इसलिये इसकी परीक्षा ताजा मूत्र की ही करना ठीक होता है। मूत्र का घनत्व यूरिया की

मात्रा पर निर्भर रहता है। मूत्र का घनत्व योरिनोमीटर से देखा जाता है जिसकी तरकीब यह है। मूत्र को किसी कांच के पात्र में लेकर उसके झाग आदि निकाल दे और यूरिनोमीटर को उसमें धीरे से सीधा खड़ा करदे और इस बात का ध्यान रखे कि यूरिनोमीटर पात्र के किनारे से तो नहीं छू रहा है। यदि मूत्र कम हो और यूरिनोमीटर उसमें तैर न सके तो Specific Gravity Beads से परीक्षा करले हलके नम्बर का दाना मूत्र के ऊपर तैरता रहेगा और समान अंक वाला जहां का तहां ठहरा रहेगा। यूरिनोमीटर पर १००० से १०६० तक के चिन्ह अंकित होते हैं। उसको १५० C पर अङ्कित किया गया है।

मूत्र में क्या २ होता है ?

यूरिया (Urea) यूरिकाम्ल (Uric Acid) हिप्युरिकाम्ल Hippuric Acid) सोडियम क्लोराईड (Sodium Chloride) फास्फोरिकाम्ल (Phosphoric Acid) गंधकाम्ल (Sulphuric Acid) अमोनिया (Ammonia) क्रिएटेनीन (Creatanine) क्लोरीन (Chlorine) पोटेशियम (Potassium) सोडियम (Sodium) कैल्शियम (Calcium) मग्नेशियम (Magnesium)

ऊपर लिखे हुये द्रव्यों में से कुछ द्रव्यों का संक्षिप्त विवरण अगले पृष्ठों में दिया गया है।

मूत्र सम्बन्धी रोगों का निदान

मूत्र अवरोध पर
कैथेटर (Catheter) का प्रयोग

मूत्र की नलिका में सूजन आने, सुजाक पथरी आदि रोग होने के कारण मूत्रेन्द्रिय में घाव पड़ जाने से और मूत्र न हो सकने पर कभी २ रोगी के पेट पर आफरा आजाता है और पीड़ा होने लगती है। कभी २ मूत्र न हो सकने के कारण मृत्यु तक हो जाती है। ऐसी दशा में पेशाब उतारने के लिए कैथेटर (मूत्र उतारने का एक औजार) का प्रयोग किया जाता है।

कैथेटर निकिल सिलवर, सिलवर, गम या रबर का बना हुआ होता है। इन सब में गम का सर्वोत्म माना गया है । यह अन्दर से पोला, देखने में कोमल तथा लचकदार होताहै और इसके अगले भाग में कटा हुआ छिद्र होता है जिसे मूत्र नली में प्रविष्ट कराकर मूत्र निकालते हैं।

दूसरे ढंग का जो कैथेटर निकिल सिलवर का होता है उसके भीतर एक बड़ा तार होता है जिसे शिलर कहते हैं और इसका अगला ग कुछ झुका हुआ होताहै। यह भी अन्दर से पोला होता है तथा

सिरे पर एक छिद्र होता है। दूसरी ओर जिसमें भीतर तार स्थित रहता है उसी के सिरे पर एक घुन्डी सी लगी होती है।

उपर्युक्त वर्णित कैथेटर पुरुषों के प्रयोग में आता है किन्तु स्त्रियों के प्रयोग में आने वाले कैथेटर में कुछ भिन्नता होती है। कारण पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का मूत्राशय निकट होता है इसलिये उनके कैथेटर की लम्बाई भी कम होती है और धातु का बना होता है तथा उसके सिरे पर ४-५ छिद्र होते हैं। छिद्र तरफ वाला भाग ही मूत्र के छिद्र में प्रविष्ट कराया जाता है।

कैथेटर का प्रयोग

कैथेटर का प्रयोग कराते समय यन्त्र के चौथाई उस हिस्से में जिसे मूत्रन्द्रिय में प्रविष्ट करना या कराना हो उस पर वैसलीन या गिलिसरीन लगा देना चाहिए ताकि चिकनाहट के कारण सरलता से अगाड़ी सरक सके और किसी तरह की रुकावट न हो। तत्पश्चात् रोगी को पलंग पर चित्त सुला कर कमर के नीचे तकिया लागाकर घोंटू सिकोड़कर पृथक २ रखना चाहिए। बांये हाथ से इन्द्रिय की सुपारी को धीरे से ऊपर की तरफ खींच कर उठाना चाहिए और दाहिने हाथ से कैथेटर को पकड़ना चाहिए। इन्द्रिय के छिद्र में कैथेटर का छिद्र वाला सिरा प्रविष्ट कराना चाहिए किन्तु कैथेटर का छिद्र रोगी के मूत्र नली की सीध में रहना आवश्यक है। कैथेटर प्रयोग के समय जहां पहुँच कर रुक जाये वहीं स्वयं रुक

जाना चाहिए। प्रवेश के उपरान्त भी कैथेटर को पकड़े रखना चाहिए। यदि कैथेटर रबर का हो तो उसके मुँह पर उँगली लगा लेना चाहिए। तदुपरान्त इन्द्रिय को नीचे झुका कर पेशाब कराना चाहिए। यदि निकिल का कैथेटर हो तो उसमें स्थित तार को सावधानी पूर्वक धीरे से खींच लेना चाहिए तदुपरान्त पेशाब आने लगेगा।

स्त्रियों के कैथेटर लगाते समय उनके मूत्र मार्ग में बांये हाथ की ऊँगली लगा कर दाहिने हाथ से कैथेटर पकड़ कर ऊँगली के सहारे यन्त्र को भीतर प्रविष्ट कराना चाहिए।

कैथेटर छोटे बड़े कई नम्बर के आते हैं अतः उनका रोगी की अवस्थानुसार प्रयोग में लाना चाहिए।

जिन मनुष्यों को रात में दो तीन बार मूत्र त्याग करने के लिए उठना पड़ता है तो समझ लेना चाहिये कि उनको भी वृक्क शोथ (Chronic Nephritis) मधुमेह (Diabetes) उदक मेह (Polyuria) वस्ति शोथ (Cystitis) आदि रोगों में से कोई रोग हो। मधुमेह रोग में तो १५ से २० सेर तक प्रति दिन मूत्र आने लगता है।

मूत्र में पूय (Pus Carpusies)

जिस मूत्र में पूय होगा तो उसमें एल्बयूमिन भी अवश्य होता है। यदि मूत्र में प्रति सहस्रांश मीटर १००,००० सेलें हों तो एल्ब्यूमिन १ प्रतिशत होता है। मूत्र में पूय सेलों की परीक्षा हितार्थ २४ घन्टों का मूत्र लेना चाहिए और भली प्रकार आलोड़ित

कर लेना चाहिए। परीक्षा नलिका में किंचित मूत्र लेकर उसमें दो बिन्दू टिंचर ग्वायकम (Tincture Guicum) डालें। यदि मूत्र में पूय होगा तो हरितवर्णी होजायगा। कास्टिक पोटाश Caustic Potash डालने से पूय रज्जूवत् प्रतीत होने लगती है।

आन्त्रिक (Typhoid fever)

ज्वरावस्था में पित्तज मूत्र रंजक (Urobilin) की मात्रा बढ़ जाती है। इस अवस्था में यूरेट्स और यूरोएरीथ्रीन आने से मूत्र का रंग गाढ़ा होजाता है।

यदि इसकी परीक्षा करनी होतो मूत्र में सम भाग (Saturalod Solution of Sulphanilic Acid in 5 per cent) मिलाने

के पश्चात् Sodium Nitrite का ५ प्रतिशत विलयन मिलाकर मूत्र को इतना हिलावे कि झाग उत्पन्न होजाएं। इसके बाद Strong Ammonia मिला दे। यदि मूत्र का रंग नारङ्गी होजाय तो समझना चाहिए कि आन्त्रिक ज्वर है।

मधु मेह (Diabetes)

जितना कार्बोज शर्करा, श्वेतसारादि हम खाते हैं वह द्राचौज का रूप बन कर यकृत् में जमा होती रहती है और आवश्यकतानुसार रक्त में मिलती रहती है। स्वस्थ्यावस्था में १००० भाग में ६—१२ भाग द्राचौज के होते हैं। हमारे शर्करा आदि अधिक खाने पर कभी कभी २१८ भाग तक पहुँच जाती हैं किन्तु इससे अधिक होने पर यह शर्करा रक्त से छन छन कर मूत्र में आने लगती है और इसी का नाम मधुमेह रोग होना कहते हैं। मधुमेह होने पर जिस स्थान पर रोगी पेशाब करता है उस स्थान पर चिंटियां आ लगती हैं। मधुमेह में मूत्र का घनत्व १०२५ से बढ़ कर १०३०—१०४० तक हो जाते देखा गया है। अत्याधिक रोग बढ़ जाने पर मूत्र काले रंग का आने लगता है। मधुमेह की परीक्षा के कितने ही तरीके हैं। एक यंत्र जिसे सेक्रोमीटर (Sacchrometer) कहते हैं से अच्छी परीक्षा होती है जिसका चित्र दिया जारहा है। इस यंत्रके २ मान पात्र और होतेहैं जिन पर ख. और ग अंक पड़ा हुआ है। क नलिका के दो मुख हैं। एक मुख में से परीक्षा के

लिए मूत्र और जल भरा जाता है और दूसरा जो नुकीला भाग है

सेक्रोमीटर
(Sacchrometer)
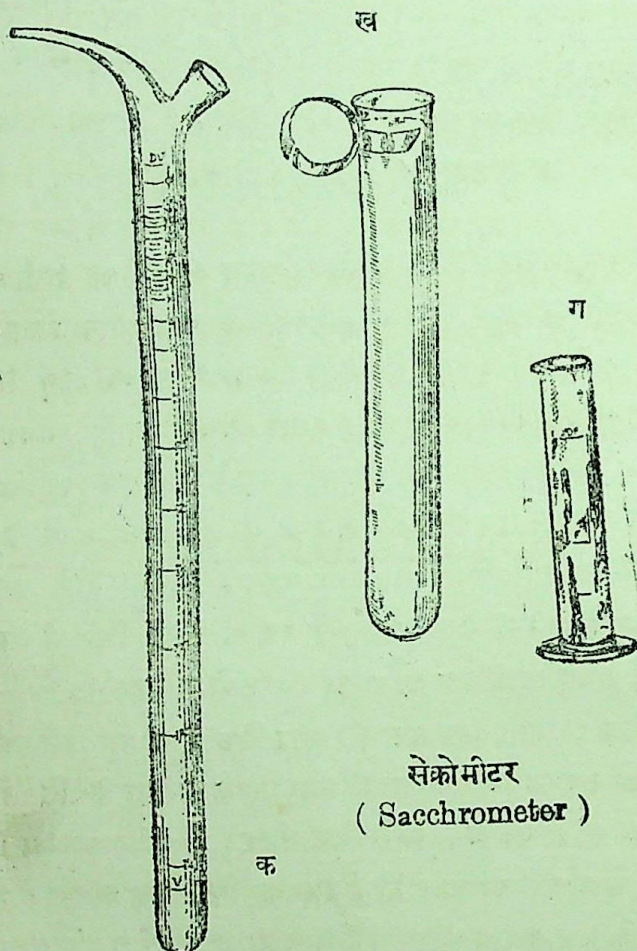
इसमें से परीक्षा के लिए मूत्र बूंद २ कर टपकाया जाता है।

इस नलिका में U अंक तक मूत्र और D U अंक तक पानी भर देते हैं। इसके पश्चात् खुले मुख पर अंगूठा लगाकर नलिका को दो चार बार उलटा सीधा कर हिला देते हैं ताकि मूत्र और पानी भली भांति मिल सकें। अब ख नामक पात्र लेकर उसके पहिले अङ्क तक फेहिंग बिलयन (क) भरदो और दूसरे अङ्क F तक फेहिंग विलयन (ख) भरदो तथा अङ्क D तक जल भरदो यदि अभिष्ट होतो। इसके बाद इन्हें मिलाकर नलिका ग में डाल कर स्प्रिट के लैम्प पर गर्म करो और थोड़ा २ मूत्र नलिका क में से डालते रहो और जब तक डालते रहो जब तक नीली आभा निकलनी बन्द न होजाये इसके बाद नलिका के अङ्क को पढ़लें तो ज्ञात होजायगा कि मूत्र में कितना प्रतिशत ग्लूकोज यानी शर्करा मौजूद है।

एलब्युमिन (Albumen)

मूत्र में आने वाली सफेदी की जब परीक्षा करनी हो तो मूत्र सर्वदा स्वच्छ लेना चाहिए। यदि मूत्र अस्वच्छ होतो उसे दो तीन बार (Filter paper) पोतन पत्र द्वारा स्वच्छ कर लें। यदि ऐसा करने पर भी मूत्र में स्वच्छता न आवे तो समझना चाहिये कि उसमें कीटाणु हैं। ऐसी अवस्था में मूत्र में वेरियम कार्बोनेट (Barium Carbonete) का चूर्ण डाल कर और कुछ देर हिला कर पोतनपत्र द्वारा छान लें अथवा परिभ्रामक यंत्र की नलियों में डाल कर कुछ देर घुमायें। ऐसा करने से कीटाणु नली के तल पर

एकत्रित होजाते हैं और मूत्र में स्वच्छता आजाती है। आनक यंत्र का चित्र पृष्ठ ४० पर दिया जाचुका है। एल्ब्युमिन की परीक्षा करने की कितनी ही प्रणालियां हैं किन्तु इसके लिये एक यंत्र आता है जिसे एस्बाक्स एल्ब्युमिनीमीटर (Esbches Albuminimeter) कहते हैं। जिसका चित्र बराबर में दिया गया है। यह एक लम्बी टयूब होती है जिसके ऊपर अङ्क अङ्कित होते हैं। इसमें मूत्र डाल कर पिक्रीकाम्ल मिला देते हैं। इसके मिलाने से प्रक्षेप उत्पन्न होकर शनैः २ नीचे बैठ जाता है। जब सारा प्रक्षेप नीचे बैठ जाता है तो उसे पढ़ लिया जाता है कि कितना एल्ब्युमिन मूत्र में है। दूसरी साधारण परीक्षा यह भी हो सकती है कि यदि मूत्र के हिलाने पर झाग उत्पन्न हों और कुछ समय स्थायी रहें तो मूत्र में एल्ब्यूमिन या पित्त की उपस्थित समझना चाहिए। ट्यूब के ऊपर प्रति १००० सी० सी० (Litre) मूत्र में उपस्थित एल्ब्युमिन की मात्रा ग्रामों (Grams) में दर्शाई गई है। यदि १००० सी०सी० में १ ग्राम से कम मात्रा एल्ब्युमिन की उपस्थित हो, तो यह यन्त्र उसका ज्ञान नहीं करा सकता।
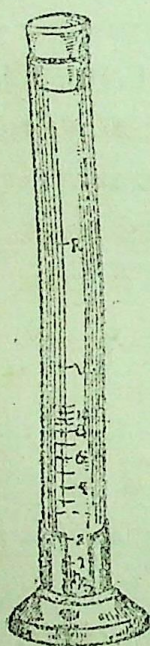
एस्बाक्स
एल्ब्युमिनीमीटर

मूत्र में रक्त

कभी कभी २ मूत्र में रक्त कण भी आजाया करते हैं जो अणुवीक्षण यंत्र द्वारा जाने जा सकते हैं। यह रोग वृक्कशूल के वेग के पश्चात् कभी २ हो जाया करता है। अधिक रक्त कण होने पर मूत्र का रंग अधिक रक्त वर्ण और अल्प मात्रा में होने पर धूम्र के समान वर्ण हो जाता है।

रक्त कणों के अतिरिक्त कभी रक्तांश भी आजाया करता है और ऐसे मूत्र का रंग रक्तपीत होता है। ऐसा मूत्र यदि कुछ समय रखा रहे तो उसके नीचे एक प्रकार का जालासा बैठ जाता है। यदि हम इस झिल्झड़े (Fibrin) को मूत्र से अलहदा निकाल कर ५ से १० प्रतिशत लवण विलयन से धो डालें तो इसका निर्णय हो जाता है। रक्ताणु पीत वर्ण के गोल पैसे की भांति मध्य में हलके और परिधि पर गूढ़ रंग वाले दिखाई देते हैं।

मूत्र में लावणिक तथा कोषाणु अंशों की रासायनिक परीक्षा

लावणिक तथा कोषाणु अंशों का निर्णय करने के लिये हमें प्रथम मूत्र को परिभ्रामक यंत्र में रखकर घुमाना पड़ता है। इसके पश्चात् मूत्र के ऊपरी भाग को धीरे से निथार कर फैंक देते हैं और नीचे बैठे हुये अंश में से दो चार बिन्दु काच पट्टिका पर रख कर

अनुवीक्षण यंत्र (Microscope) द्वारा परीक्षा की जाती है। जिसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है।

लावणिक अंश

यूरिकाम्ल Uric Acid

मूत्र में उपस्थित मूत्र रञ्जक की मात्रानुसार यह पीत, कपिश अथवा हल्का नसवारी आदि रंग का होता है। अधिक मात्रा होने पर बिना अनुवीक्षण यंत्र भी दिखाई देने लगता है और लाल मिर्च के चूर्ण की भांति मूत्र पात्र के पैंदे में दिखाई दिया करता है। यह स्फटिक परस्पर घिस २ कर नुकीले बन जाते हैं अथवा दो चार मिलकर परस्पर पैंदे में बैठा हुआ पुष्पवत् दिखाई देने लगते हैं।

यूरिकाम्ल स्फटिक (Uric Acid Crystals)

सोडा यूरेट्स Urates of soda

यह नवजात शिशुओं के मूत्र में अत्याधिक पाया जाता है और इसी कारण इनके मूत्र से वस्त्र पर पीला धब्बा पड़ जाता किन्तु आयु बढ़ने पर स्वयं आना बन्द हो जाता है । यह स्फटिक वृत्ताकार और चारों ओर से कण्टक रूप छोटे २ प्रवर्द्धन निकले हुए होते हैं ।
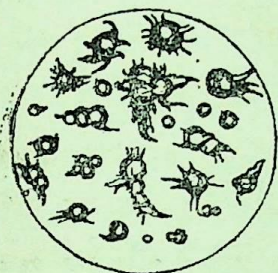
सोडायूरेट्स
(Urates of Soda)

कैलशियम आक्जेलेट्स Calcium Oxlates

यह स्फटिक अष्टकोणीय अथवा डमरू की आकृति के समान होते हैं । कभी २ इस के स्फटिक मूत्र में श्लेष्मा के ऊपर बैठ कर श्लेष्मा सहित तल पर चले जाते हैं तब यह हिम की पतली तह के समान प्रतीत होती है ।

कैलशियम आक्जेलेट्स

सिस्टीन Cystin

इसका वर्ण यूरेट्स की भांति कपिल होता है। इस पर शुक्रामल (Acetic Acid) डालने पर षटकोणीय रूप धारण कर लेते हैं और अमोनिया (Ammonia) में लीन हो जाते हैं किन्तु अमोनिया भस्म होने पर फिर दिखाई देने लगते हैं।

ल्यूसीन Leucin

यह पीत वर्ण के गोलाकृति स्फटिक होते हैं और यह यकृत क्षय (Atrophy of lever) में पाए जाते हैं।

टाइरोसीन Tyrosin

इसके स्फटिक सूचिकाकार में उपलब्ध होते हैं और यह प्रायः ल्यूसीन के साथ भी पाये जाते हैं। यह एकत्रित होकर सूची समूह रूप में दृष्टि गोचर होते हैं।

कैलशियम फास्फेट्स Calcium Phosphates

अम्लीय मूत्र में लीन रहते हैं और क्षारीय मूत्र में उष्ण करने पर प्रत्यक्ष रूप में अलग हो जाते हैं। इसके स्फटिक आकाश के नक्षत्रों की भांति परितः किरणों को प्रक्षिप्त करते हुये दिखाई देते हैं।

एमोनियम तथा मगनेशियम के फास्फेट्स

Ammonium Magnesium Phosphates.

यह श्वेतवर्ण के अमोनियम युक्त क्षारीयमूत्र में पाए जाते हैं। इसके स्फटिक अपूर्ण त्रिपार्श्व रूप में पाए जाते हैं और मूत्र के उष्ण करने पर तुरन्त पृथक हो जाते हैं।

अमोनियम यूरेट्स

Urates of Ammonium

यह कंटकाकीर्ण अपार दर्शक क्षारीय मूत्र में पाए जाते हैं और प्रायः मूत्राशय शोथ में उत्पन्न होते हैं।
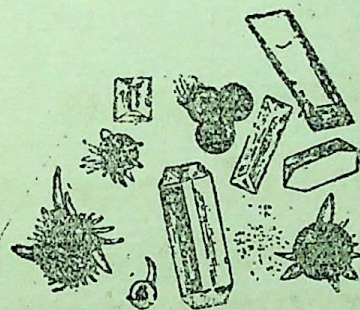
अमोनियम यूरेट्स (Urates of Ammonium)

श्लैष्मिक कला के कोषाणु
Cayluria Cells

वृक्क, मूत्र प्रणाली, मूत्राशय और मूत्र मार्ग की श्लैष्मिक कला के कुछ कोषाणु मूत्र द्वारा बाहर आते रहते हैं। इसके अतिरिक्त पौरुष तन्तु (Prostate Threads) प्रणालीय लिप्त (Tube Casts) आदि भी पाये जाते हैं।

श्लैष्मिक कला के स्वस्थ्य सेलें

शुक्राणु (Spermatozoa)

मूत्र में शुक्राणु भी कभी २ आजाते हैं किन्तु यह आते हैं केवल स्वप्नावस्था के बाद ही। मूत्र त्यागने के पश्चात् कभी श्वेत लेसदार वस्तु स्रवित हुआ करती है जिसे अधिकांश भूल से जनता वीर्य समझती है किन्तु वास्तव में यह वीर्य नहीं होता अपितु फास्फेट्स होते हैं।

अनुपकार रोगाणु

इसके अतिरिक्त कुछ कीटाणु ऐसे भी होते हैं जो वायु द्वारा मूत्र में प्रविष्ट होकर वृद्धि को प्राप्त होते हैं ऐसे रोगाणुओं को अनुपकारक रोगाणु कहते हैं।

मुख शुद्धि या दतौन

मल मूत्र परित्याग के उपरान्त मुख शुद्ध करना चाहिये। मुख शुद्ध करने के लिये नीम या बबूल की दतौन या शुद्ध सुगन्धित लाभकारी मंजनों का उपयोग करना चाहिये। ऐसा करने से दाँतों का मैल, कफ तथा छाती पर स्थिति पित्त साफ हो जाता है। दाँतों में कीड़े लगने, दर्द होने तथा कण्ठ रोगों के उत्पन्न होने को रोकता है। दतौन न बहुत पतली और न बहुत मोटी होनी चाहिये। दतौन को प्रथम दाँतों से चबा कर कूँची की भाँति बनालो फिर दाँत व डाढ़ों को भली भाँति रगड़ो, ताकि उन पर विषैला रोग उत्पन्न कारक मैल दूर होजाय। ऐसा करने के उपरान्त दतौन को चीर कर बीच में से दो सीधे टुकड़े कर उसे धनुष की भाँति मोड़लो फिर जीभ के ऊपर शनैः २ इस प्रकार रगड़ो कि जीभ के ऊपर का जमा हुआ मैल दूर होजाय। दतौन करने या मंजन लगाने के पश्चात् शीतल जल से खूब कुल्ले करना चाहिये। ताकि रोगोत्पादक गरम दूषित अबखरे निकल जायें। रोग जन्तु मारने के लिये नीम की दतौन और दांतों को दृढ़ करने के लिए बबूल की दतौन उपयोगी होता है। अजीर्ण, वमन, श्वांस, कांस, नवीन ज्वर वाले हृदय रोग के रोगी, नेत्र, कान आदि के रोगी को दतौन न करना चाहिये।

हमारा भोजन।

Eat at fixed hours and do not eat too much,
Chew well your food, and little water touch.
A little food at morn, full meal at noon,
A supper in the evening is a boon.

—New Science of health.

अर्थात्—भोजन नियत समय पर ही करो किन्तु अधिक न खाओ, मुख में भली भांति चबाओ और पानी कम पीओ। प्रातःकाल हलका, दोपहर और सन्ध्या समय पूरा भोजन करना सर्वोत्तम है।

जिस प्रकार शारीरिक परिश्रम करने से गर्मी उत्पन्न होती है और उससे शरीर का जल तप्त हो कर हृदय में विकलता और दाह उत्पन्न करता है और हमें जल पीने की आवश्यकता प्रतीत होती है उसी प्रकार खाली पेट में जब रक्त अधिकता से एकत्र होने लगता है और पेट की गिलटियाँ फूलने लगती हैं तब पेट के स्नायुओं में एक प्रकार की विकलता उत्पन्न होने लगती है और हमें भोजन करने की आवश्यकता प्रतीत होती है जिसे हम दूसरे रूप में भूख लगना कहते हैं।

यह तो सभी जानते और समझते ही हैं कि निरन्तर दिनरात की क्रियाओं के करने या होने से हमारे शारीरिक अंग प्रत्यंग तथा अभ्यान्तरिक शक्तियों का क्षय होता रहता है और यह कमी

केवल हमारे भोज्य पदार्थों द्वारा ही दूर की जा सकती है या होती रहती है। इसलिये इस लक्ष्य को सम्मुख रखते हुये हमारा यह आवश्यक कर्त्तव्य हो जाता है कि हम सदैव एक ही प्रकार का भोजन न करें बल्कि ऋतु, अवस्था, प्रकृति और आवश्यकतानुसार अलटते पलटते भोजन करते रहना चाहिए क्योंकि बच्चों, युवकों, बृद्धों और रोगियों की पाचन शक्ति, रुचि तथा परिस्थितियों में काफी भिन्नतायें पाई जाती हैं अतः हमारा कर्त्तव्य होजाता है कि हम उन्हीं के अनुकूल खाद्य पदार्थों का उपयोग करें। यदि हम यह चाहें कि स्थूलकाय और क्षीणकाय दुबले पतले मनुष्य के लिये तथा शारीरिक और मानसिक परिश्रम करने वाले मनुष्यों को एकसा भोजन देने से काम चलालें तो यह उपयुक्त न होगा। उन्हें तो पृथक २ और भांति २ के भोज्य पदार्थ देने से ही उनकी जीवन नौका सुचारु रूप से चल सकती है।

भोजन के विषय में वैज्ञानिक दृष्टि से इस बात का विचार अवश्य रखना चाहिए कि हमारे शरीरस्थ जिन २ तत्वों का ह्रास हो रहा हो उनकी अवश्य पूर्ती होती रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारा भोजन ही रोग उत्पादक है और भोजन ही रोग निवारक हो सकता है।

अब पिछला जमाना नहीं रहा। लकीर पर फकीर होने वालों की गिनती अंगलियों पर रहगई है। पाश्चात्य पदार्थ वैज्ञानिकों ने भोजन का विश्लेषण किया है और यह भी पता लगा लिया है कि

किस २ अन्न व खाद्य पदार्थ में कौन कौन से तत्व हैं और वह किन २ रोगों में हितकर हैं या हो सकते है। इतना ज्ञात होजाने पर रोगानुसार भोजन का शीघ्र ही निर्णय किया जा सकता है।

इस के पूर्व कि हम खाद्य पदार्थ सम्बन्धी पाचों तत्वांशों का वैज्ञानिक विवेचन करें प्रथम कुछ साधारण ऐसी उपयोगी बातें लिख रहे हैं कि जिन का ज्ञान प्राप्त कर लेना सर्व साधारण के लिए उपयोगी और लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

भोजन सम्बन्धी कुछ ज्ञातव्य बातें

भोजन करते समय जो कौर हम मुख में डालते हैं वह कण्ठ में होकर अन्नवाहक नली द्वारा पाकस्थली में पहुंच जाता है। यहाँ पर पेट की गिलटियों से बना हुआ पाचन रस सम्मिलित हो इसे लेही के माफिक पतला कर देता है जिसे हम भोज्य रस के नाम से पुकारने लगते हैं। चार पाँच घन्टे में पेट के बार बार फूलने और सिकुड़ने के कारण इसका भी रस आंत द्वारा अंत्रमूत्र भाग में आजाता है जहाँ पित्त रस और क्लोमरस सम्मिलित हो इस रस को श्वेत दूध के समान कर डालते हैं। जिसे एकरस कहते हैं। तत्पश्चात् इसे २३ फीट लम्बी आंतों की यात्रा करनी पड़ती है। भ्रमण करते समय इसका एक और भी रस खिचता रहता है जो बड़ी आंतों में जमा होता रहता है और फोक या अपच पदार्थ गुदा द्वारा बाहर निकलता रहता है जिसे पाखाना या मल के नाम से पुकारते हैं।

भोजन उदरस्थ करने के पूर्व उसको मुख में भली भांति चबाया जाय ताकि कण्ठस्थ गिलटियों का रस उसमें अधिक संयोग हो जाये। इससे भोजन शीघ्र पच जाता है और दांतों का काम आंतों को नहीं करना पड़ता।

भोजन करते समय मनुष्यों की मानसिक तथा आन्तरिक भावनाएं शान्तिप्रद रहनी उचित हैं। जो मनुष्य चिन्ता में आच्छन्न अथवा क्रोधित हो भोजन करता है तो चाहें उसका भोजन कितना ही उत्तम क्यों न हो तथापि लाभप्रद नहीं होता। एक स्वास्थ्य वैज्ञानिक का मत है "Anxiety is the posion of life and cheerfulness is the best promoter of health" अर्थात् चिन्ता जीवन का विष और प्रफुल्लता स्वास्थ्य वृद्धि का उपाय है।

बहुत से मनुष्य मुरब्बे, सोहनहलवा, रबड़ी आदि गरिष्ठ भोजन करने के लालची होते हैं, चाहे वे दुग्ध पचन करने में भी असमर्थ हों। अन्त में इन दुष्कृतियों का यही परिणाम निकलता है कि उनको शीघ्र ही नाना भांति के उदर सम्बन्धी रोग आ घेरते हैं।

स्नान के पश्चात् शीघ्र ही भोजन कर लेना आरोग्य प्रदायक नहीं है कारण स्नानोपरान्त पाकस्थली में रक्त आवेश युक्त होता है। एतदर्थ ही हमारे पूर्वजों ने भोजन के पूर्व और स्नान के पश्चात पूजापाठ-पद्धति प्रचलित कर रक्खी है।

फलाहारी मनुष्य चिरकाल तक युवा बने रहते हैं क्योंकि फलों का अम्ल रस उनके हाड़ मास पर जंग नहीं लगने देता। यदि फल छिलके समेत खाये जायें तो और भी लाभदायक होते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि खाद्य पदार्थों को उबालने व पकाने से उनके रोग उत्पादक कीटाणु नष्ट होजाते हैं तथापि कुछ कीटाणु ऐसे भी हैं जो साधारण ताप से स्वयं नष्ट नहीं हो पाते और उनका विषैला प्रभाव नष्ट नहीं हो पाता है। इसके लिये हमारे पूर्वजों ने खाद्यपदार्थों में घृत या तेल की चिकनाई गेरने या लगाने की परिपाटी प्रचलित कर रखी है। चिकनाई से शक्ति तो हमें प्राप्त होती ही है किन्तु साथ ही साथ खाद्य पदार्थ का विषैला प्रभाव भी नष्ट हो जाता है। एक बार पके हुये भोजन को दुबारा पकाकर न खाना चाहिए दूध और सत्तू मिलाकर न खाये। गर्म चीजों के साथ दही न खाये। गर्म चीज या वर्षा के जल के साथ शहद न खाये। खिचड़ी के साथ खीर न खाये। छाछ दही और बेलफल के साथ केला न खाये। कांसे के बरतन में रखा हुआ ५-७ दिन का घी न खाये। उड़द की दाल और दही न खाये।

भोजन के पहिले मीठे पदार्थ, फिर नमकीन, फिर खट्टे और तत्पश्चात् कसैले या कड़वे पदार्थ खाये। यदि गर्म चीजें अधिक खाली हों तो पीछे थोड़ा सा दूध पीवे और अगर मिठाई ज्यादा खाली हो तो छाछ पीवे। केला अधिक खा लिये हों तो छोटी इलायची के दाने खा लेने चाहिएं।

भोजन के ६ तत्व

प्राकृतिक विज्ञानानुसार हमारे आरोग्य संवर्धन के लिये भोज्य पदार्थों को निम्न ६ विभागों में विभक्त किया गया है जिनका तत्वांश प्रायः सभी खाद्य पदार्थों में न्यूनाधिक रूप में पाया जाता है।

१. प्रोटीन (Protein)
२. वसा (Fat)
३. कार्बोज या स्टार्च (Carbohydrades or Starch)
४. खनिज लवण (Mineral salt)
५. जीवन तत्व (Vitamines)
६. जल (Water)

इन में से वसा, कार्बोज और प्रोटीन सजीव पदार्थ से यानी वनस्पति और प्राणियों से प्राप्त होते हैं। जल और खनिज लवणादि सजीव और निर्जीव दोनों पदार्थों से प्राप्त होते हैं। वसा और कार्बोज दोनों चीजें शक्ति प्रदायक हैं। यदि भोजन में वसा कम हो किन्तु कार्बोज अधिक हो तो भी प्राणी का काम चल सकता है। वसा देर में पचती है और कार्बोज उससे भी जल्दी पच जाता है।

इन तत्वों का कुछ तत्वांस वनस्पतियां अपने पत्तों द्वारा वायु से ण करती हैं और कुछ तत्वांस जड़ द्वारा पृथ्वी से। इसके पश्चात्

इन्हीं दो मूल तत्वों में प्रोटीन, वसा और कार्बोज आदि द्रव्य वे अपनी शक्ति से उत्पन्न कर लेती हैं। उन्हीं को शाकाहारी प्राणी खाते हैं और फिर उन्हीं शाकाहारी प्राणियों को खाकर मांसाहारी अपना जीवन निर्वाह करते हैं। अन्तिम सारांश यही निकलता है कि भोजन का मूल अवयव हमें वनस्पतियों से ही प्राप्त होता है।

प्रोटीन Protein

प्रोटीन शरीर में मांस बढ़ाने वाला एक पदार्थ होता है किन्तु इसका अधिक सेवन करने पर इसका अपच भाग शरीर में अम्लता उत्पन्न करता है, जिससे गुर्दे आदि के विकार उत्पन्न होते हैं।

प्रोटीन से अम्लता दूर करने के लिए हमारे भोजन में हरे शाक अथवा हरे फलों की आवश्यकता पड़ती है। फलों की क्षारता (Alkalinity) प्रोटीन की अम्लता (Acidity) को दूर करती है।

मस्तिष्क, नाड़ियां, फेंफड़े, हृदय और पेशियों के बनने में विशेष भाग प्रोटीन का ही होता है। हड्डियों में भी प्रोटीन का विशेष भाग रहता है और हड्डियां प्रायः २५—३० वर्ष की अवस्था तक ही विकास पाती रहती हैं इसलिए इस अवस्था तक प्रोटीन की कुछ विशेष मात्रा व्यवहार में रखनी चाहिये। प्रोटीन हमें वनस्पति वर्ग और पशु वर्ग दोनों से ही प्राप्त होती है।

प्रोटीन साधारण रासायनिक पदार्थ नहीं है बल्कि बहुत से पदार्थों का मिश्रण है। प्रोटीन के १०० भाग में ५४ कार्बन, ७ हाइड्रोजन, २२ आक्सीजन, १६ नाइट्रोजन और १ भाग गंधक का होता है।

प्रोटीन का अंश प्रायः सभी खाद्य पदार्थों में पाया जाता है, किसी में कम और किसी में ज्यादा किन्तु दाल वाले पदार्थों में अधिक होता है। आलू मूंगफली, तिल, खोआ और सरसों के तेल में प्रोटीन नहीं के बराबर होती है। दूध की प्रोटीन सर्वोत्तम मानी गई है कारण प्रथम तो इस के प्रोटीन में जितने भी तत्वों की आवश्यकता होती है प्रायः वह सभी इसमें रहते हैं। दूसरे यदि दूध आवश्यकता से अधिक उपयोग कर भी लिया जाता है तो उसकी प्रोटीन सड़ती नहीं है बल्कि लैक्टिक एसिडर (दुग्धाम्ल) पैदा करती है जिससे रोगों के कीड़े मर जाते हैं। शाकवर्ग और वनस्पतिवर्ग की भी प्रोटीन कम सड़ने पाती है।

प्रोटीन प्राण वायु द्वारा जलता है और इसके जलने से ही शरीर में शक्ति, स्फूर्ति और साहस की मात्रा उत्पन्न होती है। मनुष्य के शरीर में १८ फीसदी पोषक तत्व का भाग होता है। पोषक तत्व और ओषजन के संयोग से ओषजनीकरण क्रिया होती रहती है। जिससे इस तत्व से यूरिक एसिड, एमोनिया और जल इत्यादि पदार्थ नए बनते रहते हैं। इससे गर्मी उत्पन्न होकर शक्ति भी उत्पन्न

होती है। गुर्दे के रोग, सुजाक के रोग और हृदय रोग आदि में प्रोटीन का अंश मूत्र में आने लगता है।

यकृत, गुर्दा और ब्लड़प्रेशर की बीमारी में प्रोटीन कम लेना चाहिये। ४० वर्ष की अवस्था के उपरान्त प्रोटीन की मात्रा कम कर देना चाहिए। ४० वर्ष के पश्चात् प्रायः शरीर में शक्ति और उष्णता दोनों की न्यूनता होने लगती है तो उस अवस्था में उतनी और स्वाभाविक शक्ति को स्थिर और उचित मात्रा में बनाये रखने के लिये कार्वोज की मात्रा बढ़ा देनी चाहिये। परीश्रम करने वाले व्यक्ति को साधारणतः दैनिक ७½ छटांक कार्वोज चाहिये।

शाकान्न के अपेक्षा मांसान्न के प्रोटिन्स शीघ्र और सरलता से पच जाते हैं। प्रोटिन्स के कुछ भागों का कार्वो हैड्रेट्स चर्बी में परिवर्तन होसकता है। इन के द्वारा पाचन क्रिया के उपयोग में आने वाले रसों की उत्पत्ती होती है।

प्रोटिन्स का महत्व, उनके अंतर्गत पाये जाने वाले अमीनो-एसिड्स (Amino acids) नामक द्रव्य पर अवलंबित है। दूध और मांस आदि पदार्थों में समस्त प्रकार के अमीनो ऐसिड पाये जाते हैं जो उत्तम प्रोटिन्स माने गये हैं।

वसा Fat और उसके कार्य

वसा यानी चिकनाई हमें तेल वाले पदार्थों, घी, मक्खन, दूध, मेवा और पशुओं द्वारा उनकी चरबी से मिलती है। मनुष्य के शरीर के भार में १५ फीसदी चर्बी होती है।

प्रकृति ने हमारे सारे शरीर पर चर्बी की एक तह चढ़ा रखी है जो हमारे शरीरस्थ अवयवों को आकस्मिक सर्दी, गर्मी के प्रभाव से उनकी रक्षा करती है। चर्बी हमारे पेट में भी फैली हुई होती है जो तेजाब और खटाई के असर से आंतों व अन्य अंगों की रक्षा करती रहती है।

जो स्नेह हमें पशुओं से मिलता है उसमें विटामिन A होता है और वनस्पतियों के तेलों में विटामिन A नहीं के बराबर होता है। बहुत थोड़ी शाक भाजियों में भी स्नेह भाग पाया जाता है।

चर्बी दहन शील पदार्थ है जो जलाने से जल जाती है, जल से हलकी होने के कारण उस पर तैरती है, शीत के प्रभाव से जम जाती है और गर्मी में पिघल जाती है। एक माशा चर्बी के पूर्ण ओषजनी करण (जलने) से इतनी गर्मी उत्पन्न हो जाती है कि उस पर ८ सेर जल यदि गर्म करने रखा जाय तो जल १ दर्जा शतांश गर्म होजायगा। जब चर्बी का ओषजनीकरण होता है तब कर्बन द्विओषित गैस और मल उत्पन्न होते हैं और साथ २ ही उष्णता के रूप में शक्ति भी।

चर्बी में ग्लिसरिन, स्टीअरिक-एसिड, ओलिक-एसिड तथा पॉमिटक नामक आम्लों का भी किसी अंश में मिश्रण होता है। अन्न में चर्बी का महत्व अधिक है क्योंकि यह प्रोटिन्स को जीविष पदार्थों में बदल जाने की शक्ति का कम खर्च होने देती है। वसा में एक और महत्व की बात यह है कि यदि वसा का अवश्यकता से अधिक समावेश हमारे शरीर में होजाता है तो वह नष्ट न होकर संचित द्रव्य की भांति संचित रखी रहती है और आवश्यक्ता पड़ने पर काम में आती रहती है किन्तु आवश्यकता से अधिक चर्बी बढ़ जाने पर स्त्री पुरुष दोनों की जनेन्द्रिय शक्ति में अशक्तता आने लगती है। अधिक मेद तथा चर्बी वाले मनुष्य शारीरिक परिश्रम करने में असमर्थ देखे गये हैं। ऐसे मेद वाले प्राणियों के पेट भारी होकर थलथलाने व लटकने लगते हैं।

पशुओं के मांस में चर्बी विशेष मात्रा में होती है। इसमें कार्बोहैड्रेट्स नहीं रहते परन्तु क्षारों का कुछ प्रमाण अवश्य पाया जाता है।

कार्बोज या शर्करा

(Starch or Carbohydrades)

मनुष्य के शरीर में शर्करा का फी सदी १ भाग होता है और जो भोजन का एक उपयोगी अंग है। जो जल कर काम करने की शक्ति बढ़ाती है किन्तु इसकी अधिक उपयोगिता भी स्वास्थ्य के लिए हानिकर होती है।

यह शर्करा हमें अन्नों से, गन्ने से, अंगूर और दूध से मिलती है। यह समस्त शर्करायें शरीर में शोषण होने के पूर्व ग्लूकोज (Glucose) में परिवर्तित हो जाती है और इस प्रकार इनका चर्बी तथा प्रोटिन्स की सहायता से अधिक सरलता से शोषण हो जाता है। आज कल दानेदार चीनी का व्यवहार प्रायः सभी करते हैं किन्तु यह हमारे स्वास्थ्य के लिये विशेष उपयुक्त नहीं है कारण चीनी को इसके धातुखार (Mineral Juice) निकाल कर बनाते हैं।

दानेदार चीनी से देशी बूरा और बूरे से गुड़ या गन्ने का रस कहीं अधिक उपयोगी होता है। दानेदार चीनी यदि आवश्यकता से अधिक खा ली जावे तो वह कण्ठ, सीना व बड़ी आंत में सोजिश पैदा कर देती है। सबसे उत्तम शर्करा तो दूध तथा किशमिश, छुहारे या अंगूरों की होती है, जो पाचक, शक्ति वर्धक, रक्तशोधक और कान्ति वर्धक होती है।

खनिज लवण और उनके कार्य

नमक के बिना न तो हमारा भोज्य पदार्थ ही स्वादिष्ट बन सकता है और न शीघ्र ही पाचन हो पाता है। आजकल प्रायः दो ही प्रकार के लवण व्यवहार में आते हैं एक साँभर नमक और दूसरा लाहौरी। लाहौरी नमक की अपेक्षा सांभरी नमक हमारी आँखों के लिये अहितकर होता है।

सांभर नमक यदि अधिक मात्रा में खाया जाये तो आंख की काली पुतली के चारों तरफ एक सफेद वृत्त या घेरा बन जाता है इसे सोडियमरिंग कहते हैं।

यदि वास्तव में देखा जाय तो सच्चा स्वास्थ्यप्रद नमक तो हमें शाक, तरकारियों, हरी पत्तियों और ताजे फलों से ही प्राप्त होता है। इन से भी मिलने वाला नमक एक ही प्रकार का नहीं होता अपितु इसके कितने ही भेद और पृथक पृथक गुण और प्रभाव वाले होते हैं जैसा कि नीचे लिख कर दर्शाया गया है।

लवणों का शरीर में ५ या ६ फीसदी भाग होता है। विशेष कर यह हड्डियों व दांतों में अधिक पाया जाता है। मृत्यु उपरान्त जब शरीर जला दिया जाता है तब केवल यही पदार्थ राख की सूरत में रह जाता है।

कैलशियम Calcium

कैलशियम की हड्डियों के बनने में बड़ी आवश्यकता रहती है। गर्भवती स्त्रियां और दूध पिलाने वाली स्त्रियों को भी कैलशियम की अधिक आवश्यकता होती है। कैलशियम की कमी के कारण ही दिल धड़कने की बीमारी हो जाया करती है। इसी की कमी के कारण दांतों में विकार उत्पन्न होकर गिरने लगते हैं। कलशियम की कमी के कारण ही नाखून खराब हो जाते हैं। उनमें धारियां पड़ जाती हैं, टेढे मेढे हो जाते हैं, फटने और चटखने लगते हैं।

दूध में कैलशियम अधिक मात्रा में पाया जाता है। मांस पालिश किया हुआ चांवल, गांठदार और जड़वाली तरकारियां, मूली, गाजर, आलू, चीनी आदि में कैलशियम नहीं के बराबर होता है। हरी तरकारियां, फल, दाल और हरे सागों में जो कुछ भी कैलशियम होता है हम उन्हें उबालकर, भूनकर, सेक कर और उनमें तरह तरह के मसाले मिलाकर नष्ट कर देते हैं और जो कुछ बच जाता है वह प्रायः गुण हीन हो जाता है। बड़ों की अपेक्षा बच्चों को कैलशियम दुगनी मात्रा में मिलना चाहिए। कैलशियम दूध, गेहूँ, शलजम, टमाटर, लौकी, ककड़ी, सिंघाड़े, केला, मुनक्का, सेव और अन्नास आदि फलों से प्राप्त होता है।

लोहा Iron

हमारे रक्त में जो लालिमां दिखाई देती है वह रक्त कणों का ही कारण है। यह रक्त कण उस आक्सिजन को जो हम स्वांस द्वारा फैंफड़ों में खींचते हैं, शरीर के कोषाणुओं में पहुँचाते हैं और उनके विकारों को नष्ट कर वृद्धि को प्राप्त होते रहते हैं।

रक्तकण एक और कार्य करते हैं वह यह है कि आंतों में पचकर भोजन का जो अंश रक्त में मिलता है उसकी दहन क्रिया करने में सहायक होते हैं। ऐसे उपयोगी रक्त कणों में लोहा पर्याप्त मात्रा में रहता है।

हरी पत्ती वाले साग, टमाटर, प्याज, मेथी, बथुआ और पालक आदि में लौह अधिक मात्रा में रहता है किन्तु इन्हें हम उबाल कर इसके पानी को फैंक देते हैं और इस प्रकार लोहे का लाभप्रद अंश पर्याप्त मात्रा में निकल जाता है।

पांडूरोग, रक्ताल्पता, गर्भवती स्त्री के पीतवर्ण होने पर अथवा अधिक समय ज्वर ग्रस्त रहने पर प्रायः लोह भस्म का प्रयोग किया जाता है। गाय और स्त्री के दूध में लोहे की मात्रा कम होती है किन्तु जितना भी होता वह उत्तम वर्ण का और रक्त में तुरन्त मिल जाने वाला होता है।

आडू, अनार, खिगरी, इमली, अमरूद, जामुन, करौदा, खीजूर, किशमिश, छुहारा, अंजीर, मकोय, सेब में अधिक लोह होता है।

इससे कम केला, कमरख, अंगूर, कटहल लुकाट, आम, ताड़, पपीता, नासपाती, बेर और संतरा आदि बहुत ही कम होता है।

फासफोरस Phosphorus

फासफोरस भी कैलशियम से मिलता जुलता और एक आवश्यक लवण है। शरीर विकास, मस्तिष्क विकास तथा प्रणाली विहीन ग्रन्थियों पर इसका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। इससे रक्त को सहायता मिलती है। यदि फासफोरस वाले पदार्थ अधिक खाये जायँ और कैलशियम वाले कम तो इसका कुप्रभाव शरीर पर अवश्य पड़ता है और दाँत बेडौल और कुरूप हो जाते हैं।

फासफोरस वाले पदार्थ कैलशियम वाले पदार्थों के साथ ही खाने से विशेष गुणकारी होते हैं और यदि फासफोरस वाले पदार्थ अधिक और कैलशियम वाले कम खाये जायेंगे तो संभव है कि लाभ की जगह हानि होने लगे। हड्डियां व दांत आदि के बनने में यह भी सहायता पहुंचाता है। १०० ग्राम खालिस दूध में ·०९३ ग्राम फासफोरस होता है।

सेब, केला, खजूर, अंजीर, अमरूद, करोंदा, नीबू, लुकाट, आम, नारंगी, ताड़, नासपाती, अलूचा, अनार, पपीता, सिंगरा, किशमिस, और टमाटर इमली आदि में इसका विकास मिलता है

सलफर Sulphur

मुख पर मुहांसे निकल आना, खुजली होना, चमड़ा काला पड़ जाना आदि विकार शरीर में गंधक की कमी के ही कारण होते दिखाई देते हैं।

मूली, प्याज, फूलगोभी, लालगोभी, शलगम आदि में सलफर मिलता है। चुकन्दर और गाजर भी चमड़े को ठीक रखते हैं। चर्म की रुक्षता दूर होकर कान्ति और मृदुलता आजाती है।

पोटेशियम Potassium

यह खनिज पदार्थों में मिलता है। अगर यह नमक अधिक मात्रा में लिया जायगा तो सोडियम की मात्रा शरीर से कम हो जायगी। गाजर, पालक, टमाटर और प्याज आदि में पोटेशियम मिलता है।

क्लोरिन Chlorine

क्लोरिन से पेट में नमक का तेजाब बनता है जो खाद्य वस्तुओं को पचाने में सहायता पहुंचाता है। यह तेजाब हमारे पेट की ग्रन्थियों से बनता है जो रक्त द्वारा खिंच कर आता है।

क्लोरिन से रक्त चाप नहीं बढ़ने पाता। यह तत्व हरे शाक तरकारियों, पालक, टमाटर और केला आदि में पाया जाता है। बहूमूत्र, गठिया आदि रोग में यह नुकसान पहुंचाता है।

फ्लोरिन Flourine

यह भी एक प्रकार का खनिज पदार्थ है। भोजन में इस की कमी होने से नेत्र विकार उत्पन्न होने का भय रहता है। लहसुन, प्याज, पालक, गोभी, चुकन्दर, काडलिवर आइल और अन्डे की जर्दी वगैहरा में यह पाया जाता है।

तांबा Copper

तांबा पाचन क्रिया में सहायता पहुंचाता है तथा कृमि और विषैले विकारों को नष्ट करता है। यह गाजर, गोभी, मूली, शलगम, टमाटर, प्याज, आलू, पालक आदि में पाया जाता है।

मगनेशियम Magnesium

इस पदार्थ की कमी होने पर पुरुष नपुंसकत्व को प्राप्त होता है। स्त्रियां बच्चों से घृणा करने लगती हैं। यह अनाज के ऊपरी भाग में विशेष पाया जाता है। मगनेशियम की अधिकता होने पर कैलशियम निकल जाता है।

नीबू, अंजीर, ककड़ी, बादाम, पालक, मूली, पात गोभी, गेहूं, अंडे की ज़र्दी आदि में होता है। जब यह लवण शरीर में अधिक पहुंचता है तो कैलशियम कम हो जाता है। इसका प्रभाव इंटरनल ग्रन्थियों पर अच्छा पड़ता है। यह ग्रन्थि ठीक रहने पर हम में साहस का संचार बढ़ता है।

सोडियम Sodium

सोडियम शाक तरकारियों में पाया जाता है। यह लवण हमारे शरीर रक्त में नहीं मिल पाता बल्कि पाचन रस और पित्त को बना कर इसका बिना पचा भाग का बहुत कुछ अंश शरीर से बाहर निकाल दिया जात है।

आयोडिन Iodine

आयोडिन गले की थाईराइड ग्लैंड्स को भी स्वस्थ्य रखता है। आयोडिन की कमी के कारण ही घेंघा जैसे रोग उत्पन्न होते हैं। थाइराइड ग्लैंड से एक प्रकार का और भी रस निकलता है जिससे बालों का पोषण होता है।

समुद्र के आस पास या पानी में पैदा होने वाली चीजों में यह विशेष पाया जाता है। जैसे सिंघाड़ा, कमल गट्टा, कसेरू, झींगा मछली, काडलिवर आइल आदि में।

जीवन तत्व (VITAMINES)

विटामिनों का अन्वेषण आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व सर फ्रेडारिक कोलैंड हापकिन्स ने किया था। जो चीजें हमारे नित्य प्रति व्यवहार में आती रहती हैं उन सभी पदार्थों से भी हम प्रायः विटामिन ग्रहण कर सकते हैं किन्तु कब, जब हम उन्हें प्रकृति प्रदत्त स्वरूप में ही ग्रहण करें। प्रथम तो हम उन्हें छील छाल कर उनका बहुत कुछ लाभप्रद तत्व कूड़े के ढ़ेर पर फैंक आते हैं और फिर बचे खुचे को उबाल कर उबले हुये पानी को भी फैंक देते हैं। इस पर भी फैशन परस्त जीव को चैन नहीं पड़ता और अपने स्वाद के निमित्त उसके रहे सहे तत्वों को नमक, मिर्च, मसाला आदि मिला कर और भी रहे सहे उसके प्रभाव को नष्ट कर डालते हैं।

इस प्रकार हम असली विटामिन के तत्वों को तो छील कर, उबाल कर और तीक्ष्ण मसाले मिला कर निकाल देते हैं और रह जाता है हमारे पेट में केवल खाद्य पदार्थ का फोक मात्र। अभी तक विज्ञानिकों ने ७ प्रकार के विटामिनों का आविष्कार किया है और उन्हें ए, बी, सी, डी, ई, एफ और जी के नाम से पुकारा है।

विटामिन ए

विटामिन ए की युवाओं की अपेक्षा बच्चों को और दुग्ध पिलाने वाली स्त्रियों को अधिक आवश्यकता रहती है। यह चरबी या वसा में घुलनशील है इसलिए उसमें सुरक्षित रहता है। मांस

वेशियों में बहुत ही कम पाया जाता है। खाद्य पदार्थों को तेज आंच पर पकाने से बहुत कुछ अंश ए विटामिन का नष्ट हो जाता है।

यह विटामिन मक्खन, दूध, घी, दही, मठा, पालक, बन्द गोभी, टमाटर, मूली, आलू, गाजर, नीबू, चौलाई, धनिया की पत्ती, सहिजन की फली, पपीता, मांस आदि में मिलता है। पालक के पत्ते में तो घी से तिगुना होता है। खजूर, कटहल, आम, नारंगी, पपीता और टमाटर में अधिक मात्रा में और इससे कम कमरख, अंजीर, केला, अंगूर, नासपाती और बेर आदि में होता है। किशमिश और अनार में बिलकुल नहीं होता।

दाल, चांवल, गेहूँ, सेम, नारियल के तेल में विटामिन ए कम होता है। हरी मिर्च और हरे टमाटर में ए विटामिन होता ही नहीं है किन्तु इनके पकजाने पर उत्पन्न हो जाता है।

सोड़ा में पकाने से विटामिन ए नष्ट नहीं होता किन्तु खटाई डालकर पकाने से नष्ट हो जाता है। विटामिन ए के प्रभाव से ही हमारे गले के अन्दर की श्लैष्मिक कला सबल रहती है। इसके सबल रहने से हमारी रोग निवारक शक्ति बनी रहती है और रोग उत्पन्न कारक कीटाणु जो भी मुख द्वारा गले में पहुँचते हैं, वह प्रायः नष्ट होते जाते हैं और यदि कोई अन्दर पहुँच भी जाता है तो वह निर्बल और शक्तिहीन होकर पहुँचने पाता है इसी कारण उसका प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर नहीं होने पाता।

विटामिन ए घास खाने वाले पशु हरे पत्तों और हरी घासों से, मांसाहारी जीव अन्य पशुओं का शिकार कर उनके मांसादि और मुख्य कर यकृत से और जलजीव पानी का सेवार, काई और घास आदि खाकर प्राप्त करते हैं।

विटामिन ए के अभाव का प्रभाव हमारी आंखों पर विशेष रूप से पड़ता है। आंखों के पलक सूज जाना और उनका जगह २ से चिरक जाना, आंखों से पानी बहना आदि शिकायतें इसी की कमी के कारण होते हैं।

विटामिन बी

इसका प्रभाव मुख्यतः हमारे पाचन यन्त्र पर पड़ता है। इसकी कमी से पाचन शक्ति क्षीण हो जाती है। शरीर में आलस्य बढ़ जाता है और कभी २ दस्तों की शिकायत होने लगती है।

विटामिन बी प्रायः हरी शाक भाजियों में बहुत कम पाया जाता है। यह विशेष रूप से अनाजों में पाया जाता है किन्तु जब हम अनाज की भूसी आदि अलग कर देते हैं तो इसका प्रभाव बहुत कम रह जाता है।

विटामिन बी की छोटे बच्चों और गर्भवती स्त्री को अधिक आवश्यकता रहती है। यह विटामिन ज्ञान तंतुओं को बल देता है और पाचन शक्ति को तीव्र करता है। विटामिन बी सेब, केला,

अंगूर, चकोतरा, नारंगी, नासपाती, आलूचा, किशमिश और टमाटर आदि के अतिरिक्त पशुओं के भेजे और मस्तिष्क में भी पाया जाता है।

यह विटामिन पानी में घुलनशील है, परन्तु वसा में नहीं घुलता। इसी कारण मक्खन निकाले दूध में बच रहता है और मक्खन में नहीं जाता। यदि होता भी है तो बहुत कम।

विटामिन बी सोड़ा के साथ पकाने से नष्ट हो जाता है परन्तु खटाई के साथ पकाने से नष्ट नहीं होता। खटाई के बदले नीबू का डालना अच्छा है।

विटामिन सी

इस विटामिन की कमी के कारण शरीर पीला हो जाता है। पान्डु रोग या ऐनीमिया होने की आशङ्का रहती है और स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। मसूड़े ढीले हो जाते हैं और कभी २ स्कर्वी रोग भी होने का भय रहता है।

सूखे अनाज व दालों में इस विटामिन का प्रायः अभाव सा ही रहता है किन्तु जब अनाज भिगो दिये जाते हैं और उनमें अंकुर निकलआते हैं तब विटामिन सी भी पैदा हो जाता है किन्तु आग पर पकाने से इसका बहुत कुछ अंश नष्ट होजाता है।

विटामिन सी की कमी के कारण मसूड़े सूज जाते हैं तथा दांत कमजोर हो जाते हैं। दांतों में पायरिया, गठिया व अन्य अस्थियों

के रोग होने की संभावना रहती है। संक्रामक रोगों के आक्रमण को रोकने की शक्ति क्षीण हो जाती है और चहरे का रंग बदरंग दिखाई देने लगता है। चर्म रोग होकर चर्म पर लाल या हरे चकत्ते पड़ जाते हैं।

यह विटामिन-टमाटर, गोभी, प्याज, सलगम, अन्नास, गाजर, मटर, सन्तरा, नीबू, असरूद, आम; नारंगी, सेब, केला, अंजीर, और अंगूर आदि में पाया जाता है। हरी पत्ती वाले शाकों में भी यह विटामिन होता है। विटामिन सी और कैलशियम का बड़ा गहरा सम्बन्ध है। परस्पर एक दूसरे की कमी को पूरा करते रहते हैं।

विटामिन डी

विटामिन डी हड्डियों, मांस पेशियों और आंतों को सबल बनाने में सहायक होता है। बच्चों में जो सूखा रोग होता है वह इसी की कमी के कारण होता है। यह विटामिन हमें सूर्य से भी प्राप्त होता है और दूसरी खाद्य पदार्थों से जैसे घी, दूध, मक्खन अण्डे की जरदी, मछली का तेल आदि से भी मिलता है।

कड़वा तेल की मालिश करके धूप में बैठने से यह विटामिन तैयार होने लगता है और पर्याप्त मात्रा में शरीर में प्रवेश कर जाता है। घी या तेल खुले चौड़े मुँह के बर्तन में इस तरह कुछ दिनों तक रखा जाय कि सूर्य की किरणें उसमें भीतर तक प्रवेश कर सकें तो ऐसे घी व तेल में भी विटामिन डी का प्रभाव उत्पन्न होजाता है।

विटामिन ई

जिन स्त्री पुरुषों में लैंगिक ग्रन्थि (Sex glands) का रस उचित रूप में नहीं निकलता या न्यूनता होती है तो ऐसे व्यक्ति में प्रायःसाहस का अभाव होता है और वह अपने को एक रूप में हीन समझने लगता है। इसी विटामिन की कमी से वीर्य दोष उत्पन्न होता है और सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति निर्बल हो जाती है।

सबसे बड़ी खूबी इस विटामिन में यह है कि यह विटामिन न तो खटाई व सोडा के व्यवहार से नष्ट होता है और न पकाने और सुखाने से ही। यह विटामिन हरे शाक, मांस, नारियल के तेल, गेहूँ, मक्खन, दूध, बाजरे आदि में पाया जाता है।

विटामिन जी

हमारी त्वचा पर जो रूखापन व महीन महीन फटी हुई सी रूखी लिये हुये धारियां नजर आती हैं वह विटामिन जी की कमी का ही कारण होता है। यह विटामिन ताजे शाक, फल, दूध और अण्डे वगैहरा में पाया जाता है। इसकी ही कमी से नाखूनों में विकृता उत्पन्न होने लगती है।

यह पानी में घुलनशील है और अग्नी पर पकाने से नष्ट होजाता है। हरे शाक फलों के अतिरिक्त मसूर, मटर, लोबिया, गेहूँ, बिना पालिश का चांवल, धारोष्ण दूध, मक्खन, अंडे आदि में पाया जाता है।

जल (Water)

सच तो यह है कि यदि पानी हमें आवश्यकतानुसार न मिले तो धीरे २ हमारे शरीर का रक्त गाढ़ा होकर एक दिन उसकी गति ही अवरुद्ध हो जाय और हम मृत्यु को प्राप्त होजायें। हमारे शरीर के भार का ⅔ भाग पानी का होता है और प्रतिदिन ८०—१०० अंश तक पानी हम चमड़ी, गुरदे, फैंफड़े और आंतों द्वारा निकालते रहते हैं। इस कमी को पूरी करने के अतिरिक्त अन्न को घुलने, रक्त को पतला करने तथा शरीरस्थ मलयुक्त दुर्गंधि को निकालने के लिए हमें पर्याप्त मात्रा में पानी पीना चाहिए। पानी से शरीर के तंतु बनने का भी कार्य होता है। पृथ्वी के अन्तरगत रासायनिक तत्व मिलजाने से पानी के गुण व प्रभाव में अन्तर पड़ जाता है।

उद्‌जन (Hydrogen) व प्राण वायु (Oxygen) नामक दोनों वायुओं के मिलने से जल की उत्पत्ति होती है। पानी में इन दोनों वायुओं का प्रमाण २:१ होता है। समुद्र के पृष्ठ भाग के एक वर्ग मील पानी की भाप बन कर प्रत्येक मिनिट में साधारणतः ७० गेलन की मिकदार में उड़ कर आकाश में छा जाती है।

समुद्र के पृष्ठ भाग पर उड़ने वाली हवाएँ इस भाप से भारी हो जाती हैं और अधिक समय तक आकाश में नहीं ठहर सकतीं, क्योंकि वायु मंडल के ताप मान से इन पर ठंडक का असर होता है और यह भाप पानी बन कर भूपृष्ठ पर बरसात, हिम, कोहरा ओले आदि के रूप में गिरती है। इन रूपों में प्राप्त हुआ पानी भाप बन

कर पुनः उड़ जाता है, कुछ नदी नाले और तालाबों में पहुंच जाता है और कुछ पानी जमीन के अन्दर जज्ब होकर अभेद्यस्तर (Impervious layer) तक पहुंच कर वहां इकट्ठा होता रहता है या झरनों के रूप में निकल कर झीलों, कुओं में पहुंच जाता है। बस यही सबसे बड़ा साधन संसार को पानी मिलने का है। इस प्रकार शरीर में पोषकतत्व चर्बी और सर्करा के ओषजनीकरण से भी जल उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त हवा की नमी से भी हमारे शरीर में जल की कमी बहुत कुछ अंश में दूर होती रहती है।

समस्त पृथ्वी पर जल एक ही प्रकार का होते हुये भी भूमान्तर वस्तुयें सम्मिलित होने के कारण उस के लाभ व स्वाद में परिवर्तन हो जाता है। पानी दो प्रकार का होता है एक भारी दूसरा हलका। भारी पानी में खार भाग अधिक होता है अस्तु अन्नादि कठिनता से पकता है किन्तु इसमें पोषक तत्व अधिक होते हैं और उनके उपयोग से लाभ है। स्वाद में भारी पानी खारी और हलका पानी मीठा होता है। जल-शोधक विद्वानों ने अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा सिद्ध कर दिया है कि जल में असंख्य सूक्ष्म जीव हैं अतः पानी छान कर और यदि हो सके तो गरम कर पीना सुखकर है क्योंकि गरम करने से उसके हानिकारक पदार्थ व कीटाणु मर कर नीचे बैठ जाते हैं।

वर्षा ऋतु का पानी यक्ष्मा के लिए लाभप्रद है, गहरे और पक्के कुये के पानी से प्यास शान्ति होती है, लोहा गरम बुझा हुआ

पानी तिल्ली—जलोधर को लाभदायक है, सोने चाँदी का बुझा हुआ पानी दिल व मस्तिष्क को ताकत पहुंचाता है, दस्त होते हैं और रुधिर विकार को दूर करता है। गंधक के पानी में नहाने से सौदावी रोग दूर होते हैं। फिटकरी के पानी से मुख से रक्त आना बन्द हो जाता है, शीतल जल से बेहोशी और आमाशय की व्याकुलता दूर होती है। बर्फ का पानी पीने में तो ठंडा मालूम होता है परन्तु इसकी तासीर गर्म होती है और वास्तविक प्यास नहीं बुझती।

जिस पानी में किसी भी प्रकार की कोई गंध न आती हो और जो पारदर्शक हो, गदला न हो और पीने में अरुचिकारक न हो तो ऐसे पानी को उत्तम समझना चाहिये। घुलनीय अशुद्धियां (Dissolved Impurities) में कार्बन द्वि-ओषद, हैड्रोजन सल्फाइड, सोडियम एवं अमोनियम क्लोराईड, केलशियम तथा मेग्नेशियम फास्फेट आदि होती है। अघुलनीय अशुद्धियां (Suspended Impurities) में रेती, काई, कीचड़, जंतुओं के अन्डे, पक्षियों की बिष्टा और प्राणियों के मलादि होते हैं। इन वस्तुओं का थोड़ा अंश ही घुलने पाता है, और बाकी का अंश पानी की तलहटी में जमा हो जाता है। ऐसे पानी को वायु युक्त कीटाणु हवा से प्राण वायु को खींचकर शुद्ध करते रहते हैं। आँक्सी-डेशन की मात्रा पानी में मिश्रित प्राण वायु पर निर्भर रहती है। इस क्रिया में नेत्रजनीय पदार्थों के क्षार बन जाते हैं।

पानी में दो प्रकार की मिलावट होती हैं एक तो वह जो पानी के साथ घुलकर मिल जाती है और दूसरी वह जो मिली हुई होने

पर भी पानी से पृथक्क की जासकती हैं। इस बात की परीक्षा पानी को गर्म करने अथवा कांच के साफ गिलास में कुछ समय रखा रहने देने से ज्ञात हो सकती है। पानी में वनस्पति वर्ग की वस्तुएं मिलने और सड़ने पर पानी का रंग हलका नीला तथा प्राणियों के किसी शरीर द्रव्य की मिलावट होने पर पीले रंग का और दुर्गन्ध युक्त हो जाता है।

पानी शुद्ध और साफ करने के तरीके

बड़े २ शहरों में पानी पीने के लिए पाताल तोड़ कुऐ (Artesian wells) बासाती बंधों, नहरों आदि में से पानी शुद्ध कर जनता को पहुँचाया जाता है। इस के लिए पानी के काफी गहरे और लम्बे चौड़े हौज ऊँचे स्थानों और खुले वातावरण में बना कर उन के अन्दर काफी मोटाई में बारीक रेती (Fine Sand) बजरी (Coarsesand) मुरम (Granel) और पत्थर का घर (Concrete) एक के ऊपर एक तह के रूप में बिछा देते है। इन सब के ऊपर पानी भर दिया जाता है जो मन्द मन्द रूप से इन तीनों तहों में से रिस २ कर इकट्ठा होता रहता है। जिस में यंत्रों द्वारा फिटकरी (Alum) का केलशीयम बाई कार्बोनेट के प्रभाव से एक प्रकार का चार बना कर मिला देते हैं। इसके बाद तीन दिन तक स्थिर रूप से भरा रहने देते हैं। ऐसा करने से इसकी कीचड़ मिट्टी आदि नीचे बैठ जाती है और साथ ही सूर्य की रोशनी तथा खुली हवा से इस में बहुत कुछ शुद्धता आजाती है। इस के बाद नलों द्वारा घरों में पहुंचाया जाता है और पीने के काम में आता है। इस क्रिया को मंदगति छानन क्रिया (Slow sand filteration) कहते हैं।

इसी प्रकार कुओं, टकियों, हौजों व तालाबों का पानी भी साफ किया जा सकता है। इन के लिये (Permanganates of Potash) आवश्यकतानुसार गेर देना चाहिए तथा २ दिन बाद उस पानी को काम में ले लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त (Bleaching powder, Lime and Copper sulphate तथा (Vltra voilet Rays and osone) आदि का पानी शुद्ध करने के लिए व्यवहार किया जाता है।
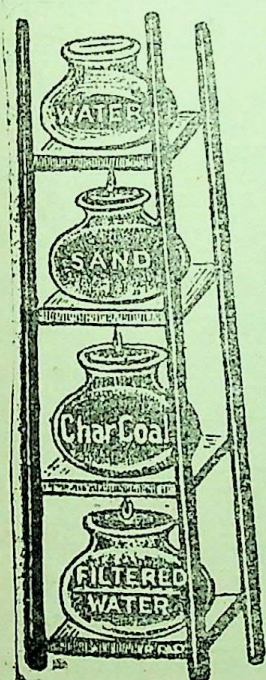
४ घड़ों का फिल्टर

यह प्रणालियां तो ज्यादा तादाद के पानी के लिए हुई। साधारण नित्य प्रति के व्यवहारोपयोगी चार घड़ों की फिल्टर प्रणाली लिखते हैं। चित्र के अनुसार एक तिपाई पर चार घड़े ऊपर नीचे रखें। ऊपर के घड़े में पानी, दूसरे घड़े में छनी हुई रेत या बालू, तीसरे में पिसा हुआ हलका कोयला रखते हैं और चौथे घड़े में छना हुआ पानी इकट्ठा होता रहता है। किन्तु सफाई का साधारण रूप है तथा घड़ों को कम से कम हर महिने पलटते रहना और नित्यप्रति भली भांति सफाई करते रहना चाहिए।

भोजन के रस व रूप

हमारे शरीर के पोषण के लिये आवश्यक भोजनों में मुख्य ६ रस हैं। मीठा, खट्टा, खारी, तीखा, तुर्श और कड़वा। इन रसों की उत्पत्ति पृथक २ तत्वों में से नीचे लिखे अनुसार होती है।

पृथ्वी तथा पानी के गुण की अधिकता से मीठा रस पैदा होता है। पृथ्वी तथा अग्नि के गुण की अधिकता से खारी रस पैदा होता है। वायु तथा आकाश के गुणों की अधिकता से कड़वा रस पैदा होता है। पृथ्वी तथा वायु के गुण की अधिकता से तुर्श रस पैदा होता है। रसों का वात, पित्त और कफ के साथ नीचे लिखे अनुसार सम्बन्ध होता है। मीठा, खट्टा और खारी रस वात या वायु विनाशक ह। मीठा, कड़वा और तुर्श पित्त नाश करता है। तीखा, कड़वा और तुर्श कफ का नाश करते हैं।

मीठा रस—रक्त मांस, अस्थि, वीर्य वर्द्धक। तृष्णा तथा दाह को शांति करता है। नेत्र रोग हर्ता और वर्ण को स्वच्छ करता है अति सेवन से कृमि तथा कफ बढ़ता है। श्वास, खांसी, दस्त, कंठ-माला, प्रमेह और मेद रोगादि होने की सम्भावना रहती है।

खट्टा रस-पाचक, वातादि दोष हर्ता तथा आशरोग को शांति करता है। वादी को नाश कर मल तथा मूत्र को आसानी से होने में सहायता देता है। अति सेवन से नेत्र रोग, कंठ छाती और हृदय में दाह और प्यास उत्पन्न कर देता है।

खारी रस-मल शुद्ध करता है, खराब घावों को साफ कर देता है और शारीरिक अवयवों को कोमल कर शरीर में शिथिलता उत्पन्न करता है। अति सेवन से खुजली, कोढ़ आदि रोग तथा आंखें दुखने आजाती हैं, और असमय में बाल सफेद हो जाते हैं।

तीखा रस-पाचक, मल-मूत्र शोधक। शरीर की मुटाई, आलस, कफ, कृमि, विष से उत्पन्न होने वाले रोग, कोढ़, खुजली इत्यादि रोगों को शांति करता है। अति सेवन से शरीर के जोड़ ढीले पड़ जाते हैं। खुशकी पैदा होकर शरीर में जलन होकर कान्ति मलीन हो जाती है।

कड़वा रस-खुजली, खाज, पित्त, तृषा, ज्वर आदि रोगों को शांति करता है। अति सेवन से गर्दन की नसें जकड़ जाती हैं, भ्रम उत्पन्न हो शरीर में कपकपी पैदा होने लगती है, भूख कम होकर तृष्णा बढ जाती है तथा बल वीर्य का क्षय करता है।

तुर्श रस—मलावरोधक, घाव तथा प्रमेह आदि रोगों में हितकर और पसीने को सुखाता है। अति सेवन से हृदय में पीड़ा, मुख सूख जाता है, पेट फूल जाता है तथा शरीर शनैः२ क्षीण होने लगता है।

तीन प्रकार के भोजन ।

भोजन को हम निम्न तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं यानी सर्वोत्तम फलाहार, मध्यम अन्नाहार और निकृष्ट मांसाहार ।

फलाहार तथा शाकाहार सर्वोत्तम भोजन है। जिस के द्वारा पुराने से पुराने रोग भी मिटाये जा सकते हैं। फलाहारी सदैव दीर्घ जीवी, सबल और स्वस्थ्य रहते हैं। फलों का रस पाचन शक्ति को तीव्र रखता है, अस्थियों पर दूषित मैल नहीं जमने देता और रक्त को शुद्ध करता है। फलाहार शरीर पर चर्बी नहीं बढ़ने देता और अमल पित्त रोग सुगमता से मिट जाते हैं। शाकाहार तथा फलाहार में सेल्यूलोज (Cellulose) नामक एक अपाच्य वस्तु रहती है जिसके कारण मल त्याग करने में आंतों को स्वाभाविक उत्तेजना मिलती है। फलाहार के अन्तर्गत ही मेवों का तथा दुग्धाहार समझना चाहिए। पाठकों के ज्ञातार्थ मुख्य २ फल, शाक और मेवों का विवरण दे रहे हैं।

फल वर्ग

आम— पका हुआ आम स्निग्ध, पुष्टिकारक, वायुनाशक, मल रोधक, प्रमेह नाशक, वर्ण को उज्ज्वल करने वाला, रक्त रोग और व्रण रोग में हितकर है। आम का रस शहद के साथ खाने से क्षय रोग में लाभ होता है। अधिक सेवन से विषम ज्वर, रक्त-विकार, कब्ज और नेत्र रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

केला—शीतल, वीर्यवर्धक, क्षुधा, तृषा, नेत्र रोग तथा प्रमेह को नष्ट करता है। क्षय, दाह और रक्तपित्त को शान्त करता है। पथरी रोग में हितकर है।

सेव—ग्राह, पित्तनाशक, हृदय को प्रिय, वीर्य वर्धक और कफ कारक होता है। मसाने तथा गुर्दे के रोग में हितकर होता है पथरी, उन्माद, स्नायुविक निर्बलता में लाभ पहुँचाता है किन्तु ज्वरावस्था में इसका सेवन न करना चाहिए।

नासपाती—धातु वर्द्धक, मीठी, भारी, रुचिकारी और त्रिदोष नाशक है।

अंगूर— दस्तावर, शीतल, नेत्रों को हितकर, पौष्टिक, रक्त-वर्धक। तृषा, ज्वर, श्वास, मूत्रकृच्छ और दाह में लाभप्रद होता है।

अनार—तृप्तीदायक, वीर्य वर्धक, स्निग्ध तथा बलदायक होती है। दाह, ज्वर, हृदय रोग और कंठ रोग में हितकर, अग्निप्रदीपक, वातपित्त नाशक और पाचक होता है।

अमरूद—त्रिदोषनाशक, ठंडा, भारी, कफ कारक और पागलपन नष्ट करने वाला, है। इसमें कालीमिर्च, नमक और नीबू का रस मिला कर खाने से इस के दूषित विकारों का प्रभाव कम हो जाता है तथा शीघ्र ही हजम हो जाता है।

नीबू—गठिया, संधिवात, आमवात और मलेरिया में विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ है। जिगर की गड़बड़ी से सिर में चक्कर आते

हों, नेत्रों के आगे चकाचौंध आता हो तो गर्म पानी में एक या आधा नीबू निचोड़ कर पी जाना चाहिए। दाल तरकारी में गेरने से जल्दी पचा डालता है। पेट के शूल तथा कृमि को दूर करता है। मंदाग्नी तथा कोष्टबद्धता को दूर करता है। अरुचि दूर कर पाचन शक्ति को बढ़ाता है। पेट की कृमि का नाश करता है। वमन तथा तृषा को शांति करता है।

संतरा या नारंगी—पाचक, स्वादिष्ट और रुचि उत्पादक है। शूल कृमि हारक तथा जठराग्नि प्रदीपक और हृदय को बलदाता है। कफ कारक, पित्त उत्तेजक और दस्तावर होती है।

जामुन—कफ तथा पित्त नाशक, रुचि कारक और मलावरोधक है। हृदय व कंठ के रोगों में हितकर और वीर्यवर्धक है।

शाक वर्ग

गोभी— फूल व बन्ध दोनों तरह की गोभियों में गंधक का अंश विशेष रुप से रहता है इसलिये पाचक और रक्त शोधक है।

आलू—वात-व्याधि, गठिया और आमवात में लाभकारी होता है।

सेम, मटर और मसूर—इन में लोहा, और फासफोरस विशेष रहता है।

गाजर—पथरी को दूर करती है और दिल को ताकत पहुँचाती है। इसका शर्बत संधिवात, खांसी आदि रोगों में लाभ पहुँचाता है। इस में लोहे का अंश अधिक होता है।

शलजम—यह भी गाजर के समान ही गुण रखती है।

टमाटर—शरीर के रोम रंध्रों को खोलने वाला, जिगर की बिमारियों में हितकर और इसकी पुलटिस फोड़े को जल्दी पकाती है।

पालक—पालक में भी पर्य्याप्त मात्रा में लोहा रहता है। रक्त विकार, चर्म रोगों को नष्ट करने वाला तथा रक्त वर्धक है।

चौलाई—हलकी, रूखी, मलमूत्र लाने वाली, अग्नि का प्रदीप्त करने वाली और पित्त कफ तथा रक्त विकारों को नष्ट करने वाली होती है।

तोरू—कफ, पित्त कारक, वीर्य वर्द्धक तथा कृमि नाशक होती है। खांसी तथा ज्वर में हितकर है।

कुल्फा—रूखा, भारी, कफ नाशक और अग्नि प्रदीपक है।

गाजर—अग्नि वर्धक, मल अवरोधक, बबासीर, रक्त-पित्त, संग्रहणी रोगों में लाभप्रद। कफ तथा वात को दूर करती है।

सरसों—त्रिदोष नाशक, रुचिकारक और पाचक है।

मेथी—पित्त कारक तथा ग्राही, कफ, वायु और कृमि रोग नाशक तथा पाचक है।

ककड़ी—शीतल, रूखी, ग्राही और पित्त विनाशक। मूत्र रोग नाशक, सन्ताप, वमन तृषा और मूर्छा को शान्ति करती है।

करेला—शीतल, मल भेदक, ज्वर, पित्त, कफ, रक्त दोष, पीलीया, प्रमेह और कृमि रोग में लाभ करता है।

बैंगन—अग्नि दीपक, वीर्यवर्धक और ज्वर हारक होता है। खांसी पैदा करता है और मल को रोकता है।

ढैंढ़स—रुचिकारक, रेचक और मूत्र वाहक। पित्त, कफ और पथरी के रोगों में हितकर होता है।

मूली—अग्नि दीपक तथा रुचिकारक। बबासीर, गुल्म, दमा, ज्वर, कफ, वायु, हृदयरोग और नासिका सम्बन्धी रोगों में हितकर है।

तरबूज—शीतल, भारी, नेत्रों को हितकर, पित्त तथा वीर्य को हरण करने वाला। मल अवरोधक, कफ उत्तेजक और दाह निवारक होता है।

खरबूजा—वीर्यवर्धक, पित्त, वायु का नाशक तथा मूत्र वाहक होता है।

कमरख—शीतल, कफ और वातनाशक।

कासीफल—पित्तकारक, वात वर्धक और कफ नाशक है। पाचन शक्ति को निर्बल करता है। मल अवरोधक और भारी होता है।

लौकी—हृदय को बलदाता, पित्त कफ नाशक और वीर्य वर्धक होती है।

मेवा वर्ग

अखरोट—उष्ण, वीर्य वर्धक, स्निग्ध, कफ तथा पित्त को कुपित और वात को शान्ति करता है। रक्त को शुद्ध कर हृदय को बल देता है।

मुनक्का—स्निग्ध, वीर्यवर्धक, रक्तपित्त नाशक, हृदय रोग में हितकर और वायु को अनुलोमन करता है।

किशमिश—वीर्यवर्धक, ज्वर, दाह, व्रण तथा स्वर भेद में हितकर है।

खोपरा—अँतड़ियों के कीड़ों को दूर करने और मूत्र कृच्छ तथा सूजाक की बीमारी को नष्ट करता है। मसाने की दुर्बलता और जलन में खोपरे का पानी बड़ा लाभ पहुंचाता है। पित्त को शांति कर हृदय को बल देता है, कफ कारक और पचने में भारी होता है।

बादाम—दस्तावर, गर्म, कफकर्ता, वीर्य वर्धक, मस्तिष्क को बल देने वाला और वात नाशक होता है। बादाम के छिलकों का मंजन दाँतों के लिये लाभप्रद होता है। मस्तक पीड़ा में बादाम और कपूर को दूध में घिस कर लेप करना चाहिये। कन खजूरे के काटें चुभ जाने पर बादाम का तेल लगाना लाभप्रद होता है।

मूंगफली—बादी, काबिज और गर्म होती है।

पिस्ता—बल वीर्य वर्धक, दस्तावर तथा रक्तशोधक होता है। कफ तथा पित्तवर्धक है।

काजु—धातु वर्धक, गुल्म वात, कफ, ज्वर, कृमि, व्रण और बवासीर, मंदाग्नि, कुष्ट आदि में हितकर होता है।

छुहारे—गर्म काबिज और पुष्टिकर होते हैं। रक्त और पित्त का निवारण करता है तथा प्यास को दूर करता है।

चिलगोजे—गर्म और काम शक्ति वर्धक होते हैं।

खिरनी—ठंडी, मलावरोधक, दाह और रक्तपित्त को हरती है।

फालसा— ठंडा, हृदयप्रिय, पित्तदाह, रक्तविकार, ज्वर तथा वायु को नष्ट करता है।

शहतूत—भारी, स्वादिष्ट, शीतल और वात पित्त नाशक है।

अंजीर—सफेद कोढ, जिगर और तिल्ली की बिमारियों को लाभ पहुँचाता है। कब्ज की शिकायत को दूर करता है। रक्त पित्त नाशक किन्तु श्लेष्म तथा आमवात उत्पन्न करता है।

अन्नाहार Fruitarian diet

फलाहार से उतर कर अन्नाहार है किन्तु खेद है कि हम प्रकृति प्रदत्त अन्नों के वास्तविक रूप और उनके गुणों को नष्ट कर डालते हैं। अन्नों को हम कूट पीस कर, उसकी चोकर निकाल देते हैं, उबाल कर उसके असली तत्वों को मोरी में बहा देते हैं तथा उनका महीन से महीन आटा बनाकर व्यवहार में लाते हैं जो हमारी गलती और भूल है। यदि हम अन्नों का छिलके सहित उपयोग करें तो कहीं अधिक लाभप्रद और उपयोगी हो सकते हैं कारण इनका आवरण ही इन में स्थित प्राण शक्ति रूपी विद्युत को प्रतिबंधक करती है।

अन्नवर्ग

गेहूं—वीर्यवर्द्धक, कफकर्ता, मीठा और ठंडा होता है। टूटे स्थान को जोड़ने वाला और जख्म की बीमारियों में गुणकारी होता है।

जौ—कषैला, मधुर, मल को उखाड़ने वाला और पाचक होता है। मूत्र रोग, चर्म रोग, जुख़ाम और कंठ रोग में हितकर है।

ज्वार—बवासीर, वायगोला और जख्म के रोगों में लाभदायक है।

मकई—खुश्क, ठंडी और दुर्जर है।

बाजरा—गर्म, दस्तावर, कफनाशक और बलवर्द्धक है।

चना—ठंडे, रूखे चने अफारा देने वाले किन्तु ज्वर नाशक हैं। उबाले हुये चने पित और कफ को नष्ट करते हैं। भीगे हुये रुचिकारी, वीर्य शोधक और ठंडे रहते हैं।

चांवल—गुणों में मधुर, अग्निदीपक, बलवर्द्धक, कान्तिकारक त्रिदोषहारक और मूत्र को विशेषता से लाने वाला होता है। नये चांवलों से पुराना चांवल हितकर होता है।

मूंग—ठंडी, ग्राहक, कफ तथा पित को हरने वाली, नेत्रों के लिए हितकर है। त्रिदोष ज्वर में जहां दूध देना निषेध माना गया है वहां मूंग का पानी देना ही हितकारक समझा गया है।

उड़द—पौष्टिक, बल वीर्य वर्द्धक, तृप्ति कारक, मूत्र लाने वाली, मल को निकालने वाली और शिशुवती स्त्रियों के दूध बढ़ाने वाली होती है।

दूध वर्ग (Milk)

दुग्ध वास्तव में पृथ्वी का अमृत है, जो रोगी निरोगी, युवक, बाल, वृद्ध को प्रत्येक रूप व अवस्था में लाभप्रद होता है। दुग्ध बल, वीर्य और संभोग शक्ति को बढ़ाने वाला है। गर्म किये हुए दुग्ध की अपेक्षा धारोष्ण दुग्ध पीना कहीं अधिक हितकर होता है। दुग्ध दुहने के बाद यदि २ घन्टे तक रखा रहे तो उसे गर्म करके पीना चाहिए और गर्म किया हुआ दुग्ध भी ४-५ घन्टे बाद

विकारपूर्ण हो जाता है इसलिए स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से पीना ठीक नहीं होता। दूध ही एक ऐसा अनुपम पदार्थ है कि जिससे तत्काल जीवन शक्ति (Vitality of life giving energy) प्राप्त होती है। दुग्ध के विषय में तो यहां तक लिखा है।

गोक्षीरं जीवनं बल्यं रक्त विकारनलापहम्।
आयुष्यं पुंस कृत्पथ्य मेध्यं वृष्यं रसायनम्॥

अर्थात्—गौ दूध, दीर्घ जीवन और बलदाता, रक्त पित्त वात का नाशक और पौरुष बुद्धि का बढ़ाने वाला रसायन है।

दूध ही एक ऐसा पदार्थ है जिसमें ६ ओं प्रकार के रस पाये जाते हैं। अतः कितने ही पदार्थ तो इसके अनुकूल पड़ते हैं और कितने ही प्रतिकूल, जिनका संक्षिप्त विवरण पाठकों के ज्ञानार्थ नीचे लिख रहे हैं।

दूध के अनुकूल पदार्थ—दूध में आम्ल अर्थात् खारा रस होने के नाते खटाई का आंवला और आम मित्र रूप है। मीठा रस होने के कारण चीनी मित्र रूप है। तिक्त यानी तीखा रस होने से अदरख और सौंठ मित्र रूप है। कटु अर्थात् कड़वा रस का मित्र परवल है। कषाय रस होने के नाते हरड़ मित्र रूप है। इसके अतिरिक्त गेहूं की बनी चीजें, भात, घी, मक्खन, पीपल, काली मिर्च आदि भी मित्र रूप मानी गई हैं।

दूध के प्रतिकूल पदार्थ—दूध के साथ गुड़ खाने से कोढ़, प्रमेह और मूत्र कृच्छ्र आदि रोग हो जाते हैं। शराब, आसव, मूली, मूँग आदि सेवन करने से पित्त रोग होने का भय रहता है।

गाय का दूध—ऊपर लिखे सभी गुण होते हैं। काली गाय का दूध वात व वायु दोषों को हरने वाला, लाल गाय का पित्त हारक तथा वायु नाशक और सफेद गाय का दूध कफ कारण और भारी होता है।

भैंस का दूध—भैंस का दूध गाय के दूध से भारी, देर से पचने वाला होता है अतः रोगी और बच्चों के लिए अपथ्य है। बाकी सब गुण गाय के ही समान होते हैं।

बकरी का दूध—कसैला, ठंडा, हलका तथा रक्त पित्त अतिसार, क्षय तथा ज्वर सम्बन्धी रोगों में हितकर होता है। वात हारक तथा त्रिदोष नाशक है।

दूध का उपयोग हम मलाई (Cream) स्किम मिल्क (Skim Milk) दही (Curdled Milk) मक्खन (Butter) छाछ (Butter Milk) पनीर (Cheese) और घी (Ghee) आदि के रूप में लेते हैं।

इतना लिखते हुये हमें दुःख होता है कि अकबर के जमाने में भी घी का भाव १९५ आने मण तथा अलाउद्दीन के समय में ७४ पैसे मण मिलता था और आज गरीब जनता को असली घी दूध के तो दर्शन दूर रहें वेजीटेबिल के दर्शन भी दुर्लभ हो रहे हैं।

दूध को ताजा रखना

दूध को Pasteuried करने के लिए एक प्रकार का यंत्र आता है जिसके अन्दर बाहर दो विभाग होते हैं। बाहरी विभाग में भाप और अन्दर के भाग में दूध भरा रहता है। भाप के द्वारा भरे हुए दूध को आध घन्टे तक १४५° से १५०° तक गरम किया जाता है और फिर ठंडा कर उसे मुहर बन्द बोतलों में भरकर वितरण के लिए भेज दिया जाता है। इन सब क्रियाओं के होते हुए दूध से न तो हाथों का ही स्पर्श हो पाता है और न बाहरी वातावरण का प्रभाव ही होता है, और न धूलादि के दूषित कणादि ही मिलने पाते हैं। इस यंत्र का चित्र अगले पृष्ठ पर दिया जा रहा है जिसका भली भांति मनन करने पर उक्त लिखित सारी बातें समझ में आजायेंगी।

दूध का विशिष्ठ गुरुत्व १०२७से १०३४तक होता है। आजकल दूध में आधे से अधिक जल मिलाकर वेचने की प्रथा चल निकली है किन्तु लेक्टोमीटर (Lactometer) द्वारा मिले हुए पानी की तादाद मालूम की जा सकती है। इसका आविष्कार होने पर धोके-बाजों ने अपने बचत की एक और उक्ति निकाली है। दूध को गर्म किये बिना ही मिट्टी के बड़े चौडे बर्तन में भर कर गीली मिट्टी पर रख देते हैं। ऐसा करने पर कुछ समय में ही दूध पर मलाई की परत जम कर ऊपर आ जाती है, जिसे निकाल कर वह अलहदा कर देते हैं। इस प्रकार दूध का पौष्टिक अंश प्रथक कर दिया जाता

है और बिना पानी मिला निर्थक दूध रह जाता है। ऐसे दूध की परीक्षा करने में लेक्टोमीटर यंत्र असफल रहता है। ऐसे दूध की एक और यंत्र द्वारा परीक्षा की जा सकती है।

दूध को अधिक समय रखने की विधि
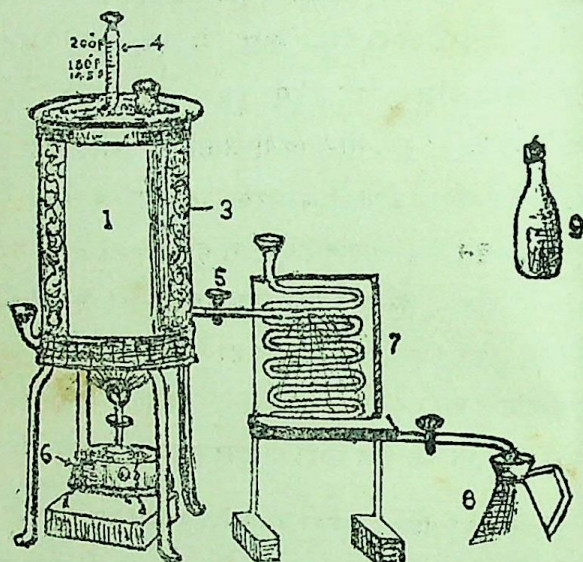
Apparatus for Pasturisation of milk.

(1) Milk दूध (2) Water पानी (3) Steam भाप (4) Thermameter ताप मापक यंत्र (5) Milk Tap उबले हुए दूध के निकालने का मार्ग 6) Primus Stove प्राईमस स्टोव्ह (चूल्हा) (7) Cooling Surface दूध को ठंडा करने की कृति (8 Collection निर्मल दूध को एकत्रित करना (9 Sealed bottle बोतल में दूध भरते समय स्वय ही डाट लग जाती है। इसके बाद वह बोतलें विकार्थ भेज दी जाती हैं।

मांसाहार (Meat diet)

मांसाहार के विषय में स्वास्थ्य विज्ञानिकों का मत है कि मांसाहारियों की चित्तवृत्ति चंचल, हृदय में अशान्ति और क्रोधित व चिड़चिड़ा स्वभाव हो जाता है। कभी २ तो मांसाहारियों के शरीर में वह रोग उत्पन्न होते देखे गये हैं जो उन पशुओं के शरीर में होते हैं कि जिनका मांस वह व्यवहार में लाते हैं।

अंडे (Eggs) —अंडे में सभी प्रकार के अन्न, घटक तथा जीवन तत्व पाये जाते हैं इसलिये इसे पूर्णान्न मानते हैं। इस में एक सफेद और दूसरा पीला भाग होता है। सफेद भाग में अल्बुमेन होता है जो पानी में मिलने पर श्वेत भाग बनता है। पीले भाग में चर्बी, प्रोटिन्स, शक्कर, केल्सीयम, फास्फोरस तथा लोह खार आदि होते हैं। १० % नमक के पानी में ताजा अंडा डूब जाता है, किन्तु बासी अंडा नहीं डूबने पाता।

मांस (Meat)—मांस में प्रोटिन्स और चर्बी का विशेष भाग रहता है। इसमें कर्बो हैड्रेट् नहीं रहते परन्तु कुछ क्षारों का अंश पाया जाता है। शाकान्न प्रोटिन्स की अपेक्षा मांसान्न प्रोटिन्स शीघ्र पच जाते हैं। मांस दो प्रकार का होता है। एक लाल और दूसरा सफेद। लाल मांस से सफेद मांस में वसा कम होती है। गंध रहीत लाली और कड़ापन लिए हुये मांस अच्छा होता है। गंधयुक्त लचीला और हरे रंग का मांस दूषित और बासी समझा जाता है।

मछली (Fish) —इसमें चर्बी की अपेक्षा फास्फोरस की मात्रा अधिक होती है। मछली को भाप में रख कर पकाना उत्तम समझा जाता है। नमक चुपड़ कर अथवा सुखा कर मछली कुछ समय तक सुरक्षित रक्खी जा सकती है किन्तु दुष्पाच्य हो जाती है। मछली के मांस से संतानोत्पत्ती की शक्ति विशेष रहती है।

प्रायः लाल मांस में बकरी, गाय तथा सूअर का मांस शुमार होता है और श्वेत मांस से मुर्गी, कबूतर, खरगोश और फाख्ता आदि के मांस से अभिप्रायः समझा जाता है। मांस को पकाते समय ५ मिनट तक पानी में खूब उबाल कर फिर कुछ देर के लिए धीमी आंच पर रख देने से अल्बुमेन का थर नीचे जम जाता है और साथ ही क्षार, प्रोटीन्स आदि भी नष्ट नहीं होने पाते। जिन मांसाहारी की पाचन शक्ति क्षीण पड़ गई हो अथवा जो कुछ समय रोगी रह चुका हो तो ऐसे व्यक्ति को मांश का सूप (Meat Soup) देना चाहिए। ताजे लाल मांस के बारीक २ टुकड़े ठंडे पानी में गेर कर धीमी आंच पर घन्टे डेढ़ घन्टे उबाल कर सूप बनाया जाता है।

मांडी और चीनी

Starch Carbo Hydrate

दुबले पतले आदमी को अधिक स्टार्च और मोटे शरीर वाले को कम स्टार्च की जरूरत पड़ती है। आवश्यकता से अधिक स्टार्च शरीर में पहुँचने पर वह चर्बी का रूप धारण करने लगती है जो स्वास्थ्य के लिये हानिकर साबित हो चुकी है। विशेष कर स्टार्च का पाचन मुख की लार से ही होता है। लार के मिलने से स्टार्च चीनी ग्लू कोच में बदल जाता है और यही कारण है कि जब कभी सूखी रोटी मुँह में अधिक समय तक चबाई जाती है तो उसमें मिठास उत्पन्न होने लगता है।

यह पदार्थ शर्करा, श्वेतसार (मांडी) लाइकोजन की तरह का होता है। लकड़ी और शाक के रेशें भी श्वेतसार के ही बने होते हैं, जिसे काष्ठोज भी कहते हैं। श्वेतसार चांवल में अधिक पाया जाता है। गेहूँ का छिलका उतार देने पर जो श्वेत रंग की चीज निकलती है वह भी श्वेतसार ही होता है। जड़वाली तरकारियां, गेहूँ, चांवल, जौ, मेदा, बाजरा, मकई आलू आदि में श्वेतसार अधिक होता है। चीनी और गुड़ में तो प्रायः यही अंश अधिक रहता है।

शर्करा वर्गीय पदार्थ अधिक खाने से बहुमूत्र या मधुमेह मास्क रोग हो जाने की सम्भावना रहती है। कार्बोहाइड्रेट में चीनी (Sugar) और स्टार्च या मांड़ी (Starch) होती है।

स्टार्च हमारे शरीर में मिलने लायक नहीं होती है और चीनी मिलने लायक होती है। चीनी घुलनशील पदार्थ है और स्टार्च अघुलनशील है।

स्टार्च में यदि तेजाब (Acid) का घोल मिलाकर उबाला जाय तो स्टार्च से चीनी बन जाती है। चीनी कई प्रकार की होती है जैसे डेक्सट्रोज (Dextrose) अंगूर की चीनी, लेब्युलोज (Levulose) फलों की चीनी और सुक्रोज (Sucrose) ईख की चीनी और इन तीनों में प्रायः भिन्नता भी होती है।

अन्य चीनियों की अपेक्षा दूध की चीनी जल्द पच जाती है। चीनी को भस्मीकरण करने के लिये बहुत अधिक आक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है। यही आक्सीजन शरीरस्थ विषों को जलाने (दूर करने) के लिये एक मुख्य सहायक अंश होता है।

ताजे मीठे फल, सूखे मेवे और शहद से काफी मात्रा में उत्तम चीनी मिलती है। इस प्रकार की चीनी को रक्त में मिलाने के लिए शरीर को अधिक परीश्रम नहीं करना पड़ता। फलों व शहद के उपयोग से हमें चीनी ही नहीं मिलती वरण खनिज लवण और विटामिन भी मिलते हैं।

शक्कर चीनी दानेदार जो कारखानों में बनती है उसका तो उपयोग करना ही नहीं चाहिए क्योंकि यह गर्मी ज्यादा पैदा कर रक्त को बिगाड़ती है तथा हृदय में व्याकुलता होने लगती है।

शहद में प्रायः तीनों प्रकार की चीनी होती है और विटामन भी रहते हैं जो रक्त का कमी व खराबी को दूर करता है और नेत्रों के लिए हितकर होता है।

इतना ही नहीं है कि शर्करा की हमें और आपको ही आवश्यकता पड़ती हो बल्कि पेड़ पौधे भी इस की आवश्यकता अनुभव करते हैं और इस प्रकार की शर्करा को हम दूसरे रूप में उनका मधु (शहद) कहकर पुकार सकते हैं। जब पुष्पों में गर्भाधान हो जाता है तो पौधे एक प्रकार का रस पैदा कर और उसका आवश्यकतानुसार उपयोग कर व्यर्थ के भाग को अपने पुष्पों की प्यालियों में अपनी रस स्रावी ग्रन्थियों द्वारा पहुंचा देते हैं। इसे मधु मक्खियां लेजा लेजा कर अपने कोषागार (छत्ते) में जमा कर लेती हैं। शहद में एक प्रकार का फोमिक-एसिड होता है जो कृमि हर का कार्य करता है। यह एसिड मधुमक्खी के रस स्राव संस्थान (Glandular-Sptem) से ही आ २ कर शहद में मिलता रहता है। शहद को ही शर्करा एक ऐसी शर्करा है जो अनेक रोगों में जैसे मेद रोग, रक्त विकार, लकवा, क्षय, हृदय निर्बलता, ब्लडप्रैसर तथा रक्त स्राव आदि रोगों में हितकर होता है। पुराना मधु त्रिदोषघ्न, तेज वर्धक, कान्ति दाता, वर्णकारक और सुपाच्य होता है। प्रातःकाल अनुमानतः १ छटांक उत्तम शहद ठण्डे जल में मिला कर और यदि इच्छा हो तो थोड़ा सा ताजा नीबू का रस और मिलाकर पीने से मेद रोग में आश्चर्य जनक लाभ होता है।

वन्तणसन्धि, गलगण्ड पार्श्वशूल, फोड़े फुन्सी आदि रोगों पर मधु और चूना का प्रलेप करने से लाभ होता देखा गया है। विशुद्ध मधु नेत्रों में आंजने से साधारण जाला तक कट जाता है।

हवा Air
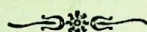
हमारा सब से प्रथम कार्य हवा लेना और अन्तिम काम हवा निकाल देना है। इसी को हम दूसरे रूप से जीवन मरण भी कह सकते हैं। हवा का कोई रूप नहीं है तथापि वह सारे संसार को ढके हुये है। इतना ही नहीं बल्कि हवा २०० मील की ऊँचाई तक भी फैली हुई है। हम २४ घन्टों में कम से कम ४०० घन फीट की हवा को ग्रहण कर लेते हैं। एक मिनिट में श्वासोश्वास की क्रिया १८ बार होती है। प्रत्येक मनुष्य के श्वास के साथ ३२ घन इंच या ५०० घन सेंटीमीटर हवा बाहर निकल जाती है।

साधारणतः प्रायः सभी यह समझते हैं कि हवा का स्वतंत्र रूप है किन्तु यह बात नहीं है। हवा में कई प्रकार के मिश्रण मिले हुये हैं जो निम्न प्रकार हैं।

प्राणवायु (Oxygen)— यह वायु रंग, गंध और स्वादु विहीन होती है। इसके बिना न कोई वस्तु जल सकती है और न कोई जीव तथा पेड़ पौधे ही जीवत रह सकते हैं। प्राण वायु को रक्त अपने शुद्धी करण के लिए सोख कर कार्बन (Carbon) भाप (Water Vapour) तथा उष्णता (Heat) उत्पन्न करता है। कार्बन के

साथ मिलने से उद्जन (Carbon Dioxide) बनता है। समस्त वायु मंडल में प्राण वायु का $\frac{१}{६}$ भाग होता है। वायु मंडल में बिजली के कारण यह गैस स्वयं ही उत्पन्न होती है। समुद्र के पास और चीड़ के वृक्षों के पास इस वायु की प्रचुरता रहती है। क्षय रोगी के लिये यह वायु लाभप्रद होता है। इसका संक्षिप्त चिन्ह $O^२$ लिखते हैं।

नत्रजन (Nitrogen)— यह वायु न जलती है और न उष्णता ही उत्पन्न करती है। हवा में प्राणवायु की तीक्ष्णता को हलका करने में यह अवश्य सहायक बनती है। इसके साथ अर्गान (Argon) नामक एक भारी गैस मिला रहता है जिसका प्रमाण १% होता है तथा वायु मण्डल में इसका $\frac{४}{५}$ भाग रहता है। यह भी रंग, स्वादु तथा गंधहीन होती है। इसका संक्षिप्त चिन्ह $N^२$ लिखते हैं।

उद्जन (Carbon Dioxide)— कार्बन तथा प्राणवायु के संयोग से यह वायु बनती है। रंग हीन होते हुए भी इसमें हल्की सी महक होती है। सजीव वस्तुओं के श्वासोश्वास से यह दूषित गैस बनती है। लकड़ी कोयला या मोमबत्ती आदि के जलने, मृतक शरीरों के सड़ने अथवा शाक-भाजी व पेड़ पत्तियों के जलने व सड़ने पर यह हानिकारक वायु उत्पन्न होती है। नत्रजन तथा प्राणवायु से यह वायु वजन में भारी होती है और हवा में इसका प्रमाण १०,००० भाग में ४ भाग होता है। इसका संक्षिप्त चिन्ह $Co^२$ लिखते हैं।

भाप (Water Vapour)— भाप हवा में थोड़ी बहुत अवश्य समाविष्ट रहती है जिसका प्रमाण हमें ग्लास में बर्फ रखने से मिल सकता है क्योंकि बर्तन के आस पास की हवा ठण्डी हो जाती है और ग्लास के बाहरी भाग पर छींटे छींटे जल बिन्दु दिखाई देने लगते हैं। यह भाप, पानी के सदैव होने वाले वाष्पीकरण (Vapourigation) से, प्राणीमात्र के श्वांस लेने व छोड़ने से और वस्तुओं के जलने से भी उत्पन्न होती है।

अमोनिया (Ammonia)— यह हवा में बहुत ही सूक्ष्म रूप से पाया जाता है, जिसकी तीक्ष्णता सूंघने पर ही ज्ञात हो सकती है। यह गैस उड़ने वाली तथा अस्थिर होती है।

ओझोन (Ozone)— पानी की भाप का विद्युत के साथ संपर्क होने से वायु मण्डल में यह गैस बनती है। यह समुद्र के किनारे पहाड़ों की ऊँची २ चोटियों तथा खुले लम्बे चौड़े वातावरण में इसका प्रमाण पाया जाता है। इसमें एक प्रकार की विशेष गंध आया करती है।

आयुर्वेदानुसार
पांच प्रकार के वायु और उनके कार्य

आयुर्वेदमतानुसार निम्न ५ प्रकार की वायु मानी गई हैं।

प्राण वायुः— यह मूर्धा में स्थित, कंठ और वक्ष में विचरता है थूकना, छींक, डकार, श्वांस-प्रश्वास तथा अन्नादि का निगलना आदि इसका कार्य है।

उदान वायुः– छाती में स्थित है। नाक, नाभी और कंठ में विचरण करता है। वाणी, चेष्टा, बल, वर्ण, स्मृति आदि क्रियायें इसी से होती हैं।

व्यान वायुः—इसका स्थान हृदय, तीव्रवेग वाला तथा समस्त शरीर में विचरण करता है। चलना फिरना, हाथ पैर मारना, पलक मारना आदि सभी क्रियायें इसी के द्वारा होती हैं।

समान वायुः— कोष्ठ में रहता है। अन्न को ग्रहण करता है और पका कर उसके सब अवयवों को प्रथक २ करने में सहायक होता है।

अपान वायुः—गुदा द्वार में रहती है। वस्ति स्थान, जननेंद्रिय, जंघा आदि में विचरण करता है। वीर्य, आर्तव, दस्त, पेशाब और गर्भ आदि को यही बाहर निकालता है।

हवा की अशुद्धियां

हवा में दो प्रकार की अशुद्धियां (Impurities)— पाई जाती हैं एक तरल (Suspended) और दूसरी गैसीय (Gaseous)। यह अशुद्धियां प्रायः श्वांस (Respiration) दहन क्रिया (Burning) धूआं (Smoke) धूलीकण एवं कीटाणु (Dust and Germs) और कारखानों के अपद्रव्य (Industrial impurities) से होती हैं। जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

श्वांसोश्वांस (Respiration)—प्रत्येक सजीवों के मुख से जो श्वांस निकलती है तो वह अपने साथ रक्त की अशुद्धियां, मल की सड़ान, दांतों के कीटा णु का विलीन अंश, पेट की अपान वायु आदि की अशुद्धियां लेकर बाहर निकलती है । इस प्रकार की अशुद्धियां सम्पर्क वाले व्यक्ति पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहती।

दहन क्रिया (Burning)— लकड़ी, कोयला आदि जलने से दो प्रकार की गैस उत्पन्न होती है। एक कार्बन मानोक्साइड और दूसरा कार्बन डॉय ऑक्साइड। पहली वायु मुर्च्छा उत्पन्न करने वाली तथा प्राण घातक सिद्ध हुई है और यही कारण है कि जब मनुष्य सिगड़ी जला कर कमरा बन्द कर सो जाते हैं और शुद्ध वायु का अन्दर प्रवेश बन्द हो जाता है तो वह सोते ही रह जाते हैं अर्थात् मर जाते हैं । इसके अतिरिक्त एक और गैस बनती है जिसे हायड्रोजन (H कहते हैं जो प्राणवायु के साथ मिलकर भाप बनती है रासायनिक कारखानों के आस पास गंधक के संपर्क से गंधक द्विओषद (So_2) तथा हैड्रोजन सल्फाइड (H_2S) गैस बनते हैं जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हुये हैं।

धूआं (Smoke)—धूए में कोयले के कण, हायड्रोकार्बन गैस तथा अन्य प्रकार की विषैली वस्तुएं सम्मिलित होती हैं जो श्वांस नलिका (Wind pipe) पर बुरा प्रभाव गेरती है । नाक तथा

गले में जलन तथा खराश पैदा हो जाती है और अगाड़ी चल कर तपैदिक (Tuberculosis) जैसे भयंकर रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं।

धूलकण एवं कीटाणु (Dust and Germs)--यह बात तो सर्व साधारण को मान्य है कि धूलि के साथ हवा में विषैले कीटाणु इधर उधर उड़कर जन साधारण को अपना शिकार बना लेते हैं। छोटी माता (Measles), चेचक (Small pox) मोती झरा (Typheyed Fever), क्षय (Tuberculosis) आदि छूत वाले रोगों के कीटाणु हवा के साथ उड़कर स्वस्थ्य जीवों को भी रोगी बना देते हैं। बड़े २ कारखानों के धूल के सूक्ष्मतम कण, कोयलों का धुआं, रुई, चमड़े के कण, थूक और मलादि के कणादि उड़कर नेत्र पीड़ा, कण्ठ रोग तथा फैफड़ों के रोग उत्पन्न करते हैं। रुई, पटसन, कांच, घीया पत्थर, आटे की चक्की तथा अन्य रासायनिक कारखानों से अधिकांश रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

हवा को शुद्ध करने के तरीके

प्राकृतिक प्रणाली (Natural) – पौधों में क्लारोफिल (Chloraphyll) नामक एक प्रकार का हरा रंग रहता है जो हवा में मिश्रित कारबन डायक्साईड को खींच लेता है और सूर्य प्रकाश उसे दो भागों में विभक्त कर देता है यानी कारबन C, और ऑक्सिजन O_2। पौधे व वृक्ष अपने पोषण के लिए कारबन सोख लेते हैं तथा प्राण वायु को नभामंडल में छोड़ देते हैं जो प्राणियों

के लिए प्राणप्रद वायु है। यह प्राकृतिक नियम है कि गरम हवा ठण्डी हवा से भारी होने के कारण ऊपर उड़ जाती है और बाहर से आई हुई ताजी ठण्डी हवा भारी होने के कारण नीचे आजाती है जो हमारे स्वास्थ्य के लिए हितकर होती है।

सूर्य की किरणें (Sun Rayes)—सूर्य की किरणें भी हवा की बहुतसी अशुद्धियां तथा विषैले कीटाणुओं को नष्ट करती रहती हैं।

ओम्फोन (Ozen)— ओम्फोन गैस वायु की अशुद्धियों को दूर कर वायु मण्डल को स्वच्छ बनाता रहता है।

यह तो हुई प्राकृतिक प्रणालियां किन्तु साथ ही हमें अपने रहने के मकान आदि भी इस प्रकार के बनाने चाहिए कि जिनमें सूर्यप्रकाश और हवा पर्याप्त मात्रा में आ जा सके और मकान हर ऋतु के अनुकूल हो। मकान बनाते समय मुख्य निम्न बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। जमीन दल दल यानी सील रहित सूखी ऊँचाई पर और ढालू हो। मकान का द्वार पूर्व की तरफ और पिछाड़ी दक्षिण की तरफ हवा व रोशनी आने के लिए खिड़कियाँ, रोशनदान आदि होने चाहिए। मकान के आस पास ऐसे कल कारखाने जिनसे धूँआ, धूल, रसायनिक गन्ध आती न हो और न कोई अस्तबल, गौशाला, शराबखाना अथवा इसी प्रकार की गंदगी फैलाने वाले स्थान व कारखाने हों, जिनसे स्वास्थ्य को हानि पहुँचने की संभावना रहती हो।

काया कल्प

अर्थात्

पंच तत्वों द्वारा स्वास्थ्य प्राप्त करना

प्रकृति के विरुद्ध जीवन यापन से रोग उत्पन्न होता है, और रोग निवारण का उपाय भी केवल एक ही है अर्थात् स्वाभाविक रहन-सहन।

महात्मा गांधी

आजकल प्रायः काया कल्प का अर्थ लगाया जाता है 'वृद्धवस्था से पुनः यौवनावस्था प्राप्त कर लेना" कितने ही व्यक्ति तो यहां तक सोचा अथवा कहा करते हैं कि काया कल्प के लिए किसी रसायन जड़ी बूटी की, पृथ्वी में गड्ढा खोद कर उसमें बैठने की अथवा अंधेरी बन्द कुटिया में बैठ कर समाधि लगाने की आवश्यकता पड़ती है किन्तु यह सब उनकी भ्रामिक कल्पनायें हैं या होती हैं।

सच तो यह है कि जिस प्रकार एक कुशल कारीगर अपनी जंग खाई हुई अथवा जीर्ण शीर्ण टूटी फूटी मशीन अथवा पुर्जों का सुधार कर दीर्घ काल तक पुनः उससे मन इच्छित कार्य ले सकता है उसी प्रकार एक स्वास्थ्य वैज्ञानिक व्यक्ति अपने अथवा अपने साथी के शरीरस्थ विजातीय द्रव्य को निकाल कर उसे दीर्घ जीवी तथा सबल और स्वस्थ बना सकता है। बस इसी प्रकार की वास्तविक क्रिया व रूप को काया कल्प के नाम से पुकार सकते हैं।

अब यह प्रश्न उठता है कि किन २ कारणों से हमारे शरीर में जंग लग कर बेकार हो जाता है अथवा अल्पायु को प्राप्त होने लगता है। इस के उत्तर में केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हमारा शरीर पंच तत्वों द्वारा निर्मित है और जब इन में न्यूनाधिकता होकर इनकी समता में विकार उत्पन्न होने लगता है तभी हमारा शरीर क्षय को प्राप्त होने लगता है। दूसरे प्रकृति जब इस विकार को मिटाने का प्रयत्न करती है तो उस समय जो क्रिया होती है उसी का नाम रोग उत्पन्न होना कहा जा सकता है। हमारा शरीर ही नहीं अपितु समस्त सृष्टि की वस्तुओं का निर्माण, परिवर्तन, विकास और विनाश आदि क्रियायें पंच तत्वों के रासायनिक परमाणुओं की शक्ति पर ही अवलंबित है।

यह पंच तत्वों की न्यूनाधिकता का ही प्रभाव है कि ध्रुव प्रदेश में अग्नि तत्व की अल्पता के कारण अत्यन्त शीत, और दक्षिणी अफ्रीका व अमेरिका में अग्नि तत्व की अधिकता के ही कारण अत्याधिक गर्मी पड़ती है। अरब में वायु की अधिकता से तूफान चलते है अतः वर्षा कम होती है और सिवाय रेतीले मैदानों के हरियाली के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। आसाम एवं पूर्वी द्वीप समूहों में जल तत्व की अधिकता के प्रभाव से घोर वर्षायें होती रहती हैं। और तो क्या पंच तत्वों के न्यूनाधिक के कारण ही किसी प्रदेश के निवासी गौर वर्ण, कहीं काले और कहीं पीले पाये जाते हैं। इसी प्रकार उनके स्वास्थ्य, स्वभाव, आकृति, प्रकृति, शरीर गठन आदि में भी भिन्नतायें पाई जाती हैं।

तत्वों के दो रूप होते हैं स्थूल और सूक्ष्म। हमारा शरीर स्थूल रूप की क्रिया का परिणाम है और सूक्ष्म तत्व हमारे शरीरस्थ अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय कोषादि पर

निरन्तर अपना प्रभुत्व गैर कर इन्हें जीवन, बल और गति आदि प्रदान करते रहते हैं। इन तत्वों की सत्ता हमारे शरीर में निम्न स्थानों में रहती है जिन्हें हम लोग शास्त्र के रूप से ६ चक्र के नाम से पुकारते हैं अर्थात् आज्ञा, विशुद्ध, अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान और आधार जैसा कि प्रस्तुत चित्र में दर्शाया गया है। बस योगीजन अपने शरीर में जिस तत्व की कमी पाते हैं उसी तत्व के स्थान से प्राणायाम द्वारा उसी तत्व की कमी को पूरी कर लेते हैं अथवा तत्वों की विषमता दूर कर उन्हें समता का रूप देकर स्वास्थ्य लाभ और दीर्घ जीवन प्राप्त करते हैं। इस में सन्देह नहीं कि यदि हम स्थूल तत्वों की अपेक्षा सूक्ष्म तत्वों का ही उपयोग करें तो हमारी जीवनी शक्ति और शारीरिक अवयवों का बहुत कम क्षय हो और हम अवश्य दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकते हैं। अब हम पाठकों को तत्वों के विषय में दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न करते हैं।
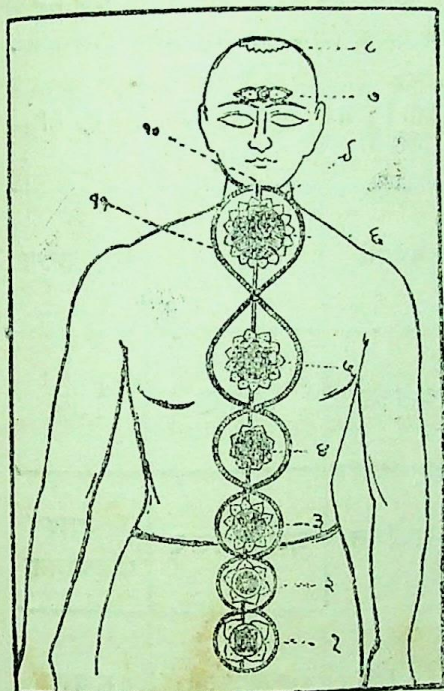
षट् चक्र १ आधारचक्र २ स्वाष्टान ३ मणिपूर ४ मनश्चक्र ५ अनाहतचक्र विशुद्ध चक्र ६ अज्ञाचक्र ८ सहस्त्रदल कमल ९ इडा १० सुषुम्ना ११ पिंगला

तत्व कोष्टक विवरण

नाम	रंग	गुण	आकृति	इन्द्रिय व्यापार
आकाश	सफेद नीलाभा	रिक्त स्थान	अनेक बिन्दु युक्त गोलाकार	सुनना
वायु	आसमानी	कम्पन	गोल	स्पर्श करना
अग्नि	रक्त वर्णी	प्रसरण	त्रिकोण	देखना
जल	सफेद व बेगनी झलक	संकोचन	अर्धचन्द्राकार	स्वाद पहिचानना
पृथ्वी	पीला	निरोध	चतुष्कोण	सूंघना

उक्त कोष्टक में दिखाया गया है कि किस किस तत्व का क्या २ गुण, रंग और क्रियायें हैं।

अग्नि तत्व

इसे 'पावक' या 'तेजस्' तत्व भी कहते हैं और यह प्रकाश और उष्णता के रूप में उदित होता है। आकृति त्रिकोणाकार और रंग रक्तवर्णी होता है। नेत्रों में प्रकाश तथा शरीर में उष्णता रहना इसी के गुण का प्रभाव है। अग्नि तत्त्व बढ़ जाने पर फोड़े, फुन्सी, रक्त-पित्त विकार, हैजा, दस्त, क्षय, श्वांस, उपदंश आदि रोग उत्पन्न होने लगते हैं।

अग्नि तत्व जीवन का उत्पादक है। शरीर की गर्मी समाप्त होते ही जीवन भी समाप्त हो जाता है इसीलिए वेद भगवान ने ईश्वर को अग्नि के नाम से पुकारा है। सूर्य अग्नि तत्व का मूर्तिमान प्रतीक है अतः सूर्य को जगत की आत्मा माना गया है। दूसरे सूर्य से ही हमें अग्नि तत्व विशेष रूप में प्राप्त होता है अतः हम सूर्य तत्वों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

जिस प्रकार सप्त रंगी सूर्य की किरणों से भूमि पर सोना, चांदी, ताम्बा, रांग, शीशा, लोह आदि सप्त धातु और सप्त राशिमय पारद उत्पन्न हुआ और पत्थर पर प्रभाव पड़ने से हीरा, माणिक्य, नीलम, पुखराज आदि सप्त रंग के सप्त रत्न उत्पन्न हुए हैं उसी प्रकार मनुष्यों के शरीर में भी इन्हीं सप्त रंगों के परमाणुओं से सप्त धातु रक्त, मांस, रस, अस्थि, वीर्य आदि की सृष्टि हुई है। पौराणिक लोग सूर्य की सात रंगों की किरणों की कल्पना

सूर्य के रथ में जुड़े हुये सात घोड़ों से करते हैं किन्तु यह बात नहीं है। विज्ञान वेताओं का मत है कि सूर्य में सप्त रंगों का समावेश है और यह सातों रंग सूर्य के सात ग्रहों के अधिकृत रंग हैं जो निम्न प्रकार हैं।

मंगल का लाल (Red), बुद्ध का गहरा लाल-पीला (Orange), बृहस्पति का पीला (Yellow), शुक्र का उज्वल नीला (Indigo), शनी का आसमानी (Blue), चंद्रमा का उज्वल बैगनी (Voilet), पृथ्वी का ही नाम राहू है और इसका रंग हरा (Green) है।

यह सातों ग्रह अपनी अपनी गति से सूर्य के चारों तरफ भ्रमण करते रहते हैं और सूर्य के साथ ही अपनी प्रकाश रूपी किरणें सर्वत्र फेंक कर बनस्पती, प्राणी और उद्भिज्ज जगत् के उत्पादन में सहायक होते हैं। शरीर के सात धातुओं में जो सप्त रंग का मिश्रण पाया जाता है वह भी इन्हीं का फल है।

जब मनुष्य श्वांस लेता है तो सूर्य की प्रकाश रूपी किरणों द्वारा रंगों को ग्रहण करता है जिस का सीधा प्रभाव रक्त और हृदय पर पड़ता है और जो जीवनी शक्ति को शक्ति शाली बनाती हैं। इस के अतिरिक्त एक बात और भी है कि जिस प्रकार सूर्य की उष्णता में और जीवनप्रद शक्ति में प्रत्येक ऋतु के अनुसार सदैव परिवर्तन होता रहता है, उसी प्रकार प्राण की जीवन प्रदायक शक्ति में, सूय और सूर्य मंडल के अन्य ग्रहों तथा पृथ्वी

की गति के अनुसार भांति २ के हमारे स्वास्थ्यादि पर प्रभाव पड़ते रहते हैं जैसा कि निम्न कोष्ठक से दर्शित किया गया है। सूर्य प्रति वर्ष बारह राशियों के केन्द्र स्थान में होकर भ्रमण करता है अतः सूर्य से प्रवाहित होने वाला द्रव्य भी बारह भागों में विभाजित किये गये हैं और उनका हमारे शरिर पर इस प्रकार प्रभाव पड़ता है।

मेष राशि का मस्तिष्क तथा मुख से। वृष का कंठ और ग्रीवा से। मिथुन का बाहु, कन्धे तथा फैफड़ों से। कर्क का छाती तथा जठर रस से। सिंह का हृदय, पीठ और पृष्ठ रज्जु से, कन्या का अँतड़ियों व बड़े नलादि से। तुला का कटि और गुर्दे से, वृश्चिक का जननेन्द्रिय आदि से। धन का जंघा और नितम्ब से। मकर का घुटनों आदि से। कुम्भ का पिंडलियों से और मीन राशि का पैर व पैर के पंजों पर प्रभाव पड़ता है।

इन्हीं सप्त ग्रहों के सप्त रंगों का अनवेषण करते हुये स्वास्थ्य विज्ञानियों ने एक और चिकित्सा का आविष्कार किया है जिसे सूर्य रश्मि चिकित्सा (Chromopathy) कहते हैं। इस चिकित्सा में सूर्य के रंगों को दृष्टिगत् रखते हुये सात रंग की बोतलों में पानी भर कर धूप में रखते हैं और फिर रोगानुसार रोगी को देकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कराते हैं जिसका विवरण निम्न प्रकार है।

रंगों के रोग नाशक गुण

आसमानी (Blue) रंग की बोतल का पानीः-पित्त ज्वर त्रिदोष, पांडू; उन्माद, गुर्दे के रोग, पथरी, वीर्य श्राव, स्वप्नदोष, दंत रोग, चर्म रोग, गर्भश्राव और अतिसार रोगों में लाभप्रद है।

नीले (Indigo) रंग की बोतल का पानीः-वात ज्वर, सिर दर्द, मलेरिया ज्वर, खांसी, अजीर्ण, नेत्ररोग में। इस के अतिरिक्त विषैले जीव जन्तु के काटे हुये स्थान पर इस रंग के पानी में कपड़े को भिगोकर रखने व पिलाने से लाभ होता देखा गया है।

पीले (Yellow) रंग की बोतल का पानीः-मंदाग्नि, रक्त पित्त शून्यवात और मधुमेह आदि रोगों में उपयोगी सिद्ध होता पाया गया है।

हरे (Green) रंग की बोतल का पानीः-बिगड़ा हुआ जुकाम, सिर दर्द, जलन, फोड़ा, फुन्सी व व्रणं आदि रोगों में लाभप्रद होता है।

लाल (Red) रंग की बोतल का पानीः-पक्षाघात, वातरोग, मेदरोग, पांडू रोग, चहरे और शरीर की कान्ति हीनता पर शरीर की चर्बी घटाने, रजोधर्म की कमी पर, अंड वृद्धि आदि रोगों में उपयोगी है।

नारंगी (Orange) रंग की बोतल का पानीः-कफ, ज्वर, उदरशूल, मंदरोग, खट्टी डकारों का आना, आम्ल पित्त, वातव्याधि आदि रोगों में लाभदायक होता है।

बैगनी (Violet) रंग की बोतल का पानीःसर्व प्रकार के ज्वर, क्षय, शक्ति हीनता आदि रोगों में लाभ पहुँचाता है।

साधारणतः बड़े आदमी के लिए ढाई तोले की मात्रा दिन में तीन बार तथा एक वर्ष के बच्चे को ३ माशे और ५ वर्ष के बच्चों को ६ माशे तथा १६ वर्ष की अवस्था वाले को २ तोले तक देना चाहिए। रंगीन कांच की रोशनी छोटे बच्चे को २ मिनिट १५-१६ वर्ष की अवस्था वाले को ४ मिनिट और युवकों को १० मिनिट देनी चाहिए।

जो चिकित्सक अपनी औषधियों को सूर्य शक्ति देकर और भी प्रभावशाली बनाना चाहें तो उन्हें इस प्रकार समय लेना चाहिए। दूध को सिर्फ १ घन्टा प्रातःकाल की धूप देना चाहिए। क्वाथ २ घन्टे, अर्क, अवलेह ६ घन्टे, काष्ठादि चूर्ण, गोलियां आदि, पाक व घृतादि ८ घन्टे, तेल २ दिन, रसादि एक सप्ताहा धूप देना चाहिए। चिकित्सक को चाहिए कि उक्त चीजों के गुणादि को देखते हुये, उसी के अनुसार किरणों का रंग देना चाहिए।

रंगीन कांच की बोतलों का चुनाव भी बड़ी सतर्कता से करना चाहिए। क्योंकि प्रायः हर रंग को दूसरे रंग की झलक मिली

रहती है। इसकी परीक्षा करने का ठीक तरीका यह है कि अंधेरे कमरे में दीपक जलाकर उसके सामने रखकर कांच या बोतल को देखना चाहिए। अब जो रंग दीपक की लौ का दिखाई दे वही रंग काच का समझना चाहिए। यदि लौ में दूसरे रंग की झलक दिखाई दे तो काच में उस रंग का भी मिश्रण समझना चाहिए।

उक्त लिखित रंगों की बोतलों का पानी देने के अतिरिक्त यदि रोगी को उसी रंग के काच के सामने बैठाया जाय जिस में से सूर्य की किरणें काच के रंग को लेती हुई सीधी रोगी के शरीर पर पड़ें तो और भी शीघ्र रोग निवारण किया जा सकता है। इसी उद्देश्य को हृदयगत रखते हुये हमारे पूर्वजों ने मकानों के झरोखों में पूर्व दिशा की रुख रंग बिरंगे कांचों द्वारा चित्रादि बनाने की प्रथा रखी थी जिनके सामने सूर्योदय के समय बैठकर रोगी लाभ उठाया करते थे।

रंगीन जल प्रस्तुत करने की विधि यह है कि जिस रंग का जल उपयोग में लाना हो उसी रंग की बोतल में भवके द्वारा जल खींच कर या उत्तम (Distilled water) लेकर बोतल में इतना भरें कि बोतल ३-४ अंगुल खाली रहे। फिर कड़ी डाट लगा बोतल को जमीन पर न रख कर किसी लकड़ी के तख्ते पर धूप में ७-८ घन्टे तक रखी रहने देना चाहिये। इसके उपरान्त उस पानी को रोगानुसार व्यवहार में लावे।

सूर्य स्नान की विधि ।

सूर्य स्नान के लिए १० से २ बजे तक का समय सर्वोत्तम है। सूर्य स्नान करते समय सिर को किसी हरे पत्तों से ढ़क लेना चाहिए। केला या कमल जैसा बड़ा और शीतल प्रकृति का पत्ता मिल जाय तो और भी अच्छा हो अन्यथा नीम के पत्तों का एक बड़ा सा गुच्छा से ही काम निकाला जा सकता है। धूप का इस प्रकार सेवन करना चाहिए कि शरीर के हर अंग को सिवाय नेत्र मस्तिष्क को छोड़ लग जाये। सूर्य स्नान करने के पूर्व दो घन्टे और इतने ही समय बाद भोजन करना चाहिए। बादल हो रहे हों, वर्षा हो रही हो तो सूर्य स्नान न करना चाहिए। सूर्य स्नान का स्थान ऐसा होना चाहिए कि जहां पवन के झोके न लग सकते हों।

सूर्य स्नान के कुछ समय पश्चात् यदि संम्भव हो तो ताजे गुनगुने जल से स्नान करले अन्यथा पानी में तोलिया भिगो कर और निचोड़ कर शरीर के हर अंग को भली भांति रगड़ कर पोंछ डाले ताकि जो गर्मी व विषैला मैल रोम कूपों द्वारा निकल कर त्वचा पर आकर जम गया है वह साफ हो जाय तथा शुद्ध पवन अन्दर प्रवेश कर सके। सूर्य स्नान करने से शरीरस्थ विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में बाहर निकल जाता है। रोगी को शीघ्र आराम होता है और निरोगी पर साधारण रोगों का आक्रमण नहीं हो पाता।

जल तत्व ।

जल तत्व को "अपस्तत्व" भी कहते हैं, रंग श्वेत तथा बैंगनी आभायुक्त होता है। रसनेन्द्रिय का पोषक और इसका प्रधान गुण संकोचन है। जल तत्व की सत्ता के द्वारा ही रसों का स्वाद जाना जाता है और इसके आन्दोलन अर्ध चन्द्राकार लहरों की आकृति के होते हैं। जैसा कि आपको नदियों की रेती में से पानी हट जाने पर रेती पर अर्ध चन्द्राकार लहरें दिखाई देती हैं। जल तत्व का अन्य तत्वों के साथ विविध परिमाण में संयोग होने से ही अतःकरण के मनोभावों पर सत्ता चलाने वाले अनेक प्रकार के सूक्ष्म तत्व उत्पन्न होते हैं जिसका अपना अपना खास रंग होता है। ज्ञान तंतुओं पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले ये स्वरों के वर्ण ही हैं। ज्ञान तंतुओं पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव के कारण ही संगीत से अनेक प्रकार के रोग निवारण किये जा सकते हैं। तत्व जल तीव्र होने पर जलोदर, पेचिश, संग्रहणी बहुमूत्र, जुखाम, खांसी और प्रदर आदि रोग होने लगते हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि जल तत्व पर प्राणी मात्र ही नहीं वरन् वनस्पति जगत का भी आधार निर्भर है। इसका हम अनेक रूपों में व्यवहार करते हैं। जल के विषय में बहुत कुछ ज्ञातव्य बातें पृष्ठ ८५ से ८६ तक लिख चुके हैं। इस जगह तो मह केवल जल द्वारा रोगोपचार के विषय में ही लिखना चाहते हैं। अब हम स्नान की विभिन्न क्रियाओं तथा उन के द्वारा होने वाले लाभों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करते हैं।

शीतल जल का स्वाभाविक स्नान
Cold plunge bath

नदी नाले व तालाब आदि प्राकृतिक स्नान करने के स्थान हैं। इनमें उतर कर स्नान करने, भाग दौड़ करने तैरने से शरीर और मन में स्फूर्ति उत्पन्न होती है। घर की बन्द कोठरी में गन्दी मोरी के पास बैठकर दो लोटे सिर पर गेर देने से अथवा आधुनिक स्नानागार में टबों में बैठकर स्नान करने को ही स्वाभाविक स्नान नहीं कह सकते हैं। बहते हुये चाहे घिरे पानी में भाग दौड़ करने तथा तैरने से शरीर के सब स्नायुओं का स्वयं ही अच्छा व्यायाम हो जाता है, चित्त में स्फूर्ति उत्पन्न होकर पुरुषार्थ बढ़ता है, रक्त शुद्ध होता है और अग्नि प्रदीप्त होती है। दूसरे बहते पानी की लहरों में उनके आपस में टकराने से एक प्रकार की बिजली उत्पन्न हो जाती है जो शारीरिक साधारण रोगों को स्वयं ही नष्ट कर देती है। लिखा भी है।

अप्स्वन्तरममृतमप्सु भेषजम्
जल में अमृत है, जल में औषधियां हैं।
(अथर्व वेद १।१।५।४)

तुषार स्नान भी करना बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ है। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वर्षा के समय वर्षा में खड़े होकर तुषार स्नान करें, जल की बूंदें आकाश की विद्युत (प्राण शक्ति) से संचारित होकर भूमि पर गिरती हैं। ऐसे समय में इस से अवश्य लाभ उठाना चाहिए। इस की अमृतमय शक्ति द्वारा ही सारी पृथ्वी हरी भरी दिखाई देने लगती है।

वर्षा के जल के अभाव में इस की पूर्ती (Shower Bath) (शावर बाथ) द्वारा की जा सकती है। नल के मुँह पर टीन की जाली लगा कर नन्हीं २ धारें जो ५-६ इंच या इससे भी अधिक
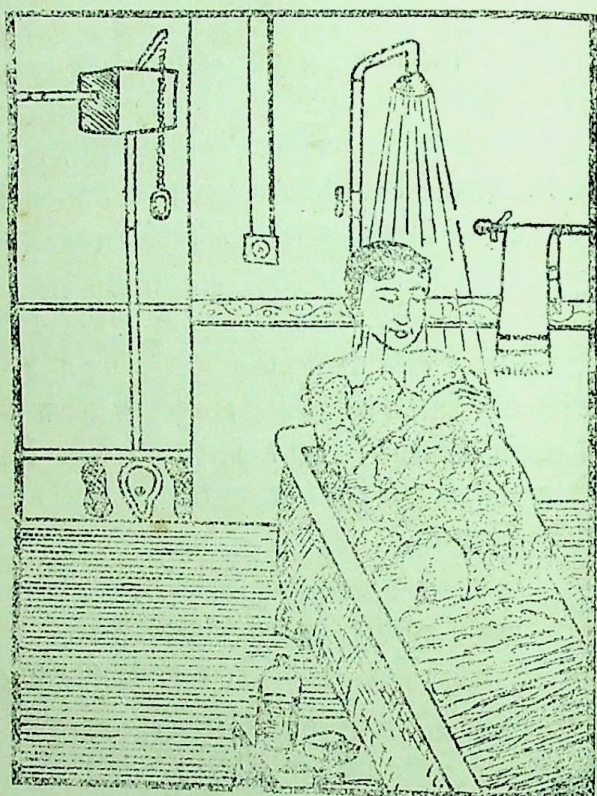
पाश्चात्य ढंग के बने स्नानागार में तुषार स्नान किया जा रहा है।

ऊँचाई से गिरती हों से भी तुषार स्नान के समान तो नहीं किन्तु फिर भी लाभ उठाया जा सकता है।

शीतोदक उदर स्नान
Cold Hip Bath
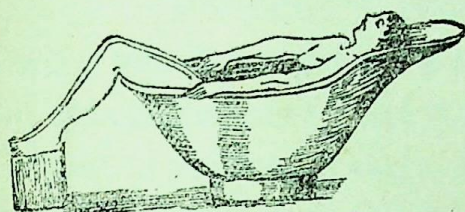
यह तो सभी मानते हैं कि जिस प्रकार घड़ी के किसी भी छोटे से छोटे पुर्जे पर मैल जम जाने से उसकी चाल में अन्तर आजाता है या सर्वथा के लिये बन्द हो जाती है उसी प्रकार इस शरीर रूपी घड़ी का हिसाब समझना चाहिए। अनियमित आहार-विहार, रहन-सहन से शरीर के अवयवों पर मैल अथवा विजातीय द्रव्य जम जाता है और इसकी सफाई के लिये टब स्नान से बढ़कर और कोई उत्तम उपाय नहीं है। जिसकी प्रणाली इस प्रकार है। स्नान करने वाला मनुष्य टब में नंगा होकर बैठ जावे। ताजा ठंडा पानी टब में इतना ही भरना चाहिये कि जिसमें चूतड़ जांघ और इन्द्रियां आदि का अधिकांश भाग डूब जाये यानी चूतड़ टब के पेंदे में टिके रहने पर पानी कर्धनी तक आजाये। इसके बाद पांव के घुटने फैला कर और मुलायम तोलिया लेकर पेडू, लिंगेन्द्रीय अथवा पसलियों के निचे का भाग आदि के स्थान को ऊपर नीचे व चारों तरफ भली भांति तोलिया या कपड़े में पानी भर २ कर रगड़ना चाहिए। यह क्रिया शारीरिक शक्ति अनुसार ५ से १५ मिनिट तक की जा सकती है। स्नान के पश्चात् भली भाँति शरीर पोंछ कर सारे सूखे शरीर पर

दस पाँच बार जल्दी २ हाथ फेरना चाहिये। वाष्प स्नान और इस स्नान के अभ्यासी को सात्विक भोजन करना चाहिये। हरे साग, फल वगैरह का व्यवहार ज्यादा करना चाहिये।

अग्नि तत्व को पानी के साथ संमिश्रण हो जाने से उसकी शक्ति बड़ी प्रबल और अधिक लाभप्रदायक हो जाती है। यदि हम किसी रोगी की चिकित्सा में केवल सूखी गर्मी का ही प्रयोग करें तो उल्टी खुश्की बढ़कर जीवन रस सूखते हैं तथा रोग उत्पादक कीटाणू नष्ट होकर अन्दर ही रह जाते हैं जो कालान्तर पश्चात् पुनः रोग उत्पादन का कार्य बन जाते हैं किन्तु यह बातें गीली गर्मी यानी भाप द्वारा सेक करने में नहीं होती है क्योंकि पानी की सरसता और अग्नि की उष्णता दोनों मिल जाने के कारण हानि रहित लाभ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

बाष्पस्नान Vapour bath

आयुर्वेद में इसे स्वेद स्नान कहते हैं और इसके १३ भेद लिखे हैं। चरक में बाष्पस्वेद स्नान कहते हैं और इसके १० भेद लिखे हैं। अपने यहां के शास्त्रकारों ने प्रथम तेल मर्दनोपरान्त यह स्नान करना बताया है मगर पाश्चात्य विद्वान इससे सहमत नहीं हैं। वह
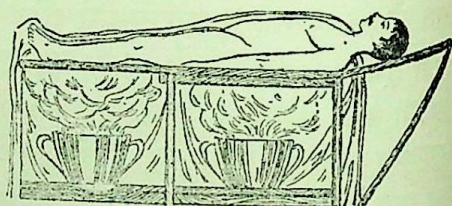
केवल खाली स्नान ही बतलाते हैं। यह स्नान सप्ताह में एक या दो बार से अधिक न करना चाहिए। इस स्नान के द्वारा बड़े २ लाभ होते हैं। यद्यपि इसके लिए बड़े बड़े यंत्र उपलब्ध हैं, जिनके खरीदने में बहुत द्रव्य व्यय होता है। इसलिये नीचे लिखे सरल उपायों का अवलम्बन करना चाहिए। किसी एक बर्तन में (जो चौड़े मुख का और गहरा हो) पानी भर के उसे कोयलों की सिगड़ी पर रख कर गर्म कर लेना चाहिए और दूसरा बर्तन गर्म होने के लिए सिगड़ी पर रख देना चाहिए। जब पानी में से भाप निकलने लगे तब उसे बेंत से बनी हुई कुर्सी या खाट के नीचे रखना चाहिए। कुर्सी या खाट बरतन से कुछ ऊँची हो, यदि ऊंची न हो तो उसके पांवों के नीचे ईंट या पत्थर रख के ऊँची की जा सकती है। बाद में कम्बल ओढ़कर कुर्सी या खाट पर इस प्रकार बैठ जावें या लेट जावें कि भाप निकल जाने के रास्ते चारों तरफ से ढ़क जावें और भाप बेकार न जाने पावे। जहां से भाप आती हो वह भाग कम्बल से खुला रखें। इस प्रकार शरीर के सब भागों में भाप का सेक लेवें। इस प्रकार शक्ति अनुसार ५ से १५ मिनिट तक वाष्प-स्नान करें। वाष्पस्नान के बाद टब बाथ लेकर शरीर को तोलिए से भली भांति पोंछ कर कपड़े पहन लेना चाहिए। यह तो हुई दोनों प्रकार के स्नान विषयक बातें। अब रहा खाद्य पदार्थों के बारे में। इसके लिए तो यहां तक लिखा है कि इस क्रिया को करते समय बिना छने आटे की रोटी, छिलकेदार दाल और बिना मसाला पड़ी केवल उबली हुई तरकारी खाना चाहिए। केवल घी

और नमक ही तरकारी में हों, गरम मसाले व मिर्च आदि न गेरना चाहिए। यदि हो सके तो तरकारी का उबला हुआ पानी फैंक न देना चाहिए बल्कि उसी तरकारी में सोंखा देना चाहिए।

जल चिकित्सा करते समय चाय, कहवा, बीड़ी, सिगरेट आदि पीना मना है। स्त्री प्रसंग से भी यथा शक्ति बचना चाहिए और मानसिक कार्य कम करना चाहिए।

ध्यान रहे जल चिकित्सा के समय प्रायः शरीरस्थ पुराने रोगों का उखाड़ होने लगता है अथवा मौजूदा रोग उग्ररूप धारण करता है किन्तु इससे घबड़ाना न चाहिए क्योंकि यह बात केवल कुछ समय के लिए ही होती है और कुछ समयान्तर वह स्वयं ही समूल नष्ट हो जाते हैं।

टब बाथ और स्टीम बाथ प्रायः दाद, खाज, खुजली, फैंफड़ों के रोग, बवासीर, हृदय रोग, मूत्राशय सम्बन्धी रोग, कब्ज, गर्मी और सूजाक, मेद रोग, नपुंसकता, स्नायुविक पीड़ायें, बांझ-पन, मस्तिष्क पीड़ा और गठिया आदि अनेक रोगों में लाभ पहुँचाता है।

अंडकोश, हृदय और नेत्रों को वाष्प-स्नान से बचाना चाहिए। स्टीम बाथ के बाद सिट्ज बाथ या हिप बाथ लेना आवश्यक है। दो तीन हफ्ते उक्त चिकित्सा कर लेने के बाद बीच में ४-५ दिन का अवकाश लेना चाहिए। रजोधर्म के समय स्त्रियों को चिकित्सा बन्द कर देनी चाहिए।

पृथ्वी तत्व

पृथ्वी तत्व पांचों तत्वों में से स्थूल तत्व है। यह गंध को पहिचानने वाली इन्द्रियों का पोषक है। निरोध और संयुक्तता, इसके दो मुख्य धर्म हैं तथा आकृति चतुष्कोण है। ज्ञान तंतुओं की ग्रन्थियों में इसकी सत्ता प्रधानता से रहती है। रंग पीला होता है। शरीर में पृथ्वी तत्व की आवश्यकता से अधिक वृद्धि हो जाने से यकृत सम्बन्धी रोग पांडु तथा रक्ताल्पता आदि रोग हो जाने की सम्भावना रहती है। पृथ्वी तत्व बढ़ जाने से फील पांव, तिल्ली, जिगर, रसौली, मेद वृद्धि आदि रोग होते देखे गये हैं।

यह कहना अनुचित न होगा कि मिट्टी में से ही अनेक प्रकार के क्षार, लवण, विटामिन, खनिजधातु, रसायेनें, रत्न, रस आदि निकलते रहते हैं। सारी औषधियाँ भी पृथ्वी से ही पैदा होती हैं अतः यह स्पष्ट है कि औषधियों के परमाणु पहिले मिट्टी में उपस्थित रहते हैं। सच तो यह है कि मिट्टी हमें बाहुल्यता से सहज ही में मिल जाती है इसलिए इसका कोई महत्व हमारी दृष्टि में नहीं जचता। यदि कहीं इसके मिलने में कठिनता होती तो हम इसे औषधियों की भांति ही शीशियों में भर कर रखते तथा सम्मान की दृष्टि से देखते।

देखिये जो अबोध बच्चे प्रकृति माता के सच्चे उपासक होते हैं वह मिट्टी में खेलना कितना अधिक पसन्द करते हैं। हमारे पूर्वज

गुफाओं में नग्न शरीर ही रहा करते थे, पशु पक्षी पृथ्वी पर लेट कर अपनी थकान मिटा लेते हैं आदि बातों से यही निष्कर्ष निकलता है कि मिट्टी भी हमारे स्वास्थ्य के लिए हितकर है।

मिट्टी, कूडा, कचरा, कंकड़ आदि रहित हो। बालू रेत काम में नहीं लाना चाहिए बल्कि चिकनी मिट्टी चिकित्सा कार्य के लिए अच्छी होती है। मिट्टी को कूट पीस कर खूब महीन कर महीन चलनी या कपड़े में छान लेना चाहिए। इस मिट्टी को परात या अन्य किसी बर्तन में कि जिसमें कि यह भली भांति गूंथी जा सके भरकर इसमें खोलता हुआ गर्म पानी इस अन्दाज का मिलावें कि मिट्टी गूंथने पर लुगदी का रूप धारण करले न ज्यादा कड़ी ही रहे और न अधिक पतली ही। कहने का अभिप्राय यह है कि मिट्टी कपड़े की पट्टी पर मलहम की तरह पोती जा सके। यों तो ठंडा पानी भी मिलाया जा सकता है किन्तु गर्म पानी गेरते से यही लाभ होता है कि यदि मिट्टी में कोई दूषित विकार हो या किसी प्रकार का कोई कीटाणु हो तो वह नष्ट हो जाता है और मिट्टी विकार रहित हो जाती है।

साफ सुथरे कपड़े पर एक इंच मोटी तह मिट्टी की जमा देनी चाहिए और पीडित स्थान पर बांध देनी चाहिए। बांधते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि न तो रक्त भ्रमण में ही कोई बाधा उत्पन्न हो और न पट्टी इतनी ही ढीली बांधी जाये कि पट्टी अपने स्थान पर ठहर ही न सके। पट्टी उसी वक्त तक बंधी रहती

चाहिए जब तक वह गीली रहे और जब वह सूखने लगे तो पलट कर नई मिट्टी की दूसरी पट्टी चढ़ा देनी चाहिए।

पेट का दर्द, कब्ज, आंतों का दाह, संग्रहणी, पेचिस, जलोदर पांडु, वायु गोला आदि के लिए पेट पर पट्टी बांधना लाभप्रद होता है। जाड़े के दिनों में यदि आवश्यकता समझें तो मलमल की पट्टी के बजाय ऊँनी कपड़े की पट्टी बांधी जा सकती है। बहूमूत्र, प्रदर, गर्भाशय सम्बन्धी रोगों में पेडू पर मिट्टी बांधनी चाहिए। ज्वर, रक्त विकार, प्लेग, हैजा आदि रोगों पर भी पट्टी बांधना लाभप्रद होता है। फुन्सी, फोड़ा, व्रण, गांठ, गिलटी, नासूर, सूजन, खुजली, दाद, दर्द रोगों में रोग स्थान पर भी मिट्टी की पट्टी बांधने से जादू का सा असर दिखलाई देता है।

इसी प्रकार चूल्हे की जली हुई मिट्टी से दांत मांजने से पाये-रिया आदि रोगों को लाभ पहुंचता है। मिट्टी के ढेले पर पानी डालकर उसमें से निकलने वाली गंध को सूंघने से नकसीर चलना, जुकाम, पीनस आदि रोगों को लाभ पहुंचता है।

लू लगने पर पैरों के ऊपर मिट्टी थोप देना लाभप्रद होता है। चोट लग जाने पर मिट्टी का लेप करना ठीक होता है। मासिक धर्म की खराबियां, प्रदर रोग तथा विक्षिप्त दशा में भी मिट्टी का उपचार लाभ दिखाता है।

आकाश तत्व

आकाश तत्व अन्य तत्वों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म, अधिक तीव्र गति वाला तथा अधिक शुद्ध होता है। आकाश तत्व की आकृति गोल है। रंग कुछ सफेद और प्रकाशयुक्त होता है किन्तु उसमें रहने वाले अणु नील वर्ण होते हैं। आकाश तत्व शब्द नाद का वाहन है। संसार में जो भी शब्द होते हैं वे सब आकाश के ही कारण होते हैं। आकाश तत्व के विकार से मूर्च्छा, मृगी, उन्माद, सनक, अनिद्रा, वहम, घबराहट, बहरा व गूंगापन और विस्मृति आदि रोग उत्पन्न होते देखे गये हैं।

प्राण शक्ति एक महान शक्ति है जो हमें आकाश से प्राप्त होती है। हम लोग श्वांस, अन्न, जल और विचारों द्वारा इस शक्ति को अपने अन्दर खींचते रहते हैं।

किन्तु कोई विरले ही योगी महात्मा जन इस महान् प्राण शक्ति का अनुभव प्राप्त कर पाते हैं। जो पूर्ण योगाभ्यास को प्राप्त हो चुके हैं तो वे अपने अन्तर्नेत्रों से नाड़ी जाल में बहती हुई प्राण शक्ति को वह प्रत्यक्ष देख सकते हैं। यह तेज हलके गुलाबी रंग का प्रकाश, विद्युत स्फुलिंगों की किरणों के रूप में मुख मंडल के चहुँदिश या शरीर के आस पास दिखाई दिया करता है जैसा कि हम अपने इष्ट देवों के चित्रों में प्रतिबिम्ब के रूप में उनके मुख मंडल के चारों तरफ एक घेरा के रूप में देखते हैं।

हमारे मस्तिष्क में जो विचार उठ कर मुख से निकलते हैं वे एक प्रकार की विद्युत तरंगों की भांति आकाश में व्याप्त हो जाते हैं और कभी नष्ट नहीं होते और जहां अपनी समानता पाते हैं वही दौड़ जाते हैं। जैसे कोई आदमी एक समय क्रोध, आत्म हत्या, धूर्तता, चोरी आदि के विचार कर रहा हो तो अनेकों व्यक्तियों द्वारा जो वैसे ही विचार भूतकाल या वर्तमानकाल में किये गये हैं उनके विचार उस आदमी के पास आकर इकट्ठे हो जाते हैं फल-स्वरूप उसकी क्रोध आदि की प्रवृतियां और अधिक शक्तिशाली और वेगवती हो जाती हैं। इसी प्रकार प्रेम, उत्साह, त्याग परमार्थ आदि विचारों के विषय में भी समझना चाहिए।

मेन्टल हीलिंग, मेस्मरेजिम, हिप्नोटिज्म आदि जो कुछ भी हैं वह सब प्राणशक्ति के ही अंग हैं और हमारी प्राचीन चिकित्सा प्रणाली है। तथा इसके निम्न विभाजन माने गये हैं। (१) मार्जन, (२) श्वासोच्छ्वास (३) स्पर्शक्रिया (४) क्रमा-उपचार (५) वस्तुएँ मंत्रित करना (६) मानसिक चिकित्सा— इन ६ प्राण चिकित्सा के भी कितने ही भिन्न २ रूप हैं जो लगभग ३०-४० के हैं। जिनका विवेचन स्थानाभाव के कारण दर्शित नहीं किया गया है।

वायु तत्व

तत्वों में वायु ही एक सूक्ष्म तत्व है और वायु ही प्राण है। वायुतत्व के आन्दोलनों की आकृति गोल होती है और गोलाकार के ऊपर गोलाकार बनाते रहना ही उसकी गति का रूप होता है। इसका प्रधान कार्य स्थानान्तरों में हलचल तथा कम्प क्रिया उत्पन्न करना है और स्पर्शेन्द्रिय का उत्पादक और पोषक है। इसका मुख्य स्थिति स्थान फैंफड़े हैं तथा हाथों में उस की प्रधान सत्ता रहती है। वायुतत्व की अधिकता हो जाने पर गठिया, लकवा, दर्द, क्षय, गुल्म, हड फूटन, नाड़ी विक्षेप आदि रोग उत्पन्न होने की आशंका रहती है।

कार्बनडायाआक्साइड गैस का अंश वायु में लगभग ३३ ३. के करीब होता है और इस के घटने बढ़ने से मौसम में बड़ा भारी परिवर्तन हो सकता है या हो जाता है। यदि इसका परिमाण दूना हो जाय तो कहीं बर्फ के दर्शन ही न हों और यदि आधा रह जाये तो सारा भूमंडल बर्फ से ढ़क जाये।

हवन द्वारा यह वायु अधिक उत्पन्न की जा सकती है। इस वायु की मात्रा बढ़ने पर वर्षा भी अधिक होती है। हवन की सुगन्धित वायु से क्षय जैसे भयंकर रोग तथा मस्तिष्क रोग नष्ट होते देखे गये हैं। शक्कर जलाने से जो गैस उत्पन्न होती है वह हैजा, तपैदिक, चेचक आदि रोगों को दूर करती है। घी जलाने से जो

गैस बनती है वह चर्मरोग, रक्त, बिकार, शुष्कता, दाह एव अन्य रोगों में लाभदायक होती है। इस के अतिरिक्त हवन की सामग्री में उन औषधियों का भी मिश्रण कर लिया जाये जो हवन करने वाले के रोग के लिए हितकर और उत्तम होती हों तो फिर ऐसा करने से उन औषधियों का धुँआ श्वांस द्वारा शरीर में प्रवेश कर रोग नाश का कारण बन जाता है।

हवन करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि हवन कुंड के चारों तरफ दो चार जल के पात्र अवश्य रखे होने चाहिए कारण यह है कि हवन में जहां उपयोगी वायु निकलती है वहां कार्बन सरीखी हानिकर गैस भी निकलती है और पानी इस दूषित वायु को खींच कर अपने में चूस लेता है।

यद्यपि हवा के विषय में पृष्ट ११० से ११६ तक र्प्याप्त लिखा जा चुका है किन्तु फिर भी कुछ आवश्यक बातें और लिख रहे हैं। यह प्राकृतिक नियम है कि आनेवाली हवा की ओर मुख करके शौच करने से अपान वायु शुद्ध होती है और समान वायु की शक्ति बढ़ती है। ऊंचे स्थानों की वायु प्राण शक्ति को बढ़ाती है और उदान वायु को ठीक कर के मस्तिष्क को तृप्त करती है।

प्राणायाम ।

स्वांस को बल पूर्वक बाहर फैंक व स्थिर रखकर फिर धीरे २ प्राणवायु को भीतर खींचते जाना और जब फैफड़े पवन से परिपूर्ण हो जायें और प्राणवायु अधिक अन्दर प्रवेश न कर सके तब यथाशक्ति पवन को रोक रखने का ही नाम प्राणायाम है। श्वास को बाहर रोकने का नाम कुम्भक, बाहर फैंकने का नाम रेचक, भीतर भरने का नाम पूरक और भीतर रोकने का नाम अभ्यान्तर कुम्भक है। प्राणायामाभ्यासी को उचित है सम भूमि भाग पर आसन लगा स्वांस मुख द्वारा न लेकर नासिका द्वारा ही लेना क्योंकि स्वांस मुख द्वारा लेने से यदा कदा एक दम शीतल पवन फैफड़ों में प्रवेश हो जाने से निमोनियां आदि रोगों के होने का भय रहता है। नासिका के अभ्यान्तर भाग की त्वचा अति सूक्ष्म होती है और उसके पीछे सदैव उष्ण रक्त का संचार होता रहता है। अतः शनैः २ पान किया हुआ पवन चाहें कितना ही शीतल क्यों न हो तो भी नासिका में प्रवेश करते ही उष्ण होने लगता है। प्राणायाम द्वारा रक्त रोग, फैंफड़ों के रोग, संग्रहणी तथा क्षय समान भयंकर रोग भी निवारण किये जा सकते हैं।

प्राणायामाभ्यासी को उचित है कि प्राण वायु बाहर निकलते समय नाभी के नीचे मूल चक्र को ऊपर की तरफ आकर्षण करे।

रेचक करते समय दोनों स्कन्ध नीचे को झुक जाते हैं, पसलियां तथा नाभी के आसपास का उदर भाग अन्दर की तरफ बैठ जाता है और जितना अधिक खींचोगे उतना ही अपान पवन बाहर निकलेगा। अब बलानुसार ठहर कर श्वांस फिर भीतर की तरफ खींचना चाहिए कि जिसे पूरक कहते हैं। साधारण श्वांस लेते समय फैंफड़ों का छटा भाग कार्य करता है किन्तु पूर्ण व्यायाम कि जिससे सुषुम्ना उत्पन्न होने लगे तो उस समय पूर्ण फैंफड़े कार्य में तत्पर हो जाते हैं। सुषुम्ना हृदय के बीच एक जोगी की पूंगी के समान नाड़ी है कि जिस में प्रमाण से अधिक पवन प्रवेश हो जाने पर कभी २ मूर्च्छा होने लगती है। कुम्भक करते समय घबराहट होने लगे तो धीरे २ रेचक या पूरक करने लग जाओ। हां बल पूर्वक प्राणवायु को रोकना मानो सफलता के विपरीत चलना है। प्राणायाम करते समय ॐ शब्द की भावना करनी अति उत्तम है कारण भावना से भगवान भक्ति की जागृति तथा मुख मण्डल पर पूर्ण प्रतिभा प्रदीप्त होने लगती है।

चार प्रकार के प्राणायाम।

उच्चश्वसन High Breathing.

इस क्रिया से श्वास-प्रश्वास करने वाला पसलियां उन्नति करके ग्रीवास्थि और कंधे ऊपर करता है। ऐसा होने पर उदर प्रदेश सहज ही भीतर दब जाता है और उसका वजन मध्य पटल पर पड़ता है। अतः मध्य पटल भी कुछ ऊपर उठता है। यह क्रिया विशेष लाभदायक नहीं वरन् कंठ स्वर को बिगाड़ती है।

मध्य श्वसन Mid Breathing

इस श्वसन में मध्य-पटल ऊपर उठ कर उदर भीतर को दब जाता है। पसलियां कुछ ऊपर उठती हैं और छाती थोड़ी फैलती है। इस से केवल इच्छा-शक्ति की ही वृद्धि होती है।

पूर्ण श्वसन Complete Breathing

इस क्रिया से फुफ्फुस अधिक फूलते हैं। स्नायुओं में से कुछ स्नायु श्वसन करते समय नीचे की पसलियों को तन कर पकड़ लेते हैं और कुछ स्नायु ऊपरी पसलियों को ढ़ीला कर देते हैं। ऐसा करने से श्वसन स्नायु और पसलियां पूर्ण विस्तृत होती हैं तथा अन्य क्रियाओं से यह अधिक लाभदायक है।

निम्न-श्वसन Deep Breathing.

शरीर के मध्य-पटल पर थोड़ी देर विचार करें। वक्षस्थल (छाती) और उदर प्रदेश इनको एक दूसरे से भिन्न करने वाला एक बड़ा स्नायु है। साधारण अवस्था में मध्यपटल उदर प्रदेश में अन्तर्गोलाकार होकर छाती में बहिर्गोलाकार (Convex) दिखाई देता है, परन्तु श्वास भीतर लेते समय मध्यपटल का उठा हुआ भाग नीचे दबता हुआ अन्तगोलाकार (Concave) बन जाता है। ऐसा होने पर मध्म पटल का भार उदर प्रदेश पर पड़ कर वहां के अंग आगे सरकते हैं।

प्रकृति का सृष्टि निर्माण

जिस प्रकार मनुष्य घड़ी, रेल इंजिन अथवा अन्य कोई यंत्र बनाकर खड़ा कर देता है और फिर यदि उनमें के पुर्जे (अंगों) में कोई बाधा न पहुंचे अथवा उनको उनकी आवश्यकताओं की यथा समय पर पूर्ती होती रहे तो वह यंत्र ठीक दशा में चलते रहते हैं। जिस प्रकार रेल के ईंजन अथवा अन्य किसी भी प्रकार के यंत्रों को चलाने के लिये, कोयला, तेल, हवा अथवा भाप आदि की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार प्रकृति ने हमारे शरीर रूपी यंत्र को पंचतत्त्वों द्वारा निर्मित्त किया है। इसमें भी सैकड़ों कल पुर्जे हैं। यदि इन पुर्जों से उनकी शक्ति के अनुसार कार्य लिया जाय और समय २ पर उनकी सफाई होती रहे अथवा प्रकृति के नियमानुसार उनकी आवश्यकताओं की पूर्ती होती रहे तो मनुष्य सदैव निरोग, स्वस्थ्य और दीर्घजीवी बना रह सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं। प्रस्तुत यांत्रिक रूपी मानव शरीर चित्र को देखने से आपको अनुमान हो जाएगा कि प्रकृति ने हमारे शरीर को किस खूबी के साथ बनाया है और किस प्रकार तत्वों २ का परस्पर मिश्रिण किया है।

हमारी प्रकृति माता ने शरीर के व्यवसायों पर नियंत्रण करने के लिए मस्तिष्क रूपी शाषक, आत्मा को वाह्य जगत के समाचार

देने के लिए संवाददाताओं के रूप में कान, नाक, आँख, जीभ, की रचना की है तथा मस्तिष्क के नियंत्रण के पालन करने की
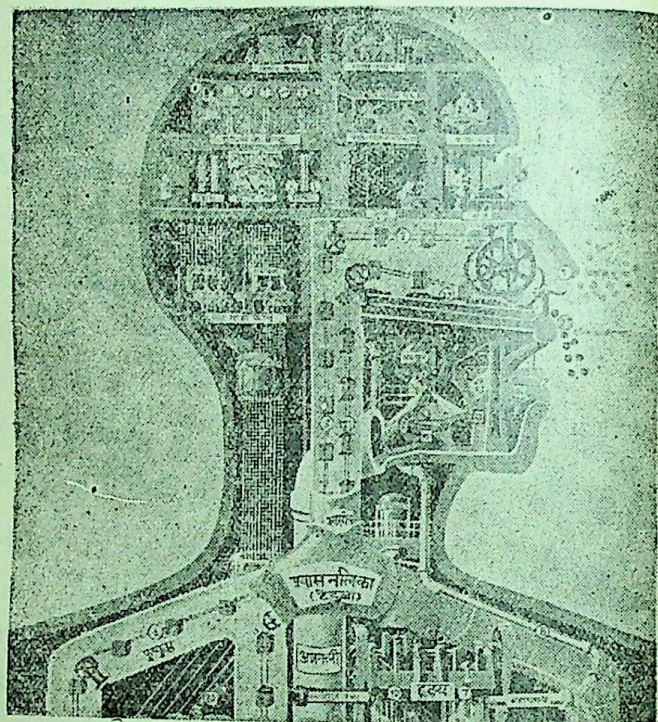
मनुष्य शरीर का यांत्रिक रूप

सूचना टेलीफोन के रूप में ज्ञान तन्तुओं द्वारा सम्वाददाताओं के पास क्षण मात्र में पहुंच जाती है और वह भी उसका तुरन्त ही पालन करते हैं। शरीर ठीक रूप में यथा विधि चलता फिरता रहे इसके लिए अंस्थिपंजर बनाया है और उस पर चर्म का आवरण चढ़ा

कीड़ा भक्षी फूल
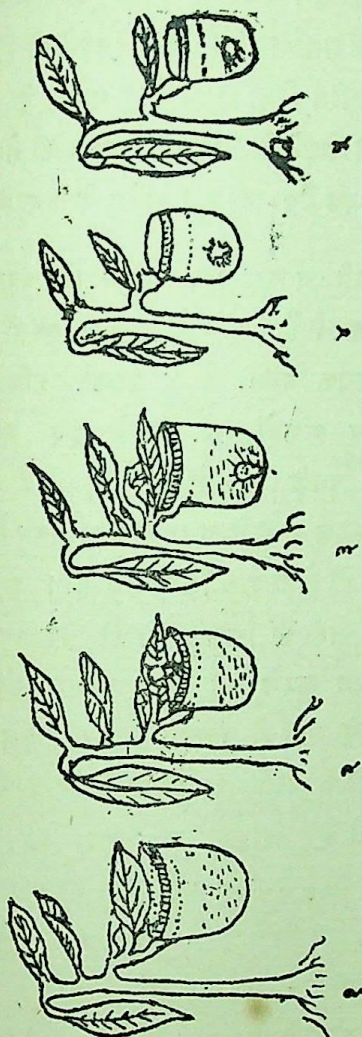
नम्बर १—कीड़ा भक्षी वृक्ष और फूल का वास्तविक रूप ।

नम्बर २—फूल के ऊपर समीप वाले पत्ते पर चींटा, मक्खी या अन्य कोई कीड़ा बैठा हुआ है ।

नम्बर ३—पत्ती झटके के साथ कीड़े को फूल में गेर देती है ।

नम्बर ४—फूल में रस रूपी पानी भरा हुआ है जिसमें कीड़ा फँस कर धीरे २ घुल कर रस रूप हो गया ।

नम्बर ५—इस रस को फूल की बारीक २ नसें फिर दुबारा पेड़ को वापिस देदेती हैं जो पेड़की खुराक बन जाता है

कर उसे सुन्दर बना दिया है। शरीर की क्षति पूर्ती व सजीव रखने के लिए फैफड़ों द्वारा रक्त गर्भाधान में जन्म पड़ने से लेकर मृत्यु पर्यान्त तक बराबर संचारित होता रहता है। घावों के भरने के लिए, टूटी हुई अस्थि को जोड़ने के लिए भांति भांति की सेलें पेशियां बनाई हैं जिन्हें प्रकृति स्वयं पैदा कर हमें सदैव देती रहती है।

साथ ही हमें यह भी न समझना चाहिए कि प्रकृति हमारी या सजीवों की ही रक्षा करती है, सृष्टि की रचना करती है अथवा पालन करने में सहायक बनती है। इसकी दृष्टि में सब समान हैं। पहाड़ व कंकड़ों को जिन्हें हम जड़ पदार्थ समझते हैं प्रकृति ही उनके आकारों को बढ़ाती है। कितने ही पौधे ऐसे भी हैं जो केवल पानी के ऊपर ही पैदा होकर तैरते रहते हैं न इनका कोई बीज ही होता है और न जड़ ही। इसी प्रकार एक पीले रंग की बेल होती है जिस की न तो कोई जड़ ही होती है और न उसे सींचन करने की आवश्यकता ही पड़ती है। इस बेल को अमर बेल के नाम से पुकारते हैं। यह बेल बड़े २ वृक्षों पर छा जाती है और उनके पत्तों व डालियों आदि से अपने पोषक तत्व खींचती रहती है। आपको यह जान कर और भी आश्चर्य होगा कि कितने ही ऐसे भी वृक्ष हैं कि जिनके फूल या पत्तों पर कोई मक्खी, मच्छर, चींटी, चींटा आदि आकर बैठा कि पत्ते या फूल डिब्बी की तरह मुड़ कर बन्द होजाते हैं। इतना ही नहीं बल्कि कुछ वृक्ष तो ऐसे भी पाये गये हैं कि जब जानवर या

नर भक्षी वृक्ष
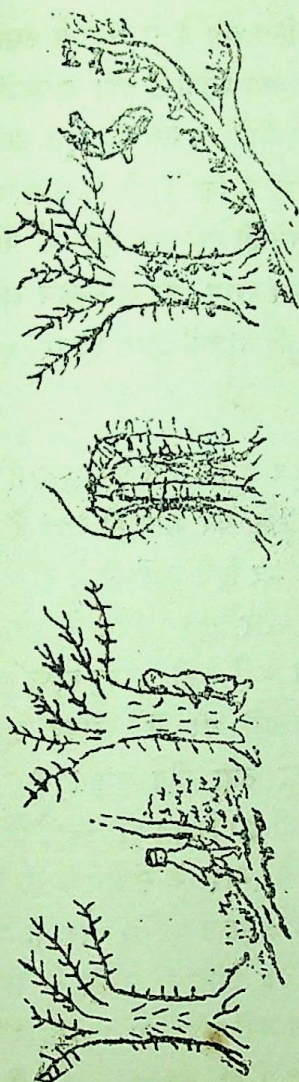
नम्बर १—दुर्भाग्य का मारा एक राहगीर नर भक्षी पेड़ की तरफ आ निकला।

नम्बर २—पेड़ ने जोर से श्वांस खींची और राहगीर खिंचकर पेड़ के तने से जा लगा।

नम्बर ३—देखते २ तमाम कटीली कांटेदार डालियां आ झुकीं और राहगीर का रक्त कांटे सोख गये।

नम्बर ४—रक्तहीन झूंमी लाश डालियों द्वारा फिर वापिस दूर फैंक दी गई और फिर नई शिकार के लिए तैयार हो गई।

मनुष्यादि उसके नीचे होकर निकलता है तो झट से उसकी डालियां उस आगन्तुक जीव पर आकर गिर पड़ती हैं तथा डालियों के कटीले कांटे उसके शरीर में घुस कर धीरे २ रक्त को चूस जाते हैं और शेष बचा कंकाल उन डालियों के फिर उठने के साथ झटक कर कहीं दूर जा गिरता है। कितने ही ऐसे भी वृक्ष व पौधे हैं कि जिनके स्त्री पराग एवं पुरुष पराग- का सम्मिलन भ्रमरों द्वारा, वायु द्वारा या चिड़ियों आदि पक्षियों द्वारा होकर इनकी सृष्टि वृद्धि को प्राप्त होती रहती है।

यह प्रकृति का ही चमत्कार है कि ऊँट के मुख में पहुंचते ही बड़े २ कटीले कांटे भी गल कर मोम हो जाते हैं। शतपदी (कनखजूरे) के दो टुकड़े २ कर दिये जावें तो वे दोनों ही भाग दो ओर को चल देते हैं और कुछ समय में पूरे कनखजूरे हो जाते हैं। भृंग बच्चे नहीं देती परन्तु अन्य बर्र, ततैयों के बच्चों को उठा कर अपने घर में लाकर रख लेती है तथा अपना रूप दिखा कर तथा गीत सुनाते २ अपने ही रूप गुणों का उसे भी बना लेती है। कितने ही जन्तु ऐसे भी हैं कि जिनकी सृष्टि प्रकृति ने बिना नर मादा के संयोग के ही बना दी है और ऐसा ही वनस्पति जगत में समझना चाहिए। एक दो नहीं बल्कि सैकड़ों और हजारों चमत्कारिक दृष्टिटांत प्रकृति के दिखाई देते हैं और अन्त में यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि प्रकृति ही हमारी उत्पत्ती करती है, प्रकृति ही हमारा नाश और हमारी

सहायता करती है तो फिर हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उसके निर्मित पथ पर चलें और उसके आदेशों का पालन करें। बस ऐसा ही करने में हमारा कल्यान है और हम पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं।

पिछले कुछ पृष्ठों के पढ़ने से आपको यह तो ज्ञात हो ही चुका होगा कि प्रकृति ने हमारी रक्षा के लिये कैसे २ सहायक व सहायता प्रदान की हैं किन्तु साथ ही उसे इस बात को भी चिन्ता हुई कि कहीं मेरी सृष्टी का कभी अन्त न हो जाय और उसने इस कमी को दूर करने की इच्छा से स्वयं प्राणियों के शरीर को उत्पादन करने की शक्ति प्रदान की और पुरुष तथा स्त्री के रूप में दो भिन्न लिंगधारी जीव पैदा किये। स्त्री पुरुष दोनों के संयोग
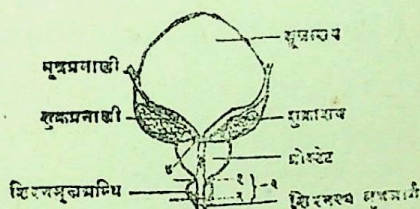
शुक्राशय

शुक्राशय की लम्बाई लगभग २-३ इंच की होती है। सिर स्थूल व नीचे का भाग पतला और नुकिला होता है। शुक्रग्रन्थि में जो वस्तु (वीर्य) बनती है वह शुक्र प्रणाली द्वारा शुक्राशय में इकट्ठी हुआ करती है और संभोग के समय शुक्रस्रोत द्वारा निकल कर योनि में प्रवेश कर गर्भ धारण कराने का कारण बन जाती है।

होने पर एक नव जीव का निर्माण हो जाये ऐसी शक्ति उन्हें दी। वीर्य (Semen) नामक श्राव में पुरुष जीव (Sperm) सपुच्छ तथा जीवित अवस्था में बड़ी संख्या में पाये जाते हैं।

स्त्री बीज (Ova) स्त्री के रजोकोश (Ovaries) में सजीव अवस्था में प्रत्येक मास में उत्पन्न होते रहते हैं किन्तु इनकी संख्या केवल २ से ६ तक ही रहती है। स्त्री पुरुष का संयोग (Sexual Intercourse) होने पर इन स्त्री बीजों में से एक बीज परिपक्व दशा में स्त्री योनि में आकर एक ही पुरुष बीज से संलग्न होता है। ऐसी दशा में एक ही कोष (Cell) का जन्म होकर, वह स्त्री के गर्भाशय (Uterus) में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लेता है और इसी अवस्था को गर्भ–धारण (Conception) कहते हैं। गर्भावस्था (Pregnancy) की अवधि करीब करीब ६ मास
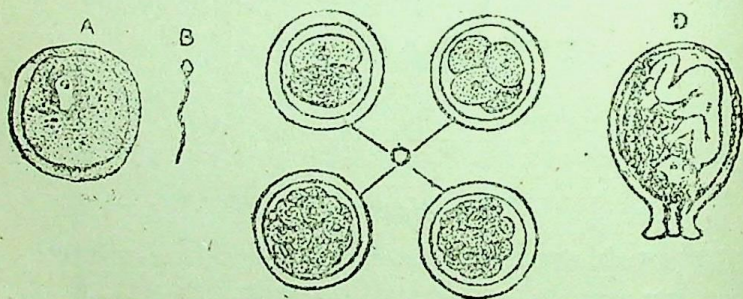
गर्भ विकास

(A) Ovum रजोकण (B) Sperm वीर्यकण (C) Growth of foetus जीव विकास (D) Foetal birth जीव उत्पत्ति

१० दिन की होती है और इस अवधि में यह कोष बढ़ते २ एक छोटी सी मनुष्याकृति में बदल जाता है तथा उसमें सजीवता उत्पन्न होकर हिलने डुलने की शक्ति पैदा हो जाती है, और मानव के रूप में स्त्री के शरीर से बाहर निकल आता है।

इस प्रकार प्रकृति अपनी सृष्टि का एक दो नहीं बल्कि लाखों की संख्या में नित्यप्रति निर्माण करती रहती है। वीर्य के अन्दर जो जीवाणु होते हैं उन्हें शुक्रकीट स्परमेटेजोआ (Spermatozoa) कहते हैं। लम्बाई १/५००० इंच से १/८००० इंच तथा सिर की मोटाई लगभग १/६०० इंच होती है। पूंछ पतली और सिर कुछ मोटा होता है। पूंछ को हिलाते हुये सांप की भांति चलते हैं किन्तु पीछे को नहीं मुड़ सकते वरन् आगे की तरफ ही बढ़े चले जाते हैं ताकि वह
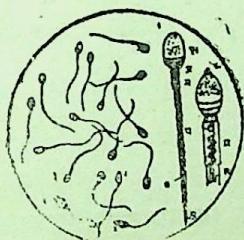
शुक्रकीट

श = शिर, ग = ग्रीवा, म = मध्य भाग, प = पुच्छ, अ = अन्तिम भाग

बिना इधर उधर मुड़े सीधे गर्भाशय में पहुंच कर रजोकोश के कीटाणुओं से मिल कर गर्भ की स्थापना कर सकें। शुक्र कीटाणु शुक्र ग्रन्थियों (अंड कोषों) में बनते हैं और २० वर्ष की अवस्था

में पूर्ण परिपक्व होकर गर्भ धारण कराने योग्य बन जाते हैं। शुक्रकीट और रजकोष दोनों में परस्पर एक प्रकार की आकर्षण शक्ति होती है। शुक्र कीटाणु के रजोकोष से मिलते ही उसका सिर रजोकोष के अन्दर घुस जाता है और घुसते ही उसकी पूंछ क्रमशः जाती रहती है।

जिस प्रकर पुरुष के वीर्य में शुक्राणु होते हैं उसी प्रकार स्त्री के रज में डिंब नामक कीटाणु होते हैं जो वस्तिगह्वर में आस
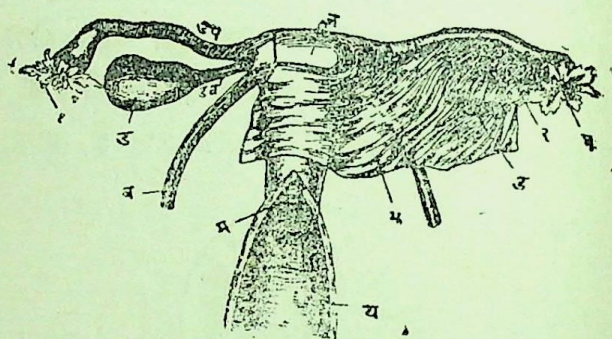
गर्भाशय, डिम्बग्रन्थि व डिम्बप्रनाली

ज=जरायु या गर्भाशय, झ = चौड़ा बन्धन, यह बन्धन केवल एक ही ओर दर्शाया गया है। डप=डिम्ब प्रनाली, डब=डिबम्ग्रन्थि का बन्धन ब=जरायु का गोल बन्धन, ड=डिम्बग्रन्थि, यह ग्रन्थि चौड़े बन्धन की पिछली तह में रहती है जैसा कि चित्र में दाहिंनी ओर दर्शाया गया है। १=डिम्ब प्रनाली के मुख की झालर। छ=छिद्र जिसके द्वारा डिम्ब प्रनाली में पहुँचता है। म=जरायु का बहिर्मुख। य=योनी।

पास दीवारों से लगी हुई डिम्ब ग्रन्थियों से बनते हैं तथा डिम्ब कोष का आकार अंडे सरीखा होता है। जिस प्रकार अन्डे के अन्दर सफेदी और जरदी होती है उसी प्रकार इस कोष के अन्दर भी न्यूक्लयस (Nucleus) और प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) होता है। लम्बाई १ से १$\frac{३}{४}$ इंच और चौड़ाई $\frac{३}{४}$ और मुटाई $\frac{१}{४}$ इंच के लगभग होती है और वजन ६ से ८ माशे तक होता है। डिम्ब परिपक्व अवस्था को पहुंचकर फूट जाते हैं। एक बार में एक ओर का डिम्ब फूटता है और दूसरी ओर का नहीं, यानी दोनों एक बार नहीं फूटते। एक बार के डिम्ब निकल जाने पर डिम्ब-ग्रंथि पर एक छोटा सा चिन्ह हो जाता है जिनसे यह बताया जा सकता है कि स्त्री को अब तक कितनी बार मासिक धर्म हो चुका है। यह तो हुआ मानव सृष्टि की कथा। इसी प्रकार प्रकृति ने अपनी सृष्टि निर्माण निमित्त पशु–पक्षी, वृक्ष, पोधों के लिये भी ऐसे ही नियम बना रखें हैं कि जिन्हें सुनकर हमें आश्चर्यचकित होना पड़ता है। किन्तु खेद है कि हम स्थानाभाव के कारण यहां उनका विशेष उल्लेख करने में असमर्थ हैं।

—:—*—:—

प्रकृति की रसायनशाला

क्षिति, जल, पावक, पवन,
पुनि पंचम गगन विचार।
पंच—तत्व के पिण्ड को,
नाम भयो संसार ॥

जिस प्रकार हम नवीन-गृह निर्माण में ईंट, चूना, लकड़ी, लोहा, सिमेंट आदि वस्तुओं का उपयोग करते हैं और टूट फूट हो जाने पर फिर इन्हीं वस्तुओं का यथा स्थान और आवश्यकतानुसार उपयोग कर उस क्षति की पूर्ति कर देते हैं, उसी प्रकार प्रकृति हमारे शरीर में तरह २ के मसालों का उपयोग करती है, और यह मसाले तत्वों के नाम से पुकारे जाते हैं। इन्हीं तत्वों को कोई लोग रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ऐसे सात धातुओं में बांटते हैं, कोई पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु आदि पंच तत्वों में विभक्त करते हैं, कोई उदजन, ओषजन, नत्रजन, कार्बन आदि गैसों में और कोई लोह, स्फुर, खटिक आदि धातुओं तथा विद्युत उष्मा आदि शक्तियों का सम्मेलन मानते हैं।

अब यह प्रश्न उठता है कि उक्त लिखित तत्व हमें प्रकृति किस प्रकार देती है और कहां से वह लाती है। उत्तर में केवल इतना ही

कहा जा सकता है कि जो खाद्य पय पदार्थ हम खाते अथवा पीते हैं उन सब का उपयोगी अंश ग्रहण कर हम असार भाग को मल रूप में त्याग देते हैं। जिसमें पृथ्वी तत्व की अनेक चीजें और नत्रजन आदि गैसें होती हैं, जिसे हम खाद (Manure) के नाम से पुकारते हैं। इसके बाद बनस्पति जाति इन्हीं हमारे बेकार समझ कर त्यागे हुये पदार्थों से अपनी जीविका चलाता है। जैसा कि आप को संसार का वायु चक्र नामक चित्र से ज्ञात हो रहा है। देखा प्रकृति का कैसा महान सुन्दर यह चक्र है एक दूसरे को एक दूसरे का सहायक
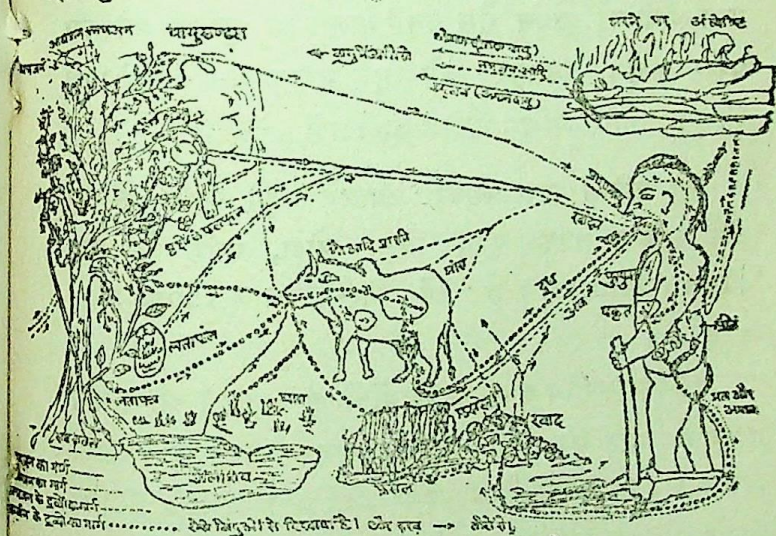
संसार का वायु चक्र (गैसों का विनियोग)

इस संसार चक्र का मध्यवर्ती आधार गौ (दूध देने वाले पशु) हैं जो मनुष्य को दूध और अन्न तथा बनस्पति जगत को खाद देती है।

बना दिया है। यह प्रकृति की ही महिमा हैं कि जो 'कारबन' हमें घातक है वही वृक्षों का जीवन है और जो 'ओषजन' हमें चाहिए उसी को हम उस से प्राप्त करते हैं।

हमारे शरीरस्थ जीवाणुओं में जो पोषक तत्व चाहिए वे तत्व मिट्टी, नमक, लोह, स्फुर, सेलखड़ी आदि से मिलते हैं किन्तु मनुष्य या पशु जाति इन तत्वों का भक्षण मूल रूप में नहीं कर सकते। वे उनको तब ही काम में ला सकते हैं जब वे बनस्पति जगत की जड़ों द्वारा पृथ्वी से चूसे गये हों और उनकी पत्तियों द्वारा खींची गई कार्बन गैस उनमें मिलाई जा चुकी हो और इस प्रकार कार्बन मिलकर बने हुये तमाम तत्व Carbonic Compounds. सेंन्द्रिय यौगिक कहलाते हैं।

पशु पक्षियों द्वारा खाकर उपजाये हुये पदार्थ सेंन्द्रिय और खड़िया नमक, चूना, मिट्टी, लोहा, आदि जो तत्व खनिज (Mineral) हैं इन्हें निर–इन्द्रिय (Inorganic) कहते हैं।

इस निर–इन्द्रीय श्रेणी के पदार्थों में मुख्य जल है जो २ भाग हाइड्रोजन और एक भाग ओषजन मिलकर बनता है। इसका संकेत H_2O., होता है जो शरीर के हर तन्तु में रहता है। यह हमारे शरीर में खाद्यमय पदार्थों द्वारा पहुंचता ही है परन्तु थोड़ा सा अंश प्राण (Oxygen) और अपान (Hydrogen) वायुओं के सम्मिलन से भी बनता रहता है।

हमारे त्यागे हुये असार भाग को वनस्पति (खाद रूप में) पचा कर फिर हम प्राणियों के लिये नाना प्रकार के उपयोगी पदार्थ जैसे फल, फूल, रस-पत्र आदि बना देता है। बस यह धीरे २ तत्वों का भष्म होना और फिर उन्हीं पांच तत्वों का शरीर में नवीन रूप में ग्रहण होते रहना आदि यही प्रकृति की रसायन शाला के चमत्कारिक रासायनिक रूप हैं।

यह मल द्रव्य संयुक्त रूप में (Compounds) पाये जाते हैं। शरीर में संयुक्तों के दो प्रकार होते हैं जैसे सेन्द्रिय (Organic प्राणिज) और निरिन्द्रिय Enorganic खनिज) जिनका तुलनात्मक विवेचन निम्न प्रकार हो सकता है। पाठकों के ज्ञातव्य हितार्थ इन का कुछ सारांश दे रहे हैं।

यों तो विज्ञानिकों का कथन है कि लगभग ६३ प्रकार के तत्वों का पता चल चुका है किन्तु इनमें से मुख्य २ यह हैं। ओषजन, Oxygen नत्रजन Nitrogen उदजन ये गैसों (वायुव्य) कार्बन, गन्धक, स्फुर, (फास्फोरस) लवण, हरिन (क्लोरिन) पुटास्यिम, चूना, मेग्नेशीयम, लोह, सेल खड़ी, क्लुओरिन लिथियम और मैंगनीज। पारद का कुछ अंश भी शरीर में और विशेषतः मस्तिष्क में रहता है किन्तु अत्य अल्प।

रसायन विज्ञान के सिद्धान्तानुसार तमाम पदार्थों के दो विभाग माने गये हैं। पहिला तत्व अर्थात् एलामेंट (Elements) और दूसरा योगिक अर्थात् कंम्पाउड (Compounds)

एलीमेंट तत्व—वे सादा पदार्थ हैं जो विभक्त नहीं हो सकते। चाहें उन्हें कितना ही बारीक काटा और चाहे पीसा जायें किन्तु उनसे वही पदार्थ निकलेगा, दूसरा नहीं। जैसे गंधक, लोहा, सोना, पारा आदि।

योगिक तत्व-योगिक वह पदार्थ हैं जो २ या दो से अधिक तत्वों से मिल कर बने हों। योगिक तत्व इन्हें आपको देखने में एक ही मालूम होंगे किन्तु रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा उस योगिक में मिले हुए तत्व अलग २ किये जा सकते हैं।

तत्वों के भस्म होने के विषय में पढ़ कर कदाचित् आपको आश्चर्य होगा किन्तु कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह पाँचों तत्व स्वयं शरीर में अंगारे की तरह मन्द २ रूप से हर समय दहकते रहते हैं तथा लौ बिना उठाये ही केवल गर्मी पैदा करते हुये खाक हो जाते हैं। तब ये मल, मूत्र, प्रस्वेद रूप में निकलते रहते हैं और इनकी जगह भोजन से नये तत्व शरीर में आते रहते हैं।

इन तत्वों में से चार वायव्य (गैसें) बहुत महत्व पूर्ण हैं। ओषजन, अर्थात् प्राणवायु (आक्सीजन) Oxygen संकेत O। यह गैस वायु मंडल में पञ्चमांस स्थान घेरे हुये है। यह वायु ही शरीर के रग २ में पहुँच कर उसे प्राण और क्रिया शक्ति देती है। फुफ्फुस के वायु कोषों में, रक्त में अमिश्रित रूप में और रक्त के लाल अणुओं में मिश्रित रूप से मिलती है। यह स्वादहीन होता है तथा उष्णता उत्पन्न करता है एवं दृष्टि में अदृष्य रहता है।

नत्रजन (नाइट्रोजन) Nitrogen संकेत N. । यह एक जड़ गैस है जो वायु मंडल में चार-पंच मांश (4/5) स्थान घेरे रहती है। यह फैंफडे की अन्दर की वायु में, कुछ अंश रक्त में और दूसरे तत्वों के साथ मिल कर शरीर के अनेक उपादानों में मिली रहती है परन्तु यह न जलती है और न कुछ खास क्रिया ही करती है। यह रंग हीन, रुचिहीन और निर्वाष्याय वायु है। यह शरीर के नत्रजनीय (Proteins) द्रव्यों में अधिकांश मात्रा में मिला रहता है।

उदजन अर्थात् – जलगत (हाइड्रोजन Hydrogen) संकेत H. यह रुचिहीन और सब से हल्की गैस है। यह गैस ओक्सीजन से भी अधिक और हल्की जलने वाली है। जब यह वायु में जलती है तो 'ओषजन' के साथ जलती है किन्तु प्रकृति इसे इस संयोग से बनाया है शीतल जल ("अग्नेरापि") इसलिए इसे जल-जनक कहते हैं। इसका कुछ अंश आंतों में भी रहता है जो अपान वायु के रूप में बाहर निकला करती है।

उपरोक्त तीनों गैसें निर्वर्ण हैं अतः आंखों से दिखाई नहीं देतीं और इन्हीं गैसों के ऊपर हमारे जीवन का आधार निर्भर है।

कार्यनवायु (Carbon) यह शरीर में स्वतंत्र रूप में न रह कर संयुक्त रूप में मिला रहता है। यह वायु जलता है, प्राण वायु से इसका संयोग हो कर कारबन डाय आक्साइड (Co2) नामक एक विषैली, धूम्र युक्त वायु बनती है और प्राण वायु के मिलने से यह पानी और उष्णता उत्पन्न करता है।

हमारा शरीर
जीवाणुओं से बना हुआ है।

यदि यह कहा जाय कि शरीरस्थ जीवाणु सिद्धान्त का ज्ञान अनुमानतः सन् १६०० के पूर्व कदाचित नहीं के बराबर था तो अनुचित न होगा। जब अनुविक्षण यंत्र की रचना हुई और विज्ञानिकों ने शरीर रचना विषयक खोज की तो ज्ञात हो गया कि हमारा शरीर हजारों लाखों ही नहीं, करोड़ों-अरबों छोटे २ जीवों का समूह है। मानव ही नहीं, पशु पक्षी और वनस्पति आदि सभी में असंख्य जीवों का समूह पाया जाता है। यह जीवाणु घटते बढ़ते रहते तथा नष्ट होते रहते हैं। यह जीवाणु ही हमारे जीवन का मूल कारण हैं। इनके अन्दर एक प्रकार का रस भरा रहता है जिसे जीवन रस (Protoplasm) कहते हैं।

यह जीवाणु भिन्न २ आकृतियों और भिन्न २ ही प्रकार के कार्य करने वाले होते हैं। प्रकृति ने उनकी आकृतियों और उनकी प्रकृति भी उनके कार्य के अनुकल ही बनाई है। हमारे शरीर में असंख्य जीवाणु हर समय अपने २ कार्य करने में लगे रहते हैं। प्रकृति के खेल निराले हैं। हमारे शरीरस्थ जीवाणुओं को अपने भोजन के लिये कहीं आना जाना नहीं पड़ता बल्कि

रक्त की रेल द्वारा उनका भोज्य उनके पास स्वयं ही पहुंचता रहता है और कुछ ऐसे भी हैं जो अपनी जगह से लेशमात्र भी नहीं हिलते बल्कि पोषक रस उन जीवाणुओं के चारों ओर हर समय भरा रहता है। वे उसी में रहते भी हैं और अपना मल विसर्जन भी करते रहते हैं। यह मल कार्बन गैस के रूप में होता है और रक्त की रेल ही इसे शोधक अंगों तक वापिस ले जाती है कितने ही जीवाणु नष्ट भी होते रहते हैं और उनकी जगह नये भी बनते रहते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी जीवाणु होते हैं जो उनके पास पहुँचने वाले रुधिर में से अपने-अपने लिये नियत, खास तरह का रस छांट लेते हैं, चूस लेते हैं और फिर दूसरी तरफ को निकाल देते हैं। ऐसे जिवाणु आमाशय की अन्दरूनी झिल्ली में होते हैं, वे रक्त में से पाचक रस छांटते और आमाशय में छोड़ते हैं। यकृत में हैं, वे रक्त में से पित्त छांटते हैं, गुर्दों में हैं जो रक्त में से क्षार-विकार (मूत्र) चूस-चूस कर दूसरी ओर निकाल देते हैं, तथा त्वचा में और भी अनेक जगह हैं जो पसीना जैसी चीजें छांटते हैं। यह तीनों भांति के जीवाणु त्वगीय कोष (Epithelial cells ऐपीथीलियल सेलें) कहलाते हैं। ये एक प्रकार की सेलें (जीवाणु-मण्डली) मिलाकर-एक तन्तु (Tissue) कही जाती हैं। फिर चाहे इनमें अपनी-अपनी जगह के अनुसार चाहें कोई कोई

जीवाणु कुछ चपटा हो जाय, कोई गोल और किसी में रेशे भी निकल कर और जीवाणुओं से जा लगें।

अमीवा जीवाणु
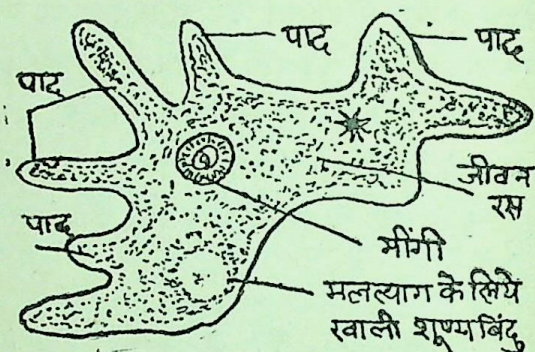
अमीवा एक बहुत ही सूक्ष्म थैली में जीवन रस पूरित जीवाणु है उसमें मींगी तैरती रहती है। रस (किसी उत्तेजना या आकर्षण से) जिधर को ज़ोर मारता है, उधर ही अमीवा के पाद बन जाते हैं और फिर उधर ही शेष शरीरांश भी पहुंचकर पाद लुप्त हो जाते हैं। यह क्रिया निरंतर चलती रहती है।

इन जीवाणुओं में अमीवा नामक जीवाणु एक ऐसा जीवाणु है जो चलता फिरता है, अपनी खुराक को पकड़ता है और एक के अनेक स्वयं बनते रहते हैं। १५०–२०० अमीवा १ इञ्च से भी कम जगह में आ जाते हैं। यह डमरू की भांति लम्बा, सिरों पर मोटा और बीच में पतला होता है तथा बीच में से ही टूट कर दोनों ओर दो अलग बूंद बन जाती हैं। विशेषता यह होती है कि टूटते वक्त मध्य में आये हुए अणु बीज और मिंगी भी बीच

से कट कर दोनों भागों में बट जाते हैं। किसी तालाब में कीचड़ के पास की पानी की एक बूंद उठाली जाय तो उसमें आपको अनेकों अमीवा देखने को मिलेंगे। यह इतने सूक्ष्म होते हैं कि जो बिना अनु-

एक अमीवा के दो अमीवा हो गये
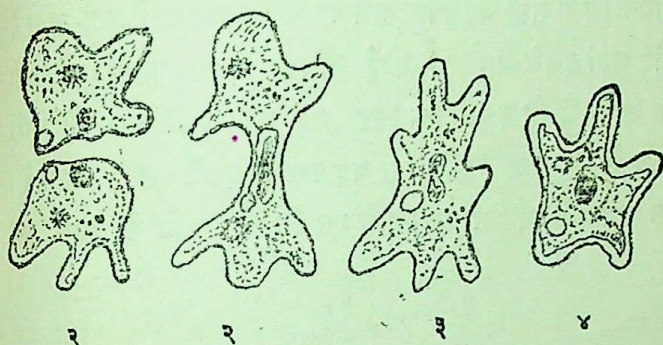
अमीवा में जीवन रस भरा रहता है, और इसे बढ़ने के लिये हवा की आवश्यकता होती है। हवा देती है त्वचा। मगर जीवन रस दूना हो जाय तब भी बाहरी त्वचा का घेरा ड्योंढा ही हो पाता है, यह एक प्राकृतिक नियम है। इधर जीवन रस बढ़ता ही जाता है और त्वचा को भी बढ़ाने की प्रेरणा से स्वयं दो भागों में विभक्त हो जाता है।

नं० १—अमीवा का वास्तविक रूप।

नं० २—अमीवा के एक ओर पाद बढ़े।

नं० ३—बीच से मींगी भी लम्बी होती गई।

नं० ४—बीच की मिंगी भी टूट गई और अमीबा एक के दो हो गये और टूटते समय मींगी के अन्दर स्थित क्रोमोसोम (ओजाणु) भी दो भागों में बट गये तथा मल त्याग के शून्य बिन्दु भी दोनों भागों में बन गये

अनुवीक्षण यन्त्र के द्वारा दिखाई नहीं पड़ सकते । यह अमीबा देखते देखते कितनी ही शक्लें बदलता रहता है । अमीबा की आकृति आड़ी टेढ़ी गोल होगी तो थोड़ी देर में एक ओर को लम्बी हो जायगी और फिर पीछे से सिकुड़ कर उस नई जगह पर पहुँच जायगी और गोल हो जायगी । इसी तरह यह बिना हाथ पैर के भी चलता फिरता रहता है और जहां इसके मार्ग में कोई रुचिकर खाद्य पदार्थ का कण आ जाता है तो इसका एक सिरा बढ़ कर उस कण को चारों तरफ से घेर लेता है और फिर वह उसी बूंद में समा जाता है। इस अमीबा में पसीना सा पतला रस जिसमें पानी के साथ कुछ

अमीबा का भोजन पाना

नंबर १—अमीबा को खाद्य कण दीखा ।
नंबर २—उधर ही उसका पाद बढ़ा ।
नंबर ३—पाद खाद्य कण को घेरने लगा ।
नंबर ४—कण जीवन रस ने घेर लिया ।
नंबर ५—मल बाहर निकाला जा रहा है ।
नंबर ६—कण पच गया और मल आ रहा है ।
नंबर ७—कण घुल कर हजम होने लगा ।
नंबर ८—कण शरीर के अन्दर ले लिया ।

अमीवा का चलना
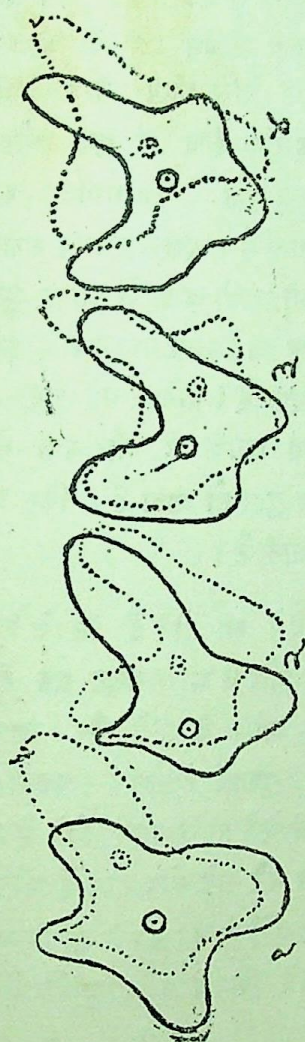
अमीवा का शरीर मोटी रेखा जैसा था अमीवा के जीवन रस ने जिधर की तरफ फैलाने के लिये जोर मारा उधर ही उसका पाद फैलता गया और उसका रूप भिन्न २ आकृतियों में बदलता चला गया जैसा कि १ नम्बर से नम्बर ४ तक बतलाया गया है। इसी तरह अमीवा आकार बदलते हुए बांये दायें, अगाड़ी, पिछाड़ी, सरकता यानी चलता फिरता रहता है।

पौष्टिक और कुछ मधुर पदार्थ घुले रहते हैं, जिसे जीवन रस (Proloplasm) कहते हैं इसी जीवन रस के बीच में एक गोली सी और तैरती रहती है जिसे अणु बीज (Nucleus) कहते हैं । इसके अतिरिक्त इसके बीच में एक और खाली जगह भी रहती है जिसे अणु गुहा (Vacuole) कहते हैं। यह अमीबा का मलाशय कहलाता है । इसके रसमय शरीर में भी अनेक नालियां होती हैं जो इसी खाली जगह में आकर खुलती हैं और जीवन रस में से छटा हुआ व्यर्थ भाग मल रूप में इसी अणु गुहा में आकर संचित होता रहता है । धीरे २ यह गुहा हट कर अमीबा बूंद में एक किनारे आ लगती है और वहां से इसकी चहार दीवारी फट कर मलाशय गुहा हो जाता है । फिर वह गुहा अमीबा में भीतर को ही चली जाती है ।

कुछ जीवाणु शरीर में ऐसे भी होते हैं जिनके एक सिरे पर रेशे-रेशे से निकले होते हैं और वे भी अकसर एक ही ओर को खम खाए हुए । मुख, नाक, आंखों के कोये और पलक तथा भग इनमें अन्दर की ओर जो गुलाबी झिल्ली (पतली त्वचा) मढ़ी हुई है, उसकी ऊपरी तह में ऐसे ही जीवाणु होते हैं । उनसे नीचे की तह में लम्बे-लम्बे रस भरे खड़े कोष होते हैं और उनसे भी नीचे गोलाकार सेलें । इतने पर्तों से वह पतली सी झिल्ली बनी होती है । इसी से अंदाज कीजिये कि ये जिवाणु कितने बारीक होते होंगे ।
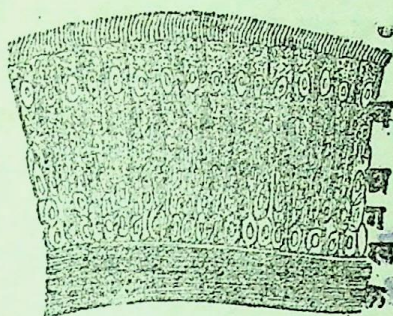
ये मुख के अन्दर गले, गुफा आदि में रहने वाली रसीली झिल्ली (न्यूकसमेंब्रेन) के जीवाणु हैं। इनमें से जो सबसे ऊपर रहते हैं उनकी नोंक से रवे निकलते हैं 'रोम'। उनके नीचे वे जीवाणु 'च' बडी लम्बाई तक रहते हैं, उनके नीचे फिर क्रमशः कुछ लम्बे जीवाणु 'घ' और 'ग' रहते हैं जो थोड़ा २ रस बना कर त्वचा को तर रखते हैं। उनके नीचे 'ख' सौत्रिक तन्तु की जाली तथा उसके नीचे 'क' मांस की पट्टी है।

जैसे बांस अन्दर से पोला और अनेक खड़े २ रेशे वाला होता है उसी प्रकार हड्डियों को भी समझना चाहिए । अस्थि के उपरोक्त खड़े रेशे असल में एक प्रकार से बहुत सूक्ष्म नसें होती हैं जिनमें होकर रक्त की कोशिका Capillaries यानी बाल जैसी बारीक नसें गुजरती हैं। इन खड़े रेशों (Haversian–Canals) के बाहर अस्थि जीवाणु के कई छोटे बड़े पर्त होते हैं और उनके भी बाहर जीवाणुओं के खुले कोष्ठ होते हैं। इन कोष्ठों को अस्थि-अणु-कोष्ठ (Lacunae) कहते हैं। इन कोष्ठों के बीच में बहुत ही अधिक

बारीक नलियों का जाल होता है। जिसमें होकर रेशों में छना हुआ रक्त-रस जीवाणुओं तक नाड़ियाँ पहुँचती हैं। यह मकड़ी जैसे अस्थि के जीवाणु हैं। अस्थि के रेशों के आसपास (चपटे) जीवाणुओं के पर्त हैं। पर्तों के भी बीच में जो जगह बची है वहां जीवाणु गोल-मटोल हैं। इनके चारों तरफ बारीक रेखायें रक्त रस बहाने वाली केशिकायें हैं। हड्डियों में दो तिहाई खनिज पदार्थ चूना-कैल्सियम फास्फेट और कार्बोनेट) तथा एक तिहाई सेन्ट्रियज तत्व (बनस्पतियों से आने वाले) होते हैं।
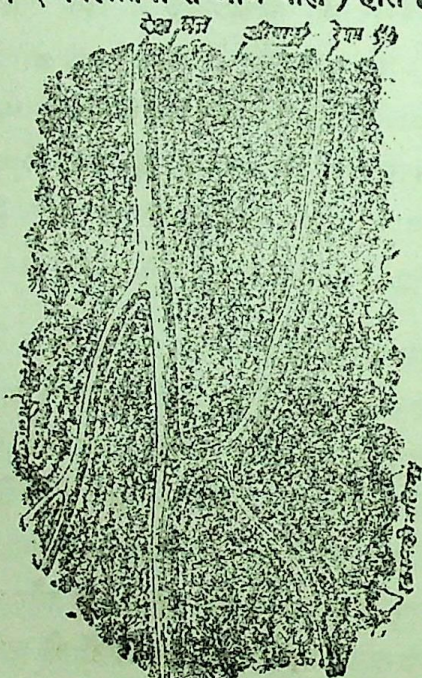
अस्थि जीवाणु

कोष

पाश्चात्य विज्ञानिकों का कथन है कि इन कोषों के जीवन रस में गन्धक (Sulphur) अंगार (Carbon) ओषजन (Oxygen) हाइड्रोजन (Hydrogen) नत्रजन (Nitrogen) एवं फास्फोरस (Phosphorus) का समावेश है। आयुर्वेदाचार्य त्रिदोष सिद्धान्त (वात, पित्त, कफ) का समावेश बतलाते हैं।

अनुवीक्षण यंत्र (Microscope) से देखने पर पता चलता है कि इन कोषों पर एक पतला गिलाफ (Membrance) चढ़ा हुआ होता है, जो इतना लचीला होता है कि दबाने पर मुड़ जाता है और फिर अपने आप अपनी पहिली दशा में आजाता है और जलीय अंश को अपने अन्दर प्रवेश करने में कोई रुकावट नहीं डालता है।

इस शरीर-भवन की ईंटे 'जीवाणु' ही समझना चाहिए जिस प्रकार कमरे में चौकोर, खंभे में गोल, छत पर चपटी और देहली पर आड़ी ईटें लगानी पड़ती हैं, उसी प्रकार शरीर में भी जहां जैसी छोटी-बड़ी, गोल या लम्बी, सादा या पुछल्लेदार भांति-भांति के जीवाणु का उपयोग करती है। कोष, सूत्र, रक्तादि मांस पेशा अथवा अस्थि आदि की आवश्यकता प्रकृति अनुभव करती है उसी के अनुसार उनका निर्माण अथवा उपयोग करती रहती है। यही कारण है कि शरीर के हर अंग घटते बढ़ते रहते हुये भी उनकी प्रकृति में कोई विकृति पैदा नहीं हो पाती है।

भांति २ की सेलें (कोष)
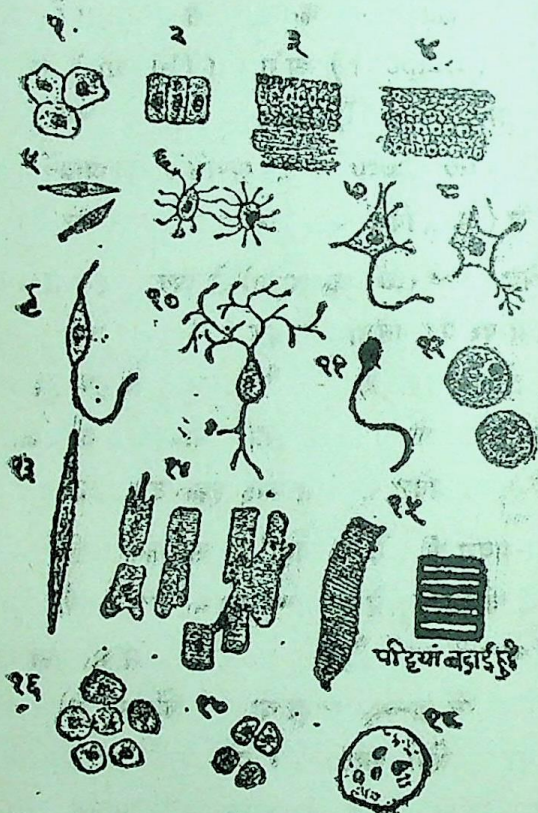
नं० १—चपटी सेलें, २—ईंट जैसी सेलें, ३—रस त्वचा की रोयेंदार सेलें, ४—गोला सेलें (जो इधर उधर की सेलों के दबाव से तरह २ की दीखती हैं, जैसे त्वचा या यकृत की सेलें। ५—यवाकार की (अनैच्छिक मांस की) सेलें ६—मकड़ीवत (हड्डी) की सेलें—७-८-९-१० सूत छोड़ने

वाली बल्लम जैसी सेलें (दिमाग और सुषुम्न मे रहती हैं) ११—सर्पाकार (शुक्र की) सेलें —१२—मींगीदार गोल (रक्त की)सेलें १३—तकुवेदार (ऐच्छिक मांस की) सेलें १४—मिश्रित (हृदय का) सेलें १५—पट्टीदार (पेशियों की सेलें) १६ —१७ उपास्थि (तरुणास्थि , की मींगीदार सेलें १८—बहुत मींगियों वाली (मज्जा) की सेलें ।

रक्तपेशियाँ

जिस प्रकार अमीबा हमारे शरीर के लिए आवश्यक है उसी प्रकार प्रकृति ने हमारे रक्त में दो और जीव प्रदान किये हैं जिन्हें हम प्रायः लाल रक्त पेशियां (Red blood cells) और श्वेत रक्त पेशियां (White blood cells) के नाम से पुकारते हैं। लाल रक्त पेशियां श्वेत रक्त पेशियां से संख्या में अधिक होती हैं। आकार में गोल और एक घन मिलीमीटर जगह में साधारणतः ५० लाख पेशियां पाई जाती हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में कुछ कम होती हैं। इन पेशियों में एक प्रकार का रंगीन पदार्थ होता है जिस के कारण रक्त का रंग लाल दिखलाई देता है जिसे Hoemoglobin कहते हैं। यह कण फुफ्फुसीय रक्ताभिसरण के समय प्राण वायु (ओ२) का अधिकांश भाग स्वयं खींच लेते हैं और तभी रक्त शुद्ध कहलाता है तथा पेशियों में उत्पन्न हुई प्राण वायु की कमी को भी पूरा करते हैं। यह कण मनुष्य के शरीर की हड्डियों के अंतर भाग में तथा गर्भावस्था बच्चे के यकृत एवं प्लीहा में पाये जाते हैं तथा कुछ ही दिनों में जीर्ण होकर प्लीहा में ही नष्ट होते रहते हैं।

श्वेत रक्त पेशियां: यह आकार में लालरक्त पेशियों से बड़ी होती हैं तथा संख्या में भी केवल हजारों में ही होती हैं। यानी एक घन मिलीमीटर जगह में इनकी संख्या केवल ८ हजार से १० हजार तक ही सीमित रहती है। यह रंग हीन होकर आकार में विरूप रहती हैं। यह श्वेत कण शरीरस्थ विपैले स्वास्थ्य
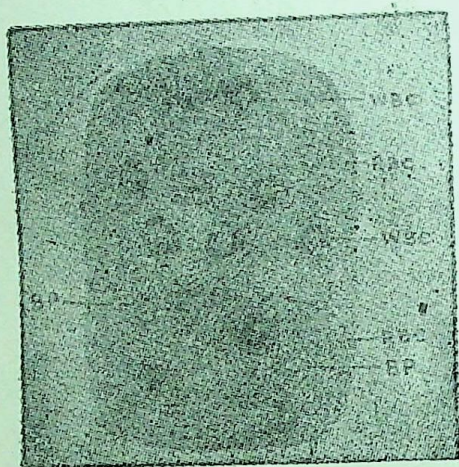
लाल श्वेत रक्तपेशियाँ

अहितकारी रोग जन्तुओं पर आक्रमण कर उनको नष्ट करते रहते हैं। यह श्वेत कण प्रायः अस्थि, सीहा, रस, ग्रंथी गले के गठाने (Tonsils) तथा आंतों के रस पिंडों में पाये जाते हैं और इनका कार्य रोग उत्पादक जन्तुओं का नाश करना, अन्न नलिका में पाचन हुए रस का रक्त में लाना तथा रक्त का गोठना, आदि है।

सौत्रिक तंतु

सौत्रिक तंतु भी एक प्रकार के जीवाणु ही माने जा सकते हैं। यह तंतु लम्बे २ लहरदार रेशों की लच्छी के समान टेढ़े मेढ़े एक पर एक बिछे हुए रहते हैं और एक प्रकार का जाल बनाये रखते हैं। इसी जाल के कारण शरीर के सब अंग अपने २ स्थानों पर ही बंधे व रुके रहते हैं। प्रकृति की अजीब कारीगरी है कि इन सौत्रिक ततुओं की लच्छियों को भी बांध रखने वाले

सौत्रिक तंतु

इसमें जो लहरदार लच्छियां एक दूसरे पर बिछी हुई हैं वे सफेद साधारण सूत्र हैं। उनके ऊपर जो रेल की सी लाइनें बिछी हुई हैं ये पीले लचकदार सूत्र हैं जिनके जाल में श्वेत सूत्र बंधे रहते हैं।

कुछ लम्बे पतले पीले सूत्र और होते हैं जो बहुत सीधे और बहुत ही लचकीले होते हैं। इसी कारण धमनी, हृदय, फुफ्फुस, आंतें आदि सिकुड़ने फैलने वाले अंगों के आस पास यह सूत्र अधिक मात्रा में होते हैं ताकि उनकी क्रिया में कोई बाधा न पहुंच सके।

हमारे शरीर में जितने भी जोड़ हैं वह सब इन्हीं संयोजक तन्तु (Connective Tissue) से बंधे हुये हैं।

इन सौत्रिक तन्तुओं में दो चीजें और होती हैं। एक सौत्रिक जीवाणु (Fibrous Tissue cells) जो इन सूत्रों के बीच में फँसी रहती है। दूसरी चीज है इन सूत्रों की सेलों का पालन करने के लिए एक प्रकार का रस।

इसमें जो लहरदार लच्छियां एक दूसरे पर बिछी हुई हैं वे सफेद साधारण सूत्र हैं। उनके ऊपर जो रेल की सी लाइनें बिछी हुई हैं वे पीले लचकदार सूत्र हैं जिनके जाल में श्वेत सूत्र बंधे रहते हैं।

व्यायाम

हे बन्धुवर व्यायाम कर, बाहु बल अपनाइये ।
दौर्बल्य रूपी शत्रु को, संहार कर सुख पाइये ॥

ईश्वर को अनेकानेक धन्यवाद है कि जनता के विचारों ने पुनः पलटा खाया है और उनका विचार व्यायामादि की तरफ आकर्षित होने लगा है। प्रायः सभी श्रेणी के मनुष्यों ने एक मत से स्वीकार कर लिया है कि व्यायाम यानी शारीरिक परीश्रम करने से ही हमारी मांस पेशियां गठित, मस्तिष्क, स्नायु, फैंफडे मजबूत और रक्त शुद्ध हो दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं कि व्यायाम द्वारा ही हमारे शरीर के सर्व भागों में स्फूर्ति, दृढ़ता आने के अतिरिक्त आत्मबल और चैतन्यता प्राप्त होती है। तभी तो किसी ने कहा है कि "दवा कोई वरजिश से बहतर नहीं, यह नुसखा है कम खर्च वाला नशीं"। एक पाश्चात्य विद्वान के भी शब्द हैं "Health lies in labour and there is no royal road to it, but through toil" अर्थात् शरीर परीश्रम से क्षीण नहीं होता जितना आलस्य से होता है। अब हम व्यायामाभ्यासी के लिये कुछ व्यायाम सम्बन्धी ऐसी बातें लिख रहे हैं कि जिनका उसे प्रथम ही ज्ञान प्राप्त कर लेना उसके लिए हितकर होगा।

नवाभ्यासी को एक दम अधिक व्यायाम न करते हुये धीरे २ अभ्यास बढ़ाना चाहिए। व्यायाम करते समय श्वास मुख खोल कर लेने तथा बिलकुल श्वास रोक लेने की अपेक्षा नासिका द्वारा श्वांस लेना उत्तम है। व्यायाम किसी भी प्रकार के भोजन के दो तीन घण्टे पश्चात् और इतने ही समय पूर्व करना श्रेयष्कर होता है। १०-११ वर्ष की आयु तक हल्का सादा व्यायाम करना उचित है जैसे भागना, कूदना, फुटबाल आदि खेलना। १०-१२ वर्ष की अवस्था से विशेष व्यायाम जैसे डन्ड-बैठक करना, जोड़ी हिलाना आदि करने में कोई हानि नहीं होती। जो व्यक्ति निर्बल और रोगी हैं उनके शरीर से पसीना शीघ्र ही निकलने लगता है और जो आरोग्य व बलवान हैं उनके शरीर से स्वेद सविलम्ब प्रवाहित होता है। निदान रोगी-निरोगी दोनों को क्लान्त और अरुचि होने पर व्यायाम बन्द कर देना ही श्रेयष्कर होता है।

व्यायाम के पश्चात् तुरन्त ही उष्ण पदार्थ सेवन करना हानिकारक है क्योंकि ऐसा करने से यदाकदा मस्तिष्क रोग हो जाते। व्यायाम करते समय शरीर पर लंगोट के अतिरिक्त अन्य कोई वस्त्र धारण न करना चाहिये क्योंकि कपड़े पुट्ठों की वृद्धि को रोकते हैं और फैलने आदि में बाधा डालते हैं। युवाओं के लिये तो दण्ड-बैठक आदि अनेक व्यायाम हैं; किन्तु वृद्ध मनुष्यों के लिये सुप्रभात तथा सायंकाल हरिततृणाच्छादित रम्य उद्यानों में वायु सेवनार्थ यथाशक्ति भ्रमण करना ही उचित व्यायाम है। भ्रमण करते समय धीरे २ न चल कर द्रुतगति से चलना

उचित है, कारण ऐसा करने से शारीरिक शक्ति संचारी स्नायु जाल उत्तेजित हो जाते हैं और रक्त में उष्णता उत्पन्न हो जाती है। किसी ने ठीक ही कहा है "Run slow and walk fast" अर्थात् चलना तेज और दौड़ना धीरे धीरे।

शारीरिक बलवर्द्धन तथा अशक्त भागों को सशक्ति बनाने का सुलभ साधन केवल एक मात्र एकाग्रता ही है। एकाग्रता की शक्ति-प्रदायक विचारों की लहरें अभ्यान्तर अवस्थाओं द्वारा वैद्युतगति की भाँति अशक्ति भागों में प्रस्थान कर शक्ति सम्पादित करती हैं। व्यायाम करते समय दो शीशे आमने सामने रख कर अपने पुट्ठों (muscles) का प्रतिबिम्ब देखा करें तो इस प्रकार धीरे २ एकाग्रता (will power) स्वयं उत्पन्न होने लगती है। इच्छाशक्ति द्वारा ही हम हृदय की संपादन शक्ति को घटा बढ़ा तथा मांस-पेशियों को सुगठित कर सकते हैं। व्यायाम के पूर्व तेल की मालिश करना अत्यन्त लाभदायक है क्योंकि प्रथम तो शरीर पर चिकनाहट, दूसरे हड्डियों में दृढ़ता और तीसरे मसल्स बनने में सुविधा होती है। बिलकुल खाली पेट या क्षुधा लगने पर व्यायाम करने से निरुत्साहता तथा मस्तिष्क रोग हो जाते हैं। अधिक भी न खाना चाहिए क्योंकि व्यायाम करने से खाये हुये अन्न पर एकदम पाचन क्रिया आरम्भ हो जाती है किन्तु उस समय तक अन्न असमर्थ होने के कारण कभी आमाशय से निकल जलाशय में आ जाता है जो रोग का कारण बन जाता है। रक्त-पित्त रोगी, श्वास रोगी, क्षय रोगी, भ्रमरोगी आदि को व्यायाम करना उचित नहीं।

मालिश करना ।

जलसिक्त स्यवर्द्धन्ते यथामूलेऽङ्कुरास्तरोः ।
तथा धातुविवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्य जायते ॥

सुश्रुत

जैसे वृक्ष की जड़में जल सींचनेसे उसके डालों, पत्तों के अँकुर बढ़ते हैं एवं तैल मर्दन से मनुष्य शरीर की धातुयें बढ़ती हैं।

बुकरात का कथन है कि मालिश करने से शारीरिक शक्ति व अवयवों में परिवर्तन हो जाता है अर्थात् थलथलाते हुये अंग गठित, गठित ढीले, मोटे पतले और पतले मोटे हो सकते हैं। सर्वदा मालिश ऊपर की तरफ अर्थात् दिल की तरफ करनी उचित है। पैरों की जंघों की तरफ और हाथों की कंधों की तरफ। मालिश करने से हमारा केवल यही अभिप्राय होता है कि रक्त में उष्णता उत्पन्न होकर रक्त सवेग भ्रमण करने लगे। अधिक समय तक चलने फिरने या शारीरिक परिश्रम करने से पैरों में फूटन व एक प्रकार का दर्द होने लगता है। ऐसे रोगी को पैरों के तलवे व पिड़लियों पर धीरे २ मालिश करनी चाहिये। नींद न आवे, मस्तक व नेत्रों में व्याकुलता या अग्नि सी प्रतीत हो तो सिर व मस्तक पर मालिश करने से तुरन्त एक प्रकार की शान्ति अनुभव होने के अतिरिक्त सच्ची निद्रा आने

लगती है। एक विद्वान् का कथन है कि महीने में एक बार तो अवश्य ही कान में तेल डालना आरोग्यप्रद होता है। क्षौर के पश्चात् बाल काटने के स्थान पर अवश्य तेल लगाना चाहिये। ज्वर के समय और शरीर में फोड़ा फुन्सी हों तो मालिश करना उचित नहीं। मालिश चार प्रकार की होती है। प्रथम ऐफल्यूरेज अर्थात् नर्मगर्म टकोर। टकोर हाथ की दो ऊंगलियों से दी

जाती है। पहले धीरे २ और फिर इतना दबाव दिया जाता है कि शरीर के भीतरी अंगों तक उसका प्रभाव पहुंच सके। दूसरी पेटरीसेज्र अर्थात् त्वचा गूंधना और लपेटना। शरीर के पट्ठों की बनावट को गूंधना और उसके चारों तरफ समयानुसार हाथ जरा शीघ्रता पूर्वक बारम्बार फेरना पड़ता है परन्तु न तो इतना ही सवेग हो की जिससे जलन उत्पन्न होने लगे और न इतनी जोर के साथ हो कि जिससे तकलीफ मालूम होने लगे। तीसरी टेपोटेमन अर्थात् थपकना। इससे धीरे २ हथेली से थपकना पड़ता है। यह क्रिया पेट पर न करनी चाहिये। चौथी वाईब्रेशन अर्थात् अंगुली और हथेली से दबाना।

कान्तिवर्धक मालिश— यदि तुम सवेरे उठकर गर्म पानी की भाप से इतने समय तक मुख को सेको कि भली भाँति पसीने आजायें। ततपश्चात किसी स्वच्छ खरदरे वस्त्र से पसीनों को खूब रगड़ कर पोंछ डालो और किसी खिड़की के पास बैठ कर कि जहाँ से स्वच्छ सुगन्धित पवन का सेवन करते हुये तल की कुछ समय तक मालिश करो तो तुम्हें अनुभव होगा कि तुम्हारा वह कान्तिहीन मुख तजस्वी और सूखे गाल पुनः मोटे होते जा रहे हैं।
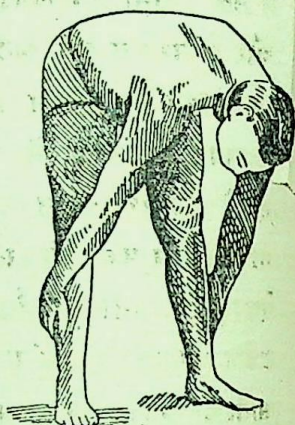
अजीर्ण निवारक मालिश— प्रथम एक बार पाचक अङ्गों की शक्ति और मुख्य कर कोलन नामक बड़ी आन्त के तीनों भागों का स्मरण रखना चाहिये क्योंकि फुजला इसी भाग में इकट्ठा होता है। रोगी को चित्त लेट कर अलग २ दोनों टाँगों का फैला देना चाहिये। दायें ओर नलों के पास जहाँ से छोटी आंत खत्म होकर बड़ी आंत आरम्भ होता है दबाते हुये ऊपर की तरफ आना चाहिये।

मुटापा, पेट की खराबियां व कब्ज की शिकायत दूर करने के लिये लाभप्रद व्यायाम।

मुटापा धीरे २ घटाना चाहिये। इस दुःख से छुटकारा पाने के लिये मोटे आदमी को हर महिने कम से कम चार सच्चे उपवास करने चाहिये और साथ ही शारीरिक परिश्रम भी करते रहना चाहिये तथा घी, दूध, मिठाई और चर्बी उत्पादक पदार्थ बहुत कम खाने चाहियें। हाँ खट्टे पदार्थ जैसे दही, नारंगी, सेव, अनार, अंजीर वगैरह अधिक खाने चाहियें। इन से रक्त शुद्ध हो पाचन शक्ति तीव्र होती है क्योंकि इन में एक प्रकार का खार (Salt) होता है। जिनका पेट चर्बी के कारण भारी होगया है उन्हें उचित है कि श्वांस नासिका द्वारा बिलकुल बाहर निकाल दें और फिर पेट को ऊपर की तरफ खींचें। कुछ सकिंड इसी दशा में रह कर फिर धीरे २ पूर्ववत् दशा में आजावें। अब श्वांस जितना खींचा जाय खींचो और पेट को खूब फुलाओ। यह दोनों क्रियायें कम से कम १०-१० पन्द्रह २ दफा करनी चाहियें। दौड़ना भी पेट घटाने की अच्छी तरकीब है।
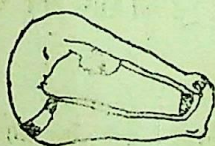
(क) दोनों पैरों में ३ इञ्च का अन्तर रखकर पैर सामने की तरफ सीधे इस प्रकार फैला दो कि जांघ और पेट के बीच में समान बन जाय। अब गर्दन सीधी रख कर भरपूर गहरा

श्वांस खींचो और बिना पीठ झुकाये तथा बिना घुटने मुड़े दोनों हाथों से पैरों के दोनों अंगूठे पकड़ो। कुछ क्षण इसी स्थिति में ठहर श्वांस परित्याग कर दो। यह क्रिया ५ से १० बार तक की जा सकती है। इस कसरत से Oblique मसल्स पर ज़ोर पड़ता है।

(ख) दोनों हाथों से पीठ के नीचे के हिस्से यानी करधनी के स्थान को पकड़ कर बहुत धीरे २ ज़मीन पर सीधे बैठते जाओ और फिर इसी प्रकार धीरे २ उठो परन्तु ध्यान रहे कि पैर की एड़ियां ज़मीन से न उठने पावें तथा घुटने न मुड़ जायें। इस व्यायाम से Rectus Abdomins पर ज़ोर पड़ता है।

(क) अब दूसरी क्रिया के लिये फिर श्वांस खींच कर प्रथम बांया पैर बहुत धीरे २ उठाओ और साथ ही बांया हाथ उठा कर पैर के अंगूठे को पकड़ो
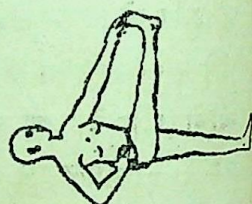
परन्तु ध्यान रहे कि पैर बिलकुल सीधा रहे घुटना मुड़ा हुआ न हो। इसी प्रकार दूसरी बार सीधे पैर के अंगूठे को सीधे हाथ से पकड़ो और फिर पूर्ववत दशा में आजाओ।

(ख) अब तीसरी बार फिर श्वांस ले दोनों पैरों के अंगूठे एक दम दोनों हाथों से पकड़ो।

डंड की कसरत ।
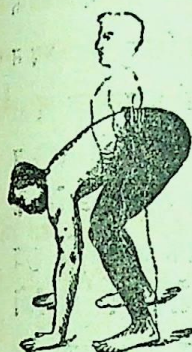
(क) प्रथम भली भांति तैल की मालिश करके सीधे खड़े हो जाओ, पांच पैर आगे बढ़ और पृथ्वी पर एक लकीर बतौर निशान सा खींच कर फिर अपने पूर्व स्थान पर पूर्ववत् दशा में आकर खड़े हो जाओ। अब दोनों हाथ निशान पर टेक दो परन्तु पैरों के पंजे उसी स्थान पर रहें कि जहां पर तुम पहिले खड़े हुये थे।

(ख) अब गहरा श्वांस नासिका द्वारा खींचो और सीधे लम्बे होजाओ परन्तु पैर की एडियां जमीन से लगी रहें और समस्त शरीर का बोझा केवल हाथों की हथेलियों व पैरों के पंजों पर ही होना चाहिये। अब तुम नीचे की तरफ बहुत धीरे २ झुकते जाओ और जमीन को भरपूर दबाते रहो। चित्र के अनुसार हो जाने पर अगाड़ी को बढ़ना चाहिये और चित्र दर्शित स्थिति में आजाना चाहिये। इस व्यायाम से Latissimus Dorsi Erector Spine पीठ के Pectoralis Major छाती के और Anterior Deltoid कन्धे के मसलसों पर जोर पड़ता है।
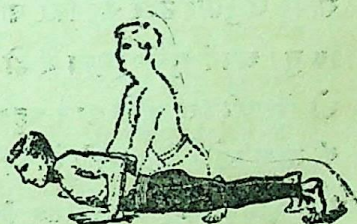
(ग) अब तुम्हें उचित है कि तुम धीरे २ आगे की तरफ जितना भी ज्यादा से ज्यादा बढ़ सकते हो बढ़ो। किन्तु यह ध्यान रहे कि पैर की ऊंगलियां व हाथों की हथेलियां अपनी जगह से किंचित मात्र भी न सरकने पावें वरन् केवल शरीर ही में खिचाव देकर अगाड़ी की तरफ बढ़ना चाहिये। पूर्ण रूप से बढ़ जाने के पश्चात् शरीर बिलकुल सीधा हो जायगा और नाक जमीन से कुछ ऊंची होगी। शरीर का भार हाथ की हथेलियों और पैर के पंजों की ऊंगलियों पर ही होना चाहिये। कुछ समय इसी दशा में सामर्थ अनुसार ठहर कर फिर धीरे २ ही इतने वापिस आजाओ कि तुम अपनी पूर्ववत् दशा में हो जाओ। अब इस से अधिक शरीर को पिछाड़ी मत खींचो वरन बहुत ही धीरे २ बिलकुल सीधे ऊपर की तरफ उठो। ऐसा करने से पेट के मसल्स Rectus Abdomins छाती के Serratus Magnus. कन्धे के Anterior Deltoid. हाथ के Biceps. आदि मांस पेशियों पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

बैठक।

छाती निकाल कर सीधे खड़े हो जाओ और टांगों में ६ इंच का अन्तर बनालो। शरीर एक दम ढीला कर के दोनों हाथ नीचे की तरफ सीधे जांघों से चिपटते हुये इस भांति लटकादो कि

हाथों की हथेलियाँ सामने की तरफ खुली और दिखाई देती रहें। अब गहरा लम्बा श्वांस खींचो और साथ ही बहुत धीरे २ घुटने मोड़ते हुये पिंडलियों पर बैठते जाओ। साथ २ ही पैर की एडियां भी उठती जायें और शरीर का भार केवल पैर की उंगलियां व अंगूठों पर होना चाहिये। तुम ज्यों २ बैठते जाओ त्यों २ दोनों हाथों को खूब खींच कर मुट्ठी बांध कर कोहनी पर से उतने ही धीरे २ कि जिस रफ्तार से तुम झुक रहे हो मोड़ो। किन्तु बैठते समय पूर्ण रूप से पिडलियों पर न बैठ जाओ वरन जांघां और पिडलियों में आध इंच का अन्तर बनाये रहो। इतना ही अन्तर हाथ की मुट्ठियों और कन्धों में रखो। ध्यान रहे कि मुट्ठी इतने जोर से दबानी चाहिये कि कम से कम तुम्हारा सारा हाथ थरथराने लगे। अब सामर्थ्य अनुसार कुछ समय ठहर कर पुनः पूर्ववत रफ्तार से उठने लगो और साथ ही हाथों को भी सीधे करते जाओ। यह क्रिया कम से कम दस दफा करनी चाहिये और एक क्रिया के करने में कम से कम २, ३ मिनिट लगाने चाहियें।

इस व्यायाम से हाथ के मसल्स Flexors of Forearm, Supinator Longus. Triceps, Biceps Anterior Deltoid जांघ के Sartorius. Quadriceps. (Extensors).

Adductor. पिडली के Gastrocnemius and Soleus. Tibialis Anticus बनते हैं।

कलाई और कोहनी के बीच का हिस्सा तैयार करना

चित्र के अनुसार खड़े होकर मुट्ठीयों को भरपूर जोर से बांधलो। अब गहरा श्वाँस खींचते हुये मुट्ठियों को कलाई की तरफ मोड़ कर चारों तरफ घुमाओ तथा भीतर की तरफ दबाव दो।

छाती के मसल्स तैयार करना।

चित्र के अनुसार स्थिति बनाकर भरपूर श्वाँस खींचो। छाती के हिस्सों को सख्त रखते हुये पिछाड़ी और भीतर की तरफ दबाओ। अब मुट्ठियों का परस्पर क्रास करो यानी हाथों को इतना मोड़ो कि कोहनियाँ एक दूसरे के ऊपर आ जायें। मुट्ठियाँ सख्ती के साथ बंधी हों और छाती का दबाव भी नीचे की तरफ हो।

कंधा और कोहनी के बीच का मसल्स तैयार करना ।

पैरों में कुछ अन्तर देकर सीधे खड़े हो जाओ और दोनों हाथ नीचे को लटका दो। अब गहरा लम्बा श्वाँस खींचो मुट्ठियों को भरकर ज़ोर से बांध कर हाथ को कोहनी पर से बहुत ही धीरे २ इतना मोड़ो की मुट्ठी कन्धे से जा मिले अब दूसरे हाथ से भी वही क्रिया करो परन्तु ध्यान रहे कि जब एक हाथ ऊपर की तरफ जारहा हो तो दूसरा नीचे की तरफ आता रहना चाहिये।

पीठ के मसल्स तैयार करना ।

चित्र के माफिक खड़े होकर गहरा श्वांस खींचो। हाथों की मुट्ठियां भरपूर जोर के साथ बांध लो। अब दोनों हाथों को पिछाड़ी की तरफ धीरे २ इतना मोड़ो की दायें हाथ की मुट्ठी बांयें हाथ की कोहनी के पास और बायें हाथ की मुट्ठी दायें हाथ की कोहनी तक पहुंच जायें। साथ ही कंधों को पिछाड़ी की तरफ पूर्ण झोक व दबाव देते रहना चाहिये।

कन्धों की कसरत।

चित्र की भाँति स्थित बना कर गहरा श्वांस खींचो और फैले हुये हाथ को बहुत धीरे २ कोहनी पर से कन्धे की तरफ मोड़ते जाओ। साथ ही मुड़े हुये हाथ को फैलाते जाओ। मोड़ते समय या फैलाते समय हाथों व मुट्ठियों पर इतना जोर दो कि हाथ थरथराने लगें। एक क्रिया समाप्त होने पर श्वांस परित्याग कर नवीन वायु ग्रहण कर तुरन्त ही विपरीत क्रिया आरम्भ कर दो। साथ ही कन्धों को भरपूर नीचे की तरफ दबाये रहने का भी प्रयत्न करते रहना चाहिये।

हाथ की उंगलियों व पैर की उंगलियों का व्यायाम।

चित्र की भाँति खड़े होकर दोनों हाथों की उंगलियों को आगे की तरफ परस्पर चिपटी हुई रख कर फैला दो। अब गहरा लम्बा श्वांस लेकर और कन्धों को यथा शक्ति नीचे की तरफ दबाते रहो। साथ ही उंगलियों को धीरे २ फैलाते जाओ एड़ियों को धीरे २ उठा कर समस्त शरीर का भार केवल पैर की उंगलियों पर ले आओ। कुछ समय इसी दशा में रह कर फिर धीरे २ श्वांस त्याग करते जाओ और धीरे २ पूर्ववत् दशा में आते जाओ।

पेट के मसल्स तयार करना।

चित्र के माफ़िक लकड़ी पकड़ कर इस प्रकार लटक जाओ कि तुम्हारे हाथ लटकते समय कोहनी पर से न मुड़े हो वरन् सीधे रहें। अब गहरा लम्बा श्वांस खींच कर समस्त शरीर को धीरे २ ऊपर की तरफ इतना खींच ले जाओ कि तुम्हारी नाक कम से कम लकड़ी से छूजाय। शक्ति अनुसार कुछ समय ठहर कर धीरे २ अपनी पूर्ववत् दशा में आ जाओ।

नोटः—व्यायाम की जितनी भी प्रणालियां लिखी हैं वह एक दो बार करके ही न छोड़ देना चाहिए वरन कुछ शरीर क्लान्त अनुभव होने पर बन्द कर देना चाहिए। इसके पश्चात् कुछ विश्राम कर स्नानादि से निवृत होकर फिर मानसिक कार्य करना चाहिए।

सैंडो डम्बल्स

Sandow Dumb-Bells

सैन्डो डम्बल सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें।

डम्बल्स में लोहे के दो डन्डों के बीच में पतले लचकदार तार लगे हुये होते हैं और उंगलियों व अंगूठों से पकड़ने के लिये उसमें खांचे इस प्रकार के पड़े हुये होते हैं कि व्यायाम करते समय अभ्यासी को उनके दबाने में किसी प्रकार की कठिनाई अनुभव न हो। Spring (तारों) की तादाद २ से लेकर ८ तक होती है जो अभ्यासी की शक्ति व इच्छानुसार अधिक व न्यून की जा सकती है। डम्बल व्यायाम करते समय अभ्यासी को निम्नांकित आवश्यक बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

(१) बार २ और जल्दी २ सांस न लेकर एकही गहरी और लम्बी श्वांस खींचों और जब तक एक क्रिया सम्पूर्ण न हो जावे तब तक श्वांस न निकालो।

(२) जब तक डम्बलों के ऊपर नीचे के दोनों डन्डे आपस में भली भाँति न मिल जायें अर्थात् तार बिलकुल मिल कर इकठे न हो जायें तब तक उन्हें बराबर दबाये चले जाना चाहिये।

(३) डबल व्यायाम करते समय यों तो संपूर्ण शरीर सख्त रखना ही चाहिये परन्तु मुख्य कर वह भाग कि जिससे व्यायाम

कर रहे हो इतना अधिक सख्त रहना चाहिये कि थरथराने लगे और दस पांच बार अभ्यास करने से अभ्यासी को पसीना तक आजाये।

(४) सैन्डो का कथन है कि व्यायाम कर चुकने के पश्चात् तुरन्त ही स्नान कर लेने से मसल्स बनने में सुविधा होती है। किन्तु जब तक हृदय की धड़कन और व्याकुलता शान्ति न हो जाये तब तक स्नान न करना चाहिये। स्नानागार ऐसा होना चाहिये कि जहां शीतल पवन सवेग प्रवेश न कर सके दूसरे स्नान के पश्चात् सूखे तोलिये से खूब शरीर को रगड़ कर इस प्रकार पोंछ लेना चाहिये। कि कोई अंग गीला न रह जाये।

सैन्डो डम्बल्स व्यायाम प्रणाली

व्यायाम नम्बर १

बाजू के नीचे के हिस्से को पूरी तोर पर सामने की तरफ फेरो और उपर के हिस्से [कन्धे और कोहनी के बीच का हिस्सा] को पूरे तोर पर दबाओ फिर डम्बलों को जोर से दबाते हुये दायें हाथ को धीरे २ कन्धे के पास लेजाकर मिलादो। बस इसी तरह बांये हाथ को भी कन्धे से मिलादो मगर यह ध्यान रहे कि जब बाया हाथ ऊपर की तरफ

जारहा हो तो उसी समय दांया हाथ नीचे की तरफ आना चाहिये। इस व्यायाम से Biceps and Triceps मसल्स बनते हैं।

व्यायाम नम्बर २

हाथों को नीचे की तरफ लटका कर इस तरह मोड़ो कि बाहर का हिस्सा भीतर को तरफ आजाय यानी कोहनी बाहर को तरफ दिखती रहें। फिर नम्बर पहली व्यायाम के ही तरह अन्य सब क्रियायें करनी चाहियें। इस व्यायाम से भी Biceps and Triceps मसल्स बनते हैं।

व्यायाम नम्बर ३
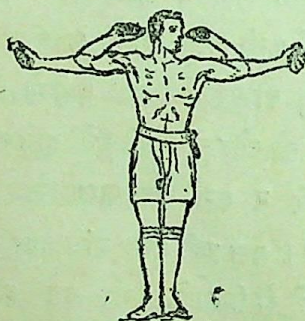
दोनों भुजाओं को कन्धों की सीध में फैलाओ और फिर यहां तक खींचो कि डम्बल बिलकुल कन्धों के ऊपर सीध में आजावें। फिर इसी तरह धीरे २ अपनी पहली ही जगह वापिस लेजाओ। गरदन दांये बांये फेरो कि भुजाओं की सीध में नाक आजावे। इस व्यायाम से Biceps, Triceps, Deltoid और गरदन के मसल्स बनते हैं।

व्यायाम नम्बर ४

अन्य सब क्रियायें व्यायाम नम्बर ३ के अनुसार ही करो पर हाथ वापिस लेजाते समय इस बात का ध्यान रहे कि कन्धों के नीचे की तरफ भरपूर जोर से लाते हुये हाथों को जहांतक हो सके लम्बा फैलाने की कोशिश करो। इस कसरत से कलाई चौड़ी होती है व बगल और कन्धे के पुट्ठे तैयार होते हैं।
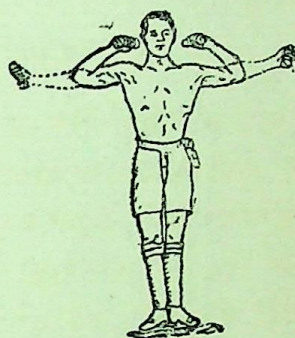
व्यायाम नम्बर

नम्बर क

चित्र नम्बर क

दोनों भुजाओं को सीधे सामने की तरफ फैलादो फिर मुट्ठी को बांध कर नम्बरवार एक के बाद दूसरे हाथ को धीरे २ कोहनी के पास से मोडते हुये मुट्ठी को छाती से मिलाओ और फिर लम्बा फैलादो। यह ध्यान रहे कि जब एक हाथ धीरे कडाई के साथ भीतर की तरफ आरहा हो तो उसी समय उसी क्रियानुसार दूसरा हाथ बाहर की तरफ चला जा रहा हो।
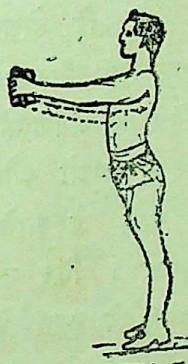
नम्बर ख

चित्र नम्बर ख
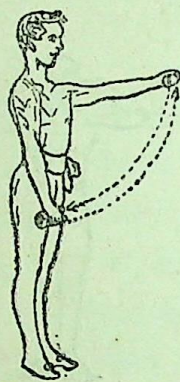
सीधे खड़े होकर भुजाओं को छाती की सीध में लम्बे फैलादो फिर एक हाथ की मुट्ठी बांध कर धीरे २ नीचे की तरफ लाकर जांघ से मिलादो। फिर ऊपर को ही अपनी पहिली जगह पर ले जाओ। मगर इसका ध्यान रहे कि जब एक हाथ नीचे को जारहा हो तो उसी समय दूसरा हाथ ऊपर की तरफ धीरे २ ही जाना चाहिये।

उक्त दोनों व्यायामों से Posterior Deltoid, Serratus Magnus, Rhomboideus and Trapezius मसल्स बनते हैं।

व्यायाम नम्बर ६

सीधे खड़े होकर हाथों को कन्धों की सीध में फैलादो। मुट्ठियों को जितना भी हो सके जोर से दबाओ और कन्धों के पीछे से आगे पीछे घुमाओ। फिर नम्बरवार मुट्ठियों को कलाई के पास
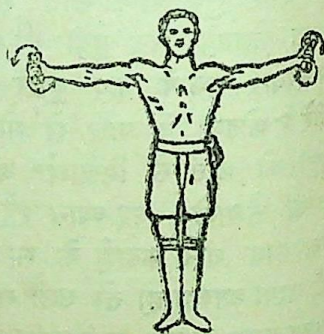
से डम्बलों का सरकिल [गोल घुमाव] बनाते हुये मोड़ो। कन्धों को नीचे की तरफ दबाओ, बाजू और कलाई का हिस्सा सख्त रखो इस व्यायाम से Pronators मसल्स बनते हैं।

व्यायाम नम्बर ७

सीधे खड़े होकर हाथों को कन्धों की सीध में फैलादो। डम्बलों को पूरी मुट्ठियों से न पकड़ कर केवल अंगूठे और उंगलियों से ही डम्बलों के एक सिरे को दबाने का प्रयत्न करो। तत्पश्चात् कलाई के पास गोल सरकिल बनाओ। इस व्यायाम से Supinators, Flexors and Extensors मसल्स बनते हैं।
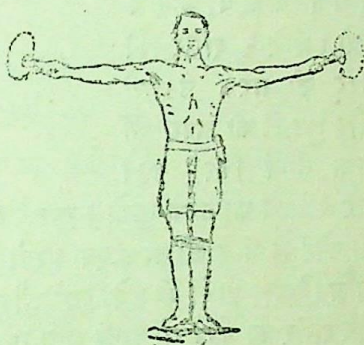
व्यायाम नम्बर ८

सीधे खड़े होकर आँखें सामने रखो। दोनों पैर बराबर रहें तथा दोनों हाथों की कोहनी व बाजू शरीर यानी पसलियों से चिपटी रहें। अब बांये पैर के पंजे पर खड़े होकर दांया पैर तीन पैर के फासले तक फैलाओ और साथ ही बांया हाथ भी सीधा सामने की तरफ फैलादो। कुछ सैकिंड ठहर कर अपने

पूर्ववत् स्थान पर पूर्ववत् दशा में ही वापिस आजाओ। फिर दूसरी बार दांये हाथ व दांयें पैर से भी यही क्रिया करो। इस कसरत से Serratus and Quadriceps मसलस बनते हैं।

व्यायाम नम्बर ९

पृथ्वी पर पुट लेटो भुजाओं को कन्धों के नीचे रखो। धीरे २ शरीर को ऊपर का तरफ उठाओ और घुटनों को ऊपर की तरफ तानों फिर बहुत धीरे २ नीचे की तरफ झुको। झुकते वक्त हथेलियों से जमीन को पूरी जोर से नीचे की तरफ दबाते रहो। इस समय केवल पैरों की उंगलियाँ और हाथों की हथेलियां और ऊंगलियां हीं पृथ्वी पर रहें और शरीर का कोई भी अन्य भाग न छूने पावे। इस कसरत से Serratus and Triceps मसलस बनते हैं।
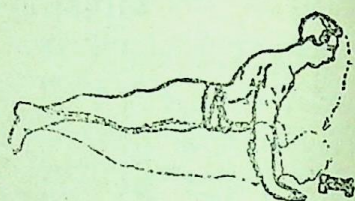
व्यायाम नम्बर १०
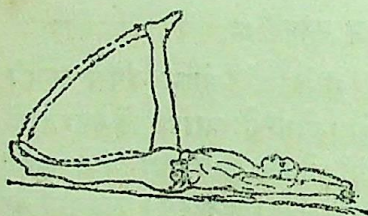
पृथ्वी पर चित्त लेटो और हाथों को सिर से मिलाते हुए सीधे फैलादो। दांयें पैर से समकोण बनाते हुये आकाश की तरफ ऊँचा उठाओ और फिर नीचे की तरफ लाओ। इसी प्रकार बायें पैर से भी यही क्रिया करो। इस व्यायाम से Abdominis and Biceps मसलस बनते हैं।

व्यायाम नम्बर ११

पृथ्वी पर चित्त लेटो भुजाओं को सिर से मिला कर सीधे फैलाओ। जांघें चूतड़ और पैर के पंजे की एड़ियां जमीन से चिपकी रख कर जमीन से धीरे २ सिर (केवल पीठ) को उठाओ मगर भुजायें सिर से मिली रहें आगे को धीरे २ झुकाते जाओ यहां तक कि डम्बल पैर की ऊंगलियों से थोड़े आगे को निकल जावें। इस समय पैर की पिडलियों पर जोर पड़ता है मगर पैर की ऊंगलियां आगे की तरफ ही झुकी रहें पिछाड़ी की तरफ न झुकनी चाहियें।
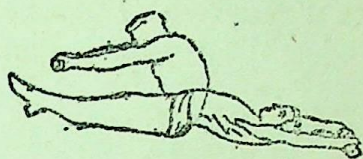
व्यायाम नम्बर १२

सीधे खड़े होओ, एड़ियाँ जुड़ी रक्खो, पंजे पृथ्वी पर रहें और एड़ियाँ ऊँची उठाओ और भुजाएँ शरीर से मिली रहें। धीरे २ नीचे की तरफ झुको, घुटने अलग करदो, शरीर बिलकुल सीधा रहे, एड़ियाँ पृथ्वी को न छूएं जब तक कि शरीर तक न झुक जाओ फिर धीरे २ उठो और

अपनी पहली दशा में आ जाओ। ध्यान रहे कि किसी भी दशा में एड़ियां जमीन से न लगने पावें। इस कसरत से Quadriceps of thigh, Gastrocnemius and Soleus मसल्स बनते हैं।

व्यायाम नम्बर १३

सीधे खड़े होकर हाथों को सीधे नीचे की तरफ लटका कर पैरों को एक फुट के फासले पर चौड़ाओ। एड़ियाँ पृथ्वी पर रक्खो। धीरे २ नीचे की तरफ इस प्रकार बैठ जाओ कि तुम्हारे दोनों हाथों की मुट्ठियाँ पैरों के टखने से मिल जायें। कुछ सैकिंड ठहर कर फिर धीरे २ उठ अपनी पूर्ववत् दशा में आजाओ। इस कसरत से Quadriceps, Biceps and Flexors of the thigh and Extensors of the foot. मसल्स बनते हैं।
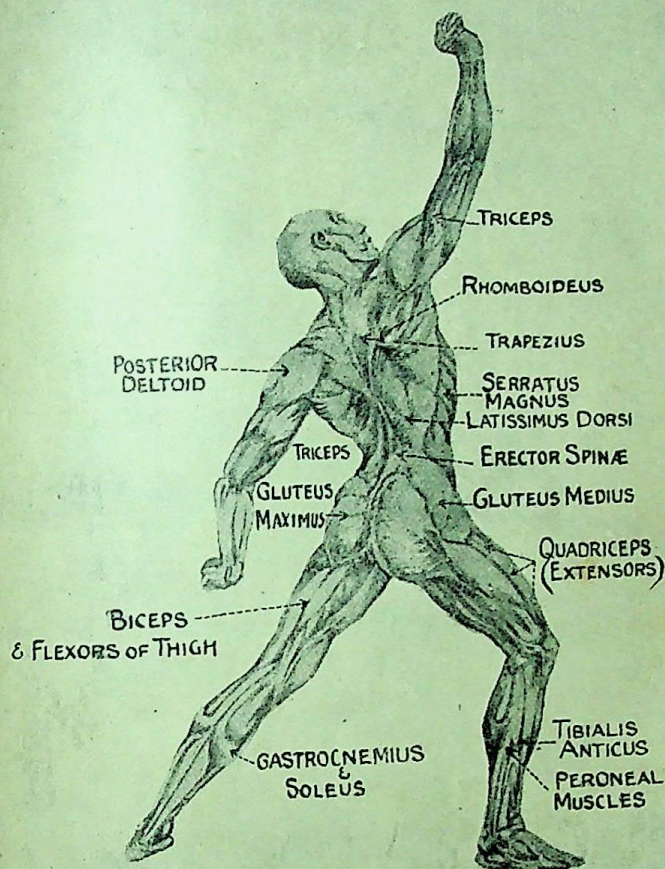
सैंडो डम्बल्स व्यायाम करने से चित्र प्रदर्शित मांस पेशियाँ सुगठित होकर सबल बनती हैं।
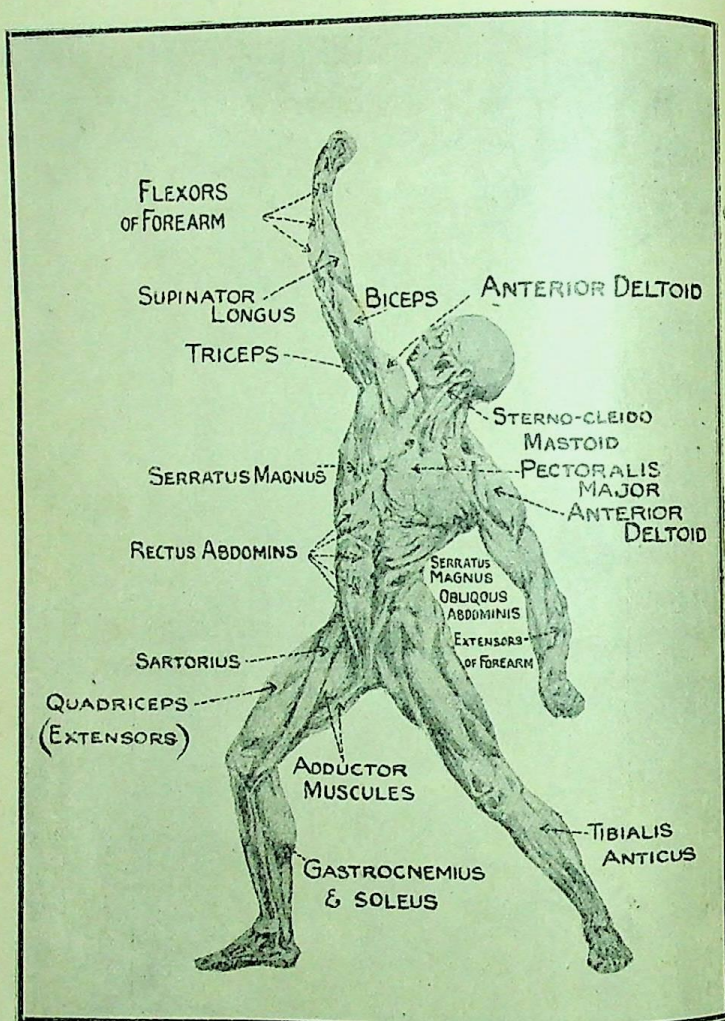
सैंडो डम्बल्स व्यायाम करने से चित्र प्रदर्शित मांस पैशियाँ सुगठित होकर सबल बनती हैं।

Parallel Bars. पैरेलिल बार्स।

Single March. सीधी चाल।

बार के बीच में खड़े होकर दोनों हाथों से बार के सिरे पकड़ो और आहिस्ता से उचक कर इस प्रकार खड़े हो जाओ कि शरीर अकड़ के साथ कुछ पीछे की तरफ झुका रहें, टाँगें जुड़ी हुई रहें और पंजे की उँगलियां नीचे की तरफ तनी रहें जैसा कि चित्र में दिखलाया गया है। अब आगे की तरफ एक हाथ उठाकर चलो। प्रथम दायां हाथ कुछ इंच आगे बढ़ाओ और फिर बाँया। यह चाल उस समय तक जारी रक्खो जब तक कि बार का अन्त न आजाय। जिस प्रकार अभ्यासी आगे की तरफ बढ़ सकता है उसी प्रकार उलटा पीछे की तरफ भी आ सकता है परन्तु शरीर की स्थिति न बिगड़ने पावे।

Double March. डबल मार्च

प्रथम Single Merch के अनुसार सब क्रियायें करो तथा स्थिति रक्खो। केवल अन्तर इतना ही है कि उसमें एक हाथ से चलना पड़ता है और इस में दोनों हाथों से एक दम उछलते हुए चलना पड़ता है। मगर ध्यान रहे कि चलते समय अन्त तक शारीरक स्थिति में अन्तर न आना चाहिये। इस में भी इसी प्रकार वापिस आने की क्रिया भी कर सकते हैं।
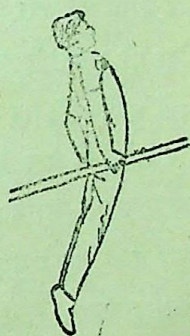
Pumping Marh. झूलना
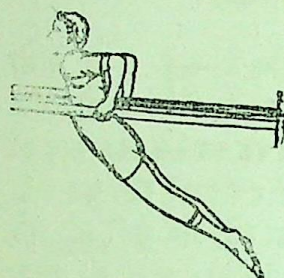
आगे पीछे की तरफ तेजी के साथ झूलो और झोक के अन्त में ठहर कर फिर पूर्ववत दशा में आजाओ। दूसरी क्रिया इसकी यह भी है कि बाजुओं को कोहनी पर से बहुत धीरे २ यहां तक मोड़ो कि छाती बार के बीच में आजाये फिर कुछ समय सामर्थ अनुसार ठहर कर इसी प्रकार धीरे २ ऊपर को उठ कर पूर्ववत दशा में आजाओ। तीसरे Single और Double March के अनुसार भी क्रिया कर सकते हो।

Ridng Sheet. घोड़े की सवारी

यह क्रिया बार पर झूलते समय आगे को तरफ झोक खत्म हो जाने पर टांगों को बार के ऊपर रखने से पैदा हो सकती है घुटने जहां तक हो सकें अन्दर की तरफ हों जिससे कि बार जांघों से भली प्रकार दब सके। शरीर सीधा अकड़ा हुआ रखो और दोनों हाथों से कमर पकड़ो जैसा कि चित्र दिखलाया गया है।

व्यायाम नम्बर ४ के अनुसार स्थिति बना कर जांघों से बार को भिड़ा कर और किंचित मात्र पीठ झुकाकर दोनों हाथों से बार को मजबूती से पकड़ो। टांगें व गर्दन सीधी रहनी चाहियें। अब सारे शरीर का बोझा धीरे २ हाथों पर देते हुये हाथों को कोहनी के पास से मोड़ते जाओ और शरीर का पिछाड़ी का हिस्सा ऊपर की तरफ उठाने की कोशिश करो।

Short Arm Balance.
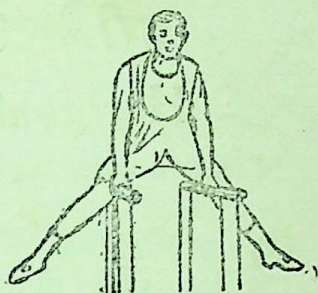
Bent Arm Balance.

अब टांगों को भली प्रकार आगे की ओर ले आओ जिस से कि जांघें हाथों के निकट हो जायें, साथही कमर को झुकाओ और धीरे २ सारे शरीर का बोझ हाथों पर रखदो, तब धड़ को उठाओ और जब धड़ उठता हो बाजुओं को झुका दो। कमरको यहां तक झुकाते रहो कि अन्त में धड़ सिर के ऊपर आजाय, तब धीरे २ पीठ में कब्ज देकर ट मिलाओ। घुटने पूर्णतः सीधे और कुहनियां शरीर से सर्वथा अलग रहें। इस व्यायाम में भी सिंगल मार्च और डबलन मार्चव्यायाम नम्बर १-२ के अनुसार हो सकती है
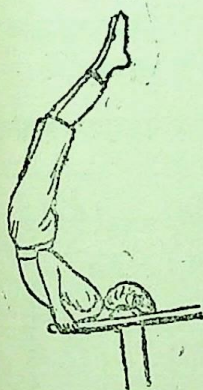
हरीजैन्टलबार ।

Horigental Bar

Position above the bar बार की पोजीशन।

मामूली लपक के साथ कूद कर बार को पकड़ो । दो तीन झोक खाकर चित्र के अनुसार पोजीशन [ढंग] बनाओ । टांगों को अगाड़ी की तरफ झोक दो । शरीर को जमीन की तरफ पिछाड़ी गिरने दो । अब तुम व्यायाम नं० २ के चित्र के अनुसार स्वयं बन जाओगे घुटनों को कुछ मोड़कर टाँगों को आगे की तरफ झोकदो। ऐसा करने से तुम फिर अपनी पूर्ववत् दशा में आजाओगे।

Both Hand Leadings. दोनों हाथों से पकड़कर झूलना।

बार को इस प्रकार पकड़ कर लटक जाओ कि अंगूठे उंगलियों के बराबर रहें और कलाई बार से चिपटी रहे अब अपने शरीर को धीरे २ ऊपर की तरफ इतना खींचो कि कम से कम बार छाती के नीचे के हिस्से आ लगे और फिर इसी प्रकार नीचे की तरफ धीरे २ उतरते हुये आजाओ।

Circle under the bar. बार के नीचे का घेरा।

लपक कर बार को मजबूती से पकड़ लो परन्तु साथ ही पैरों के तलवों को भी बार से चिपका दो। हाथ बिलकुल सीधे रहें। घुटनों को जितना भी हो सके छाती की तरफ खींचो ताकि पैर बार के नीचे होकर आसानी से निकल सकें। पैरों के तलवे बार से चिपकाते ही बार को अपनी तरफ खींचो और तुरन्त ही झोंक के साथ बदन को फेंको।

Circle above the bar. बार के ऊपर का घेरा।
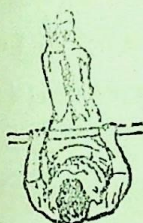
बार दोनों हाथों से पकड़ कर लटक जाओ; फिर झोंक खाकर जांघों को बार से लगादो और साथ ही हाथों को इतना खींचो कि पेट के नीचे का हिस्सा बार से आ लगे फिर टांगों को सिर की तरफ झुकादो ताकि पलटा खाने में सुगमता हो।

Right Hand Leading. सीधे हाथ से झूलना।

व्यायाम नं० ४ के अनुसार बार को पकड़ कर लटक जाओ। अब शरीर को बायें हाथ की तरफ मोड़ो ताकि बायें हाथ की कोहनी बार के ऊपर निकल जाये और शरीर का भार अधिक तर सीधे हाथ पर आजाय। तत्पश्चात् नीचे की तरफ धीरे २ आकर सीधे हो जाओ मगर पैर जमीन से न लगने चाहियें अब यही क्रिया हाथ से करो।

Sit Swing off. फुदककर बैठना

बार पकड़ कर लटक जाओ और बायें पैर को हिलाकर बार के ऊपर रखो और फिर सीधा पैर भी। अब इस प्रकार बैठ जाओ कि दोनों हाथ जांघों के बीच में बार पकड़ते हुए हों और बार घुटनों के नीचे हो। अब पैरों को घुटनों पर से कुछ मोड़ो और तुम पिछाड़ी की तरफ गिरो। साथ ही झोक खाकर फिर अपनी पूर्ववत् दशा में आकर बार पर बैठने का प्रयत्न करो।

Screw right-hand leading.

मोड़ पूर्वक सीधे हाथ से झूलना।
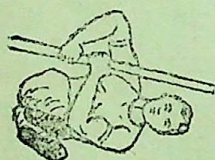
मामूली पकड़ के साथ बार को पकड़ कर लटको बदन को ऊपर की तरफ खींचो। सीधे हाथ को पलट कर बार के अपोजिट (दूसरी तरफ) लाओ यानी बायें हाथ के सामने की तरफ अब सीधे हाथ की कोहनी को ऊपर लाओ और बायें हाथ पर ज़ोर दो। इसी प्रकार फिर बायें हाथ को ऊपर की तरफ और सीधे हाथ को नीचे की तरफ लाओ।

Short Circle. छोटा घेर

दोनों हाथों से मजबूती से बार पकड़ लो और टांगों को जितनी भी दूरी पर पिछाड़ी को फैंक सको झोक के साथ फैंकदो और फिर ज्यों ही टांगें नीचे की तरफ आवें उन्हें बार के भीतर की तरफ जाने दो और तुरन्त ही तुम अपने बाजुओं को मजबूत रख कर सिर को पीछे की तरफ फैंको। यदि तुम्हारी फैंक काफ़ी होगई तो तुम इस तरह से पूरा घेरा बना कर अपनी प्रथम हालत पर और स्थान पर लौट कर आ सकते हो।

Obstacle vault to the Right.

सीधे हाथ की रोक
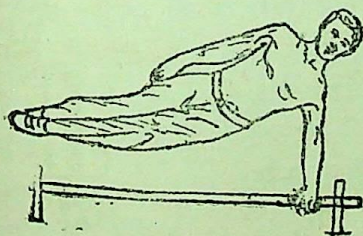
बार को इस प्रकार पकड़ो कि अंगूठे बार के ऊपर हों। टाँगों को आगे पीछे की तरफ इस जोर से झोक दो कि जिससे तुम उठ जाओ यानी व्यायाम नं० ३ के

अनुसार स्वयं ही तुम्हारी स्थिति हो जाय। अब फिर अपनी टांगों को बार के नीचे सामने की तरफ फैंको और दांया घेरा बार पर बनाओ। जब अच्छी तरह घेरा ऊपर की तरफ फैंकदो तब फौरन ही दांयें हाथ को बार से उठालो। अब कुल शरीर का बोझ बायें हाथ पर होना चाहिए। ध्यान रहे कि यह व्यायाम कठिन है मगर अभ्यास से सब कुछ हो सकता है।

Short Arm Balance. मुड़े हाथों का घेरा।

प्रथम व्यायाम नं० ४ के अनुसार बार पर खड़े होओ। पैरों को झोंक देकर सिर के ऊपर फैंको। झोंक इस अन्दाज कर दो कि बीच में ही बैलेन्स होजाय न कि तुम उलट कर आगे की तरफ गिर जाओ। सिर बिलकुल सीधा और हाथ पैर मजबूत रहें और छाती बार से दो तीन इंच उंची रहनी चाहिये। शक्ति अनुसार ठहर कर फिर नीचे की तरफ आजाओ।

Attention drop बड़ा घेरा।

बार के ऊपर Back circle अर्थात् पीठ की ओर से घेरा बना कर बैठो और हाथों से बार को मजबूत पकड़ कर शरीर को पीछे की ओर गिराओ और पैरों को उसी समय ऊपर की ओर उठने से रोक क्योंकि शरीर का बोझा पैरों की अपेक्षा अधिक भारी है। पैरों को फौरन ऊपर खींच लेगा और तुम पृथ्वी पर होगे।

The back hand Grind. उलटा चक्कर।

बार के ऊपर Back circle अर्थात् पीठ को ओर से घेरा बना कर उठो और जब ऊँचे उठ जावो तो अपनी पकड़ को उलट दो और पैरों को अच्छी प्रकार से आगे की ओर फैंक दो और ज़ोर दो कि तुम्हारी एड़ियां खिच कर बार के नीचे की ओर पहुंच कर कमर की सीध में आजावें। यदि पूर्ण झोंक होगई है तो तुम पीठ को ओर से घेरा बना जावोगे और फिर पहली पोजीशन पर आजाओगे।

Grand circle बड़ा घेरा।

बार पर upstart करते हुए उठो और ऊपर को Long arm circle व्यायाम कर के फैंको, बाजुओं को पूरे तोर से सख्त रखो, कमर को मोड़ो जैसा कि चित्र में दिखाया है फिर शरीर को बार के नीचे भीतर को फैंको यहाँ तक कि वह बार की सीध में आजावे या कुल बार से दूसरी ओर को ऊंचा रहे फिर तुम को सिर और सीने से उठना चाहिये और तुरन्त ही हाथों को बार के ऊपर पहली हालत में बदल देना चाहिये। यही फेरा कई बार दुहराया जा सकता है।
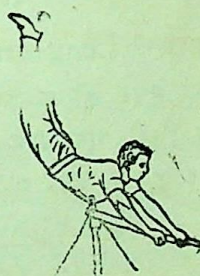
Foot & Hand Grind हाथ पैर का चक्कर।

ऊपर की तरफ उठते हुये दोनों पैरों को बार के ऊपर हाथों के बाहर की ओर ले जाओ और भुजाओं को सीधा रखो जैसा कि तसवीर में दिखलाया गया है। फुरती के साथ पीछे की ओर घूमो और तुरन्त ही टाँगों को सीधा करलो और जब कि बार के दूसरी ओर पहुँचो फौरन टाँगों को मोड़ लो और बार पर बैठ जाओ। यदि तुम ठीक घेरा न बना सको तो यह बहुत आसान है कि हाथों को छोड़ दो और एक बारगी आगे को कूद जाओ। यह व्यायाम टांगों को भुजाओं के बीच में रख कर भी किया जा सकता है।

Long Arm Balance, पूरे हाथों का घेरा।

ऊपर की व्यायाम के अनुसार शुरू करो और एक लम्बी उड़ान लो जिससे पेट बार के ऊपर आकर तुम्हें बाजुओं की लम्बाई के बराबर ऊँचा उठा ले जाये जैसा कि तसवीर में देखते हो। सिर को ऊपर की ओर अच्छी प्रकार से रखो। यदि तुम्हारे पैर बहुत दूर ऊंचे चले जावें तो फौरन ही अपने सिर को पलट लो और बांयें कन्धे की ओर देखने लगो और दांई ओर को उचक जाओ। इस हालत में हाथ मजबूत रखने चाहियें।

मुगदर व्यायाम

मगदर व्यायाम मांस पेशियों को सुदृढ़, सुन्दर और सुडोल बनाने के लिये एक सरल व उत्तम व्यायाम है। प्रथम एक ही मुगदर से दांयें बांये दोनों हाथों से व्यायाम का अभ्यास करना चाहिये और जब इस में पूर्ण अभ्यास प्राप्त होजाय तो फिर दोनों हाथों से मुगदर व्यायाम करना चाहिये। अब रहा मुगदर के वजन के विषय में सो अभ्यासी के शारीरिक शक्ति पर निर्भर है और ज्यों २ अभ्यास बढ़ता जाय त्यों २ वजन भी बढ़ाते जाना चाहिये।
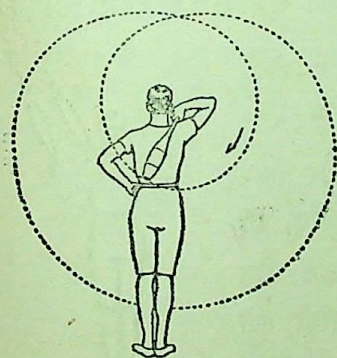
चित्र के अनुसार स्थिति में खड़े होकर लम्बा गहरा श्वांस खींचो। पीठ की तरफ छोटी सी गोलाई बनाते हुए फिर आगे की तरफ हाथ व मुगदर लाकर बड़ा घेरा बनाइये जैसा कि चित्र में दनदानेदार लाइनों द्वारा बतलाया गया है। यही क्रिया दूसरे हाथ से भी की जा सकती है।

चित्र के अनुसार स्थिति में खड़े होकर भरपूर श्वांस खींचो और दाईं तरफ से छोटा घेरा बनाओ फिर आगे की तरफ लाते हुये बड़ा घेरा दांई तरफ से बाईं तरफ तक बनाओ। यही क्रिया दूसरे हाथ से भी की जा सकती है।
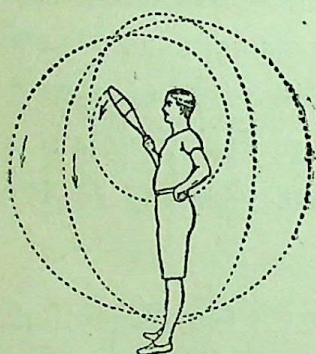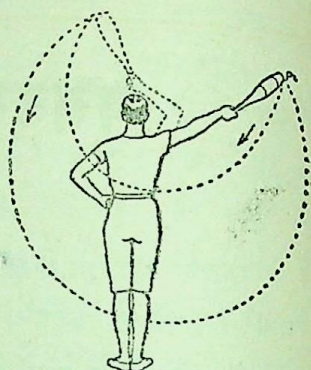
चित्र के अनुसार स्थिति में खड़े होकर एक छोटा घेरा बनाते हुये फिर उस से कुछ बड़ा और फिर उसी दशा में रुकते हुये और तीसरा बड़ा घेरा बनाना चाहिये। ध्यान रहे कि शारीरिक स्थिति में कुछ फर्क न आना चाहिये वरन् चित्र के माफ़िक ही रहना चाहिये।

चित्र की भाँति खड़े होकर दोनों मुगदरों को प्रथम बाईं तरफ अगाड़ी और ऊपरकी तरफ थोड़ा २ उठाइये और फिर इसी भांति दांई तरफ। यही क्रिया पैरों की तरफ भी दायें बायें की जा सकती है। पीठ के पिछाड़ी और पेट के अगाड़ी की तरफ भी की जासकती है।
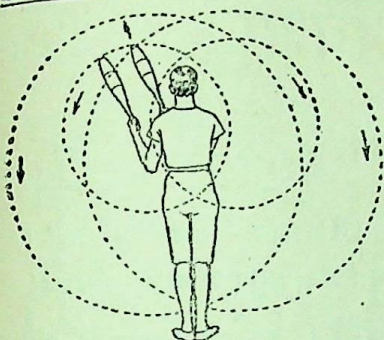
बाएँ हाथ से छोटा घेरा बनायें और दाहिने हाथ से बड़ा घेरा बनाइये फिर दाहिने हाथ से छोटा और बांए हाथ से बड़ा घेरा बनाइये। जैसा कि चित्र में दिखलाया गया है।

बांए हाथ को बाईं तरफ से पीठ की ओर से लाते हुये दाहिनी ओर को निश्चित स्थान तक लाइये। फिर दाहिने ओर से पैरों की तरफ लाते हुये बाईं तरफ उसी स्थान तक ले जाइये। इसी प्रकार दाहिने हाथ को बांई तरफ लाकर पैरों की तरफ लाते हुये उसी स्थान तक ले जाइये।
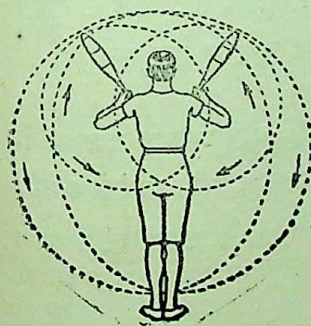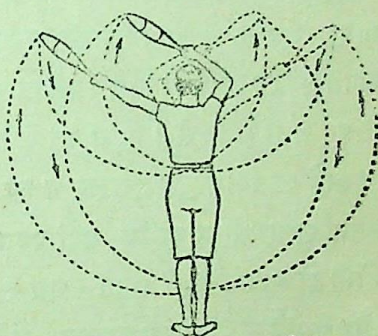
चित्र के अनुसार खड़े होकर दोनों हाथ से पीठ की तरफ लाते हुये एक छोटा घेरा बनाइये। फिर आगे की ओर बड़ा घेरा बनाइये। इसी प्रकार दाहिने हाथ से पीठ की तरफ छोटा घेरा बनाते हुये बड़ा घेरा बनाइये।

मल्ल विद्या।

Wrestling. कुश्ती

जगद्गुरु भारत के लिये कुश्ती कोई नवीन विषय नहीं। जामवन्त, जरासंघ, भीमसेन, हनुमान आदि बीरवरों की कथाओं से कौन परिचित नहीं है। आधुनिक काल में भी गामा, गुलाम, राममूर्ति आदि पहलवानों ने सारे भूमण्डल में अपने वीरत्व कार्यों की विजय पताका फहरा रखी है। कुश्ती लड़ने के पूर्व भली भाँति तेल मर्दन कर लेने से दुगना लाभ होता है। अखाड़े का स्थान शुद्ध हवादार व प्रकाशमय होना चाहिये और इतना खुला भी न हो कि जहां पवन अति वेग पूर्वक प्रवाहित होती हो कारण कुश्ती लड़ते समय शरीर स्वेदपूर्ण हो जाता है और पसीने में शीतल पवन लगने से निमोनिया खाँसी, जुकाम आदि हो जाने का भय रहता है। अखाड़ा काफी लम्बा चौड़ा हो और तेल में भीगी हुई व चलनी से छनी हुई कंकड आदि से रहित चिकनी मिट्टी बिछी होनी चाहिए ताकि चोट न लग सके।

यों तो सभी व्यायाम स्वास्थ्यप्रद हैं परन्तु मल्ल विद्या यानी कुश्ती के बराबर नहीं कारण इस से जितने जल्दी शारीरिक अंग तैयार होकर अस्थियों में दृढ़ता उत्पन्न होती है उतनी शीघ्र अन्य व्यायामों से नहीं हो सकती है।
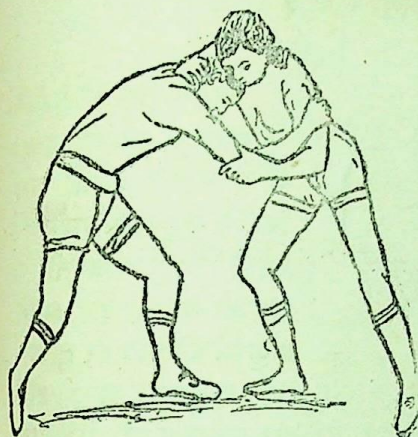
कुश्ती नं० १

सलामी यानी हाथ मिलाते ही तुम सामने वाले को जोर का झटका दे अपनी तरफ खींचो एक हाथ गर्दन में गेर दो और दूसरे हाथ से बाजू पकड़ कर अपनी तरफ खींचने का प्रयत्न करो। साथ ही टांगपर टांग इस जोर से मारो कि सामने वाले की टांग ज़मीन से अधर हो जाय तत्पश्चात् छाती पर सिर टेककर चित्त करदो।

कुश्ती नं० २

सलामी करते ही सामने वाले को इस जोर का झटका दो मानों उसे मुँह के बल जमीन पर पटकना है। उसके झुकते ही तुरन्त पीठ पकड़ लो। ऐसा करने पर वह भी तुम्हारे पैर पकड़ लेगा। तुम्हें भी उचित है कि उसे एक दम उठाकर पलट देने का प्रयत्न करो। पैर उठते ही उसका सिर जमीन पर टिक जायगा। इतना होने पर भी यदि वह हाथ न छोडे तो फिर उसे दबाते हुए जमीन पर बैठ जाओ ऐसा करने पर वह चित्त हो जायगा।

कुश्ती नं० ३
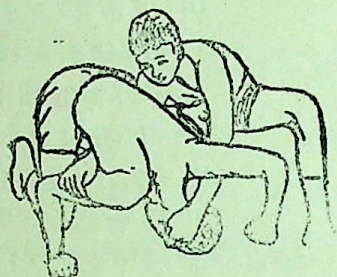
सामने वाले को गिराने के बाद तुम उसकी बगल में से अपने दोनों हाथ निकाल कर उसकी गर्दन की खोपी बड़ी मजबूती से भर लो अन्यथा वह अपने बाजुओं को दबा कर तुम्हारे हाथ छुड़ा देगा या खड़ा हो जायगा तत्पश्चात तुम अपनी टांग उसके जमीन पर टिके हुये हाथ पर मार कर हटा दो और साथ ही पलट दो या गेर देने के पश्चात् तुम्हें चाहिये कि अपना एक हाथ उसके एक हाथ के नीचे से निकाल कर गर्दन दबाओ और दूसरा हाथ उसके पेट के नीचे से निकाल कर उसके हाथ को पकड़ कर अपनी तरफ़ खींच कर पलट दो।

कुश्ती नं० ४
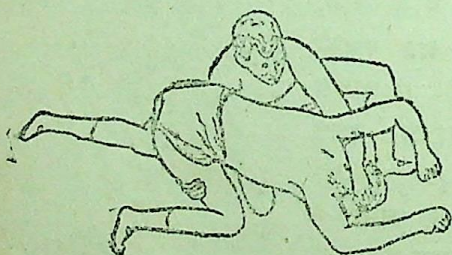
गिर जाने के पश्चात् कुश्ती नं० ३ के अनुसार ही हाथ से गर्दन दबाओ और जांघ पर थपक मारो ऐसा करने से वह घबड़ा कर टांग को ढीला करके किंचित मात्र भीतर की तरफ झुकेगा। उधर तुम भी थपक के साथ ही जांघ को जितना भी शीघ्र और अधिक खींच सको

उसके पेट की तरफ खींच लो अन्यथा वह छुड़ा कर फिर वापस फेला देगा, इतनी सफलता प्राप्त होने पर तुम उसे पलट सकते हो।

कुश्ती नं० ५
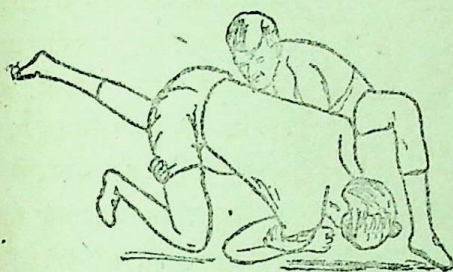
गर्दन के नीचे से हाथ आहिस्ता निकाल कर उसका हाथ पकड़ो और दूसरा हाथ पेट के नीचे और जांघों के बीच में से निकाल कर उसी तरफ की जांघ पकड़ो कि जिस तरफ का हाथ पकड़ रखा हो। ऐसा होने पर फिर तुम उसे अपनी तरफ खींच कर सरलता पूर्वक पलट सकते हो।

कुश्ती नं० ६

हाथ मिलाते ही झटका देकर उसकी बगल में इस प्रकार घुस जाओ कि उसका हाथ तुम्हारी पीठ पर होकर तुम्हारी बगल में आजाये, साथ ही दूसरा हाथ उसकी जांघों के बीच में गेर कर जांघ पकड़ कर भीतर की तरफ खींच लो। ऐसा करने से तुम्हारा प्रतिस्पर्धी जमीन से अधर व कुदशा में हो जाने से बेवश हो जायगा और तुम्हें उसे जमीन पर गेर कर चित्त करने में सुगमता होगी।

कुश्ती नं० ७
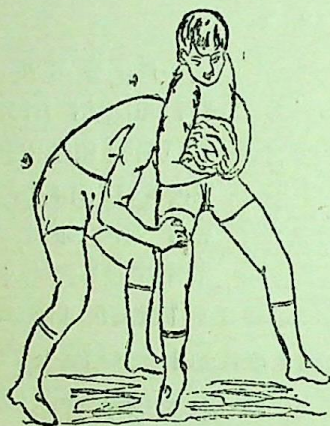
भिड़ते ही पैंतरा बदल सामने वाले की गर्दन बगल में पकड़ कर कुछ नीचे की तरफ झुकाओ। ऐसा करने से उसकी टांगें कमजोर पड़ जायेंगी तत्पश्चात् टांग की चपेट से उसकी टांग आगे की तरफ खींचते हुये पिछाड़ी को धक्का देकर चित्त करदो।

कुश्ती नं० ८

यदि तुम कभी इस प्रकार की पकड़ में फँस जाओ तो तुम्हें उचित है कि तुम नीचे की तरफ झुककर अपनी टांगों के बीच में से हाथ पिछाड़ी की तरफ निकाल कर अपने प्रतिस्पर्धी की दोनों टांगें पकड़ कर बाहर की तरफ खींचलो ऐसा करने से वह अवश्य भूमिस्थ होजायेगा। तत्पश्चात् समयानुकूल कार्य करना चाहिये।
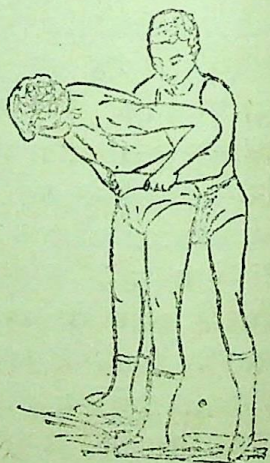
कुश्ती नं० ६
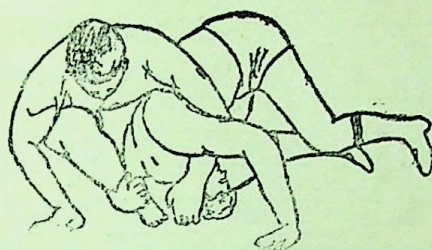
परस्पर लड़ते २ यदि तुम्हारा प्रतिस्पर्धी नीचे गिर जावे और तुम उसके ऊपर हो तो उस समय तुम्हें उचित है कि तुम व्यायाम नम्बर ४ के अनुसार बगल में से हाथ निकाल कर अपने प्रतिस्पर्धी की गर्दन दबाओ। एक घुटना उसकी पसलियों से अड़ा दो ताकि वह इधर उधर न सरक सके। ऐसी स्थिति होने पर सम्भव है कि वह तुम्हारा पैर पकड़ ले जैसा कि चित्र में देखते हो। अब तुम्हें भरपूर बल लगाकर उसे एक दम पलट देने का प्रयत्न करना चाहिये। इसमें जितनी शीघ्रता कर लोगे उतनी ही सफलता प्राप्त होगी।

नोटः—इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी कुश्तियां होती हैं परन्तु मुख्य कर यही हैं। अन्य कुश्तियां भी इन्हीं के आधार पर बनाई गई हैं। यह विचार कर कि पाठकगण कहीं भ्रम में न पड़ जायें यहां पर कुश्तियों के नाम नहीं लिखे गये हैं क्योंकि अलग २ देशों में एक ही कुश्ती के प्रथक २ नाम बोले जाते हैं।

लाठी व्यायाम
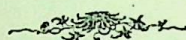
लाठी सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें।

लाठी चलाने का अभ्यास खुले मैदान में संध्या और प्रातः काल शान्ति चित्त हो एकाग्रता पूर्वक करना चाहिये। लाठी घुमाते समय हाथ की मुट्ठी या कलाई ढीली रह जाने पर लकड़ी कहीं की कहीं पर गिर जाती है। सिर पर भारी साफा खींच कर बंधा हुआ और शरीर के कपड़े चुस्त रहने चाहियें। लाठी कान तक लम्बी होनी चाहिये और हलकी भारी का होना अभ्यासी की शारीरिक शक्ति पर निर्भर है।

घोंच वार

चित्र के अनुसार स्थिति होने पर बड़ी शीघ्रता के साथ १ पैर नीचे को झोक खाते हुये आगे बढ़ कर अपने विपक्षी पर घोंच वार करो यानी लकड़ी की नोंक उसके शरीर में घुसेड़ दो या लकडी की नोंक से ठेल कर पिछाड़ी एक दम हटा दो और समय पाकर अपनी स्थिति सुधार लो। हां चित्र २ व ४ की स्थिति अनुसार तुम्हारा शत्रु अपनी रक्षा कर सकता है।

लकड़ी पकड़

परस्पर लठ्ठबाजी या लड़ाई होने की संभावना होते ही जमीन पर पड़ी हुई लकड़ी को चित्र के माफिक स्थिति बना कर उठाना चाहिये क्योंकि ऐसे मौके पर फिर इतना अवकाश नहीं मिलेगा कि तुम अपनी स्थिति वार रोकने या करने लायक बना सको। इस प्रकार से लकड़ी उठाने से तुम सीधे उठते ही तुरन्त वार रोक भी सकते हो और दूसरों पर अपना वार कर भी सकते हो।
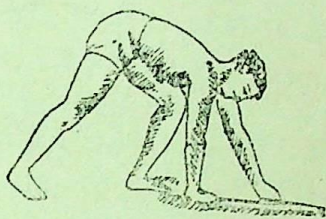
कनपटी रोक

जब तुमको इस बात का अनुभव हो जाय कि हमारा विपक्षी हमारी कनपटी या गर्दन पर लकड़ी मारना चाहता है तो उस समय तुमको तुरन्त चित्र की स्थिति में आ जाना चाहिये और प्रथम उसके वार को रोक लेना चाहिये। अब समयानुसार और आवश्यकता पड़ने पर हाथ पलट कर फिर समयानुसार अपने विपक्षी पर वार करना चाहिये।

सन्मुखी रोक

जब तुम्हारा विपक्षी तुम पर सामने से वार करने आ रहा हो तो तुरन्त चित्र की स्थिति में आ जाओ। लकड़ी इस प्रकार पकड़नी चाहिये कि उसका ऊपरी सिरा तुम्हारे सिर से कुछ ऊंचा रहे और बाकी का हिस्सा घुटनों तक। इस प्रकार की पकड़ तुम्हारी सिर से पैर तक रक्षा कर सकती है परन्तु लकड़ी ऊपर नीचे समयानुसार फिराने में बेहद शीघ्रता और अभ्यास होना चाहिये।
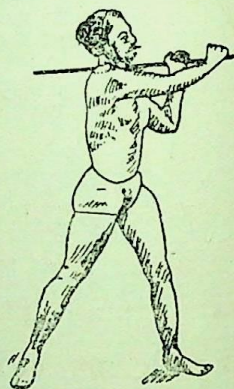
दुतरफा रोक व मार।

पहिले जिधर को तुम मुंह किये खड़े हो उधर ही दोनों तरफ यानी दायें बायें हाथ निकालो। फिर बिना पैर उठाये एड़ी पंजों के बल दूसरी तरफ घूम कर उलटे हाथ दोनों तरफ से निकालो

और फिर घूम जाओ। अभ्यास हो जाने पर दोनों तरफ मार भी हो सकती है और बचाव भी। अभ्यास और फुर्ती की आवश्यकता है।

अगली बगली रोक
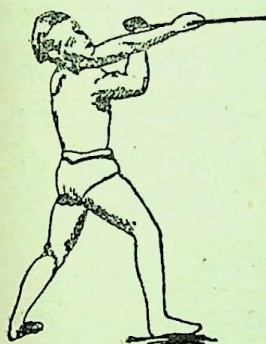
चित्र के अनुसार स्थिति बनाओ और लकड़ी को इस प्रकार पकड़ो कि सीधा हाथ ऊपर की तरफ और बायां हाथ नीचे की तरफ रहे।

फिर इस के विपरीत क्रिया करो यानी बायां हाथ ऊपर और सीधा नीचे रहे। जैसा कि चित्रों में दिखलाया गया है। लकड़ी को दायें बायें पलट सकते हैं। इसका शीघ्रता पूर्वक हाथ चलाने का पूर्ण अभ्यास हो जाने पर अगली बगली चोटों के सिवाय सिर से पैर तक की रक्षा हो सकती है व बचाई जासकती है।

टांग रोक

चित्र के अनुसार स्थिति बना कर समयानुसार दायें बायें और ऊपर नीचे हाथों को अलटते पलटते रहो। लकड़ी काफ़ी लम्बी रहनी चाहिये ताकि जमीन से छूती हुई रहे और टांगों व जांघों पर आने वाली चोटों को रोकती रहे और इसी प्रकार सिर की भी रक्षा हो सकती है।

सिर रोक

यदि तुम्हारा शत्रु एक दम सामने से आप के सिर पर लकड़ी चलाता आरहा हो तो तुम्हें उचित है कि चित्र के अनुसार स्थिति बना कर उसके वार को अपनी लकड़ी पर रोक लो और फिर यदि तुम उस पर वार करना चाहो तो तुरन्त ही शीघ्रता के साथ एक पैर पीछे हट कर और लकड़ी को सिर पर से घुमाते हुये उसकी कनपटी पर वार करो।

योगासन
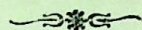
'योगशिचत्त वृत्ति निरोधः' अर्थात् चित्त की वृत्तियों को चलायमान न होने देने का नाम योग है। योग आसनों के करने से शरीर के मुख्य २ अंगों की शुद्धी होती है और जब आन्तरिक शुद्धी होने लगती है तो आत्मा को शान्ति मिलती है।

योगासन व्यायाम में प्रायः शरीर के सभी स्नायु खिच जाते हैं और वे छोटी बड़ी नालियां और स्नायु जो शरीर भर में व्याप्त हैं उनका रक्त प्रवाह कम हो जाता है और खिचाव के समय तक वह कम ही रहता है इसके पश्चात् पूर्ववत स्नायु का खिचाव छोड़ देने पर जोर से उन स्नायुओं और नालियों में रक्त प्रवाह हो उठता है। सवेग रक्त प्रवाह के कारण सब नालियों वा स्नायुओं के मल धुल कर साफ होने के अतिरिक्त सर्वत्र समान शुद्ध रक्त का संचार हो उठता है। ऐसा होने से जो शारीरिक अवयव निस्तेज, निर्बल और बेकार हो जाते हैं वह सजीव हो उठते हैं। अब हम अगले पृष्ठों पर आसनों का उल्लेख कर रहे हैं।
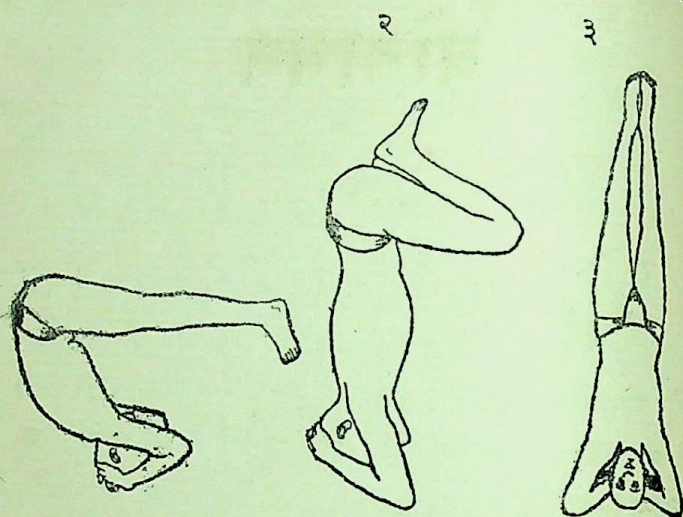
शीर्षासन ।

आसन व्यायाम करते समय नीचे मुलायम कम्बल या कोई गद्दा बिछा लेना चाहिये ताकि मस्तिष्क को किसी भी प्रकार से ठेस न लगे। पहिले घुटने टेक कर आसन पर बैठ जाइये फिर दोनों हाथों की अंगुलियाँ आपस में फसा कर उन्हें कोहनियों तक अपने सामने जमीन में अच्छी तरह जमाकर रखिये किन्तु ध्यान रहे यह हाथ केवल शरीर का तोल सम्भालने के लिये रखे जाते हैं न कि इन पर शरीर का भार रखा जाय। अब सिर को दोनों हाथों के बीच तालू के बल अच्छी तरह जमा कर पैरों को तान देना चाहिये। फिर शरीर का बोझा सिर पर छोड़ते हुये

पैरों को शरीर की ओर खिसकाये ताकि शरीर का भार सिर पर पड़ता जाय और पैरों को धीरे २ बिल्कुल सीधा करते जाइये। पूर्ण अभ्यास हो जाने पर हाथ हटाये जा सकते हैं। पैर फैलाये जा सकते हैं तथा घुटनों पर मोड़े जा सकते हैं इत्यादि क्रियायें की जा सकती हैं। शीर्षासन से बुद्धि तीव्र, स्मरण शक्ति और जठराग्नि तीव्र होती है। स्वप्न दोष, बाल सफेद होने और अजीर्ण आदि शिकायतों को दूर करता है।

सर्वाङ्गासन।
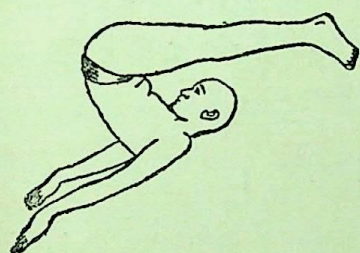
शरीर को ढीला रखते हुये चित्त लेट जाइये और हाथों को जमीन पर इस तरह फैलादें कि हथेलियाँ जमीन से चिपकी रहें। प्रथम पैरों को सीधे ऊपर की तरफ उठाइये किन्तु आपस में मिले रहें फिर शरीर इस प्रकार उठाइये कि पैरों के पंजे सिर पर होकर जमीन में छू जायँ किन्तु पैर घुटनों पर मुड़ने न पावे। जहाँ तक हो सके हाथ जमीन से ही लगे रहें। इस आसन के करने से अजीर्ण, तिल्ली, कानों में भन २ होना, सिर दर्द, मेद रोग, कृमि दोष आदि प्राय: दूर होते देखे गये हैं।

ऊर्ध्व सर्वाङ्गासन ।
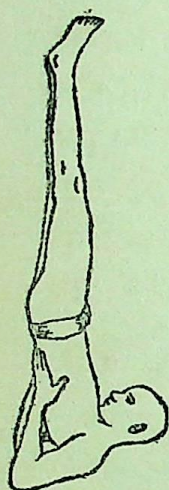
प्रथम स्थिति सर्वाङ्गासन के ही माफिक बनाओ। फिर पैरों को सीधा ऊपर की तरफ उठाओ, और समस्त शरीर को जमीन से उठा कर केवल कंधा और हाथों ही पर साधना होता है। यदि चाहो तो हाथ कोहनियों पर से मोड़ कर ऊपर को सहारा दे सकते हो। इसे विपरीतासन कहते हैं।

इस आसन के करने से रक्त शुद्ध होता है, उदर रोग दूर होते हैं और आंतों के रोग आदि को लाभ पहुँचता है।

वृश्चिकासन ।

आसन पर बैठ कर समान्तर में दोनों हाथ कोहनियों तक जमीन पर जमा दीजिये। पंजे खुले रहें। इस के पश्चात् धीरे से पैरों को ऊपर उठा कर घुटनों को मोड़ते हुये लेजा कर सिर के ऊपर जमा दीजिये किन्तु सिर बिलकुल तना रहे।

यह आसन आंतों को शुद्ध करता है और शारीरिक शक्ति वर्धक है। आमवात, अजीर्ण आदि रोगों को लाभ पहुंचाता है।

द्विपाद शिरासन ।

आलती पालती मारकर बैठ जाइये, फिर एक पैर निकाल कर दोनों हाथों से पकड़ कर गर्दन पर रखो और फिर दूसरा भी निकाल कर इसी प्रकार रखो। शरीर का समस्त भाग केवल चूतड़ों पर होगा।

इस आसन से पांव, कंधा और गर्दन की स्नायुओं में दृढ़ता होती है।

चक्रासन ।

लेट जाने के पश्चात् हाथों और पावों के पंजे जमीन पर पूर्ण रूप से जमा कर कमर से सारा शरीर इस प्रकार से उठाइये कि कमान की शक्ल बन जाये और फिर धीरे २ हाथ व पाँवों को भीतर की तरफ सरकाते जाइये और इतना सरकाइये कि दोनों आपस में मिल जायें।
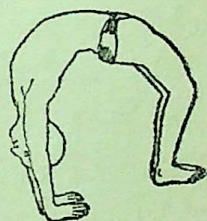
इस आसन से वृद्धावस्था में पीठ में झुकाव नहीं आता। दमे रोग, पांडु रोग और कृमिरोग आदि में लाभदायक है।

गरुड़ासन ।

सीधे खड़े होकर बांये पैर में दाहिना पैर चित्र के माफ़िक़ लपेटिये किन्तु घुटने एक दूसरे के ऊपर रहें । इसी प्रकार दोनों हाथों को लपेट दीजिये और हाथों की दोनों हथेलियां मिलाकर गरुड़ की चोंच की शक्ल बनाइये ।

इस से स्नायु मजबूत होते हैं तथा रक्त प्रवाह सवेग होने से हड्डी भी बढ़ती है ।

पद्मासन ।

पैर फैलाकर बैठ जाइये फिर दाहिना पैर उठाकर बांये पैर की जांघ पर रखिए और बांया पैर उठा कर दाहिने पैर की जांघ पर रखिये। पैरों के तलवे दीखते रहें और घुटने जमीन में मिले रहें।

इस आसन द्वारा रक्त शुद्ध होता है । पेट विकार दूर होते हैं तथा बुद्धि तीव्र होती है ।

ऊर्ध्व पद्मासन ।

शीर्षासन और पद्मासन के योग से ही ऊर्ध्व पद्मासन बना है । शीर्षासन की स्थिति में आने के पश्चात् एक २ पैर क्रमशः मोड़ते हुये पद्मासन लगाना चाहिये ।

यह आसन ध्यान दृष्टि के लिये लाभदायक है।

वद्ध पद्मासन ।

पद्मासन की स्थिति में आकर दाँया हाथ पीठ के पीछे से लेजा कर दाहिने पैर का अंगूठा पकड़िए और बांया हाथ उसी तरह लेजाकर बांये पैर का अंगूठा पकड़िए ।

इससे तिल्ली और यकृत सम्बन्धी रोगों में लाभ पहुँचता है ।

कुक्कुटासन ।

पद्मासन लगाकर पैरों को जहां तक हो सके कमर की ओर खींचो और जांघ और पिंडली की संधि में हाथ डालिए और दोनों हाथों के पंजों को समानान्तर में सामने पृथ्वी पर जमा दो । हाथ की अँगुलियां अगाड़ी की तरफ रखते हुये शरीर को उठाते जाओ ।

इस आसन से छाती और हाथों के स्नायु फूलते हैं । अंगों में फुर्ती आती है और अशक्तिता दूर होती है ।

बकासन

दोनों हाथों के पंजे फैलाकर पृथ्वी पर रखो और घुटनों को धीरे २ हाथों पर उठाइये और पैरों सहित शरीर का सम्पूर्ण भार उठा कर हाथों पर छोड़ दीजिए और दोनों पैरों के पंजे और एड़ी परस्पर मिली रहें ।

यह आसन पेट के विकारों को दूर करता है ।

सिद्धासन ।

पैर फैला कर बैठते हुये बांयें पैर को मोड़ते हुये उसकी एडी लिंग के ठीक नीचे और गुदा के ऊपर यानी अण्डकोष और गुदा के बीच में मजबूती से जमा दीजिये और तलवा दांयें पैर की जंघा से लगा रहे अब दांयें पैर को मोड़ कर उसकी एडी लिंग के बिलकुल ऊपर हड्डी पर अच्छी तरह जमा दीजिये तलवा बांये पैर की जांघ से सटा रहे और पंजा जांघ और पिंडली के बीच में दबा रहे। ठोडी कंठ के नीचे मजबूती से लगाकर पलकों और आँखों को न हिलाते हुये दृष्टि को भौंहों के बीच में जमाइये ।
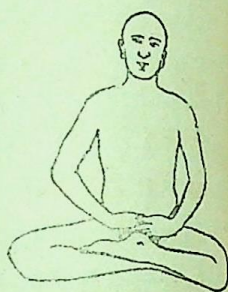
इस आसन से वीर्य रक्षा, एकाग्रता, बुद्धि विकासता प्राप्त होने के अतिरिक्त स्तम्भन शक्ति प्राप्त होती है ।

(५) पश्चिमोत्तासन
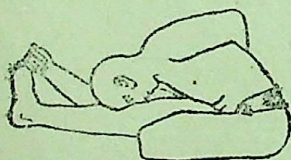
दोनों पैर जमीन से चिपे हुये तथा मिले हुये रखकर अगाड़ी को लम्बे फैलादें और अगाड़ी को झुक कर दोनों हाथों से पैरों के दोनों अँगूठों को पकड़िये और फिर सिर दोनों घुटनों के बीच में करने का यत्न करें किन्तु ध्यान रहे कि घुटन न मुड़ने पावें ।

इस आसन से भारी पेट हलका पड़ जाता है। पाचन शक्ति बढ़ती है, रक्त शुद्ध होता है और आँतों को लाभ पहुंचता है।

मत्सेन्द्रासन

आसन पर पैर फैलाकर बैठें और बाँऐ पैर का पंजा उठा कर दाहिनी जांघ की जड़ में रखिये। पंजे का तलवा पेट से और एड़ी तोंदी से सटी रहे। अब दाहिना पैर बाँएं पैर के घुटने पर इस प्रकार रखिये कि पैर खड़ा रहे और उसका पंजा घुटने के सहारे बाहर की ओर जमीन पर जमा रहे। तत्पश्चात् बाँया हाथ दाहिने पैर के घुटने के बाहर से लेजाकर दाहिना अँगूठा पकड़ो। हाथ चित्त रखना चाहिये अब दाहिना हाथ पीठ की ओर लेजाकर उससे बाँएं पैर की एड़ी पकड़ो ऐसा करते समय छाती या गर्दन अगाड़ी की तरफ न झुकनी चाहिये।
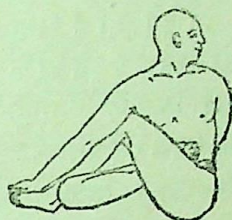
इस क्रिया से पेट के समस्त विकार दूर होते हैं। अजीर्ण और आँतों के रोगों को लाभ पहुँचाता है।

गर्भासन

पद्मासन की स्थिति में आने के बाद दोनों हाथों को जाघों और पिंडलियों की सीध में इतना घुसेड़ दीजिये कि कोहनियों तक वे संधि के बाहर हो जायें। बाद में शरीर का समस्त भार केवल चूतड़ों पर छोड़ कर हाथों से कानों को पकड़िये और हाथ पैरों की पिंडलियों के नीचे रहेंगे।

इस से कोष्ठवद्धता, क्रमि रोग, आदि दूर होते हैं।

मयूरासन।

घुटनों के सहारे ठते हुये दोनों हाथों को पृथ्वी पर इस भाँति रखें कि पंजे पिछाड़ी की तरफ रहें और पेट के दोनों तरफ पूरा दबाव पड़े। पैर लम्बे पिछाड़ी की तरफ फैलादो और कोहनियों को पेट के अगल बगल में लगा कर धीरे २ पैरों के ऊपर की तरफ उठाने का अभ्यास करना चाहिये। इस आसन में शीघ्रता या झटके से काम न लेना चाहिये। बल्कि किसी के सहारे से इस आसन का अभ्यास करना चाहिये।
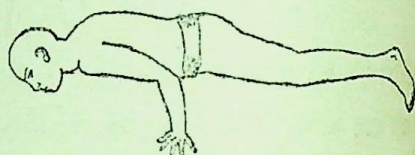
इससे स्नायु सुदृढ होते हैं। पाचन शक्ति बढ़ती है और मेद रोग, पाँडु रोग आदि को लाभप्रद है।

मत्स्यासन।

प्रथम पद्मासन की स्थिति में होकर चित्त लेट जाइये और कोहनियों को जमीन से लगा दो। गर्दन को बाहर की तरफ फैंकते हुये सिर के तालू को जमीन से लगा दीजिए किन्तु गर्दन उठी रहे। अब दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठे पकड़ लीजिए किन्तु घुटने जमीन से न उठने पावें। पेट और कमर का भाग जितना भी आप ऊपर की तरफ उठा सकें उठाइये।

इससे मस्तिष्क शक्ति वर्धक, दस्त साफ होता है और पेट विकार दूर होते हैं।

धनुरासन ।
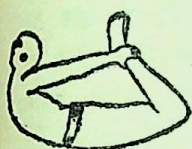
आसन पर उलटे लेट कर पैरों को घुटनों पर से मोड़ते हुये पीठ की तरफ ले जाइये और दूसरी तरफ से हाथों को पिछाड़ी लेजाकर पैरों को पकड़ो। फिर छाती को सामने की तरफ निकालते हुये सिर छाती को ऊपर की तरफ उठाइये तथा हाथों व पैरों में खिचाव दीजिये।

इससे पीठ का बांकपन, उदर विकार और मेद रोग को दूर करता है।

कर्ण पीड़ासन ।

यह आसन सर्वाङ्गासन का ही एक रूप है। सर्वाङ्गासन की अवस्था में ही घुटनों को मोड़कर कानों में लगाने का ही नाम कर्ण पीड़ासन है। यदि प्राथमिक स्थिति में लुढ़क पढ़ने का भय हो तो कमर पर दोनों हाथों से सहारा ले सकते हो किन्तु हाथों को जमीन पर खुला रखना ही विशेष लाभप्रद होता है।

यह आसन मेद रोग, कमर दर्द, तिल्ली आदि रोगों को नष्ट करता है।

त्रिकोणासन ।

आसन पर घुटनों के बल इस प्रकार से बैठै कि चूतड़ जमीन पर जमे हों तथा दोनों पैर उसके अगल बगल बाहर निकले हों यानी पैरों के पंजे चूतड़ के नीचे दबे हों। इसके बाद दाहिने पैर की जमीन से निकले हुये घुटने के सामने लाइये और उसे घुटने की सम रेखा में कीजिये अब बायां पैर भी इसी प्रकार रखिये। पैरों के अँगूठे और टखने जमीन से मिले रहें।

जानुशिरासन ।

आसन पर बैठ कर पैर अगाड़ी की तरफ लम्बा फैला दीजिये। अब बांया पैर मोड़ो तलवा जंघा की जड़ में चिपका दीजिये। एडी ठीक पीठ के सामने रहे तत्पश्चात् फैले हुये पैर को दोनों हाथों से या एक ही हाथ से पकड़ कर उसी पैर के घुटने पर सिर रख कर बैठिये। यही क्रिया दूसरे पैर से करना चाहिये। सामर्थ्यानुसार थोड़ी २ देर में पैर बदलते रहना चाहिये स्वांस निकाल कर और पेट को अन्दर की तरफ खीचते हुये यह क्रिया की जाय तो और भी अधिक लाभ होता है।

इस आसन के करने से आतों वपेट के समस्त रोगों को लाभ पहुँचाता है।

सर्पासन ।
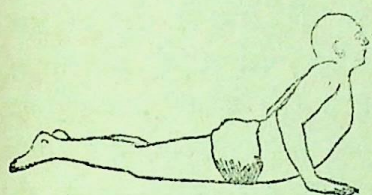
पेट के बल आसन पर लेट जाइये । फिर दोनों हाथों के पंजे जमीन पर टेक कर हाथ खड़े कर दीजिये । पंजे पेट के पास रहें और शरीर जमीन से चिपटा रहे । अब धीरे २ सिर, गर्दन, गला, छाती और पेट को जमीन से उठाते जाइये । दृष्टि सामने की ओर रहे तथा नाभि के पास तक शरीर जमीन से उठ जाना चाहिये ।

इससे उदर विकार नष्ट होते हैं और जठराग्नि प्रदीप्त होती है । प्रारम्भिक क्षय रोग नष्ट हो जाता है ।

वातायनासन ।

सीधे खड़े होकर दोनों हाथों से दाहिना पैर ऊपर उठाकर उसे बाईं जांघ पर रखिये । पैर का पंजा जांघ से मिला रहे । अब ऊपर का ऊपरी हिस्सा रखकर बांया पैर बांई ओर इस प्रकार मोड़िये कि दाहिने पैर का घुटना बाएँ पैर की एडी के टखने पर आकर रख जाय । दाहिनी जांघ सीधी रहनी चाहिये और पैर बदलते रहना चाहिये और आसन की अवस्था में हाथ छाती पर रख कर जोड़ लेने चाहिए ।

इस क्रिया से स्नायु पैरों खिचते हैं और रक्त साफ होने लगता है ।

वज्रासन ।
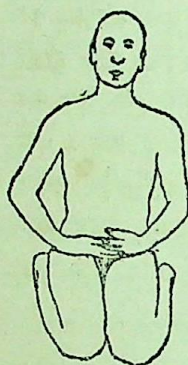
पैर की दोनों पिंडलियों को मोड़ कर इस प्रकार बैठो कि चूतड़ पैरों पर रहें और तलवा पिछाड़ी की तरफ खुले हुए रहें। अगाड़ी की तरफ दोनों घुटने और पिछाड़ी दोनों पैर मिले रहें शरीर सीधा और दृष्टि सामने की तरफ रहे।

इस आसन का प्रभाव पैर और जंघाओं पर पड़ता है अतः तत्सम्बन्धी व्याधियों को दूर करता है।

कोनासन ।

सीधे खड़े होकर अनुमानतः एक गज पैर फैला दीजिये। तत्पश्चात् एक पैर सीधा रख कर दूसरे पैर का घुटना बगल की तरफ मोड़ते हुये उसी तरफ के हाथ को (शरीर को झुकाकर) नीचे की तरफ ले जाइये और मोड़े हुये घुटने के पैर को पकड़िये किन्तु हाथ सीधा रहे। सीधे ताने हुये पैर की ओर वाला हाथ सीधा ऊपर को फैला कर रखिये सामर्थ अनुसार ठहर कर पैर बदल दीजिए और दूसरे पैर से इसी प्रकार करिये।

इससे शरीर में चैतन्यता आती है, हृदय निर्बलता, परिश्रम की थकावट दूर होती है तथा शौच साफ होता है।

द्विहस्त भुजासन ।

पल्थी लगा कर बैठ जाइये ! फिर एक २ करके दोनों पैरों को दोनों बाहों पर लीजिए और बाहों को ऊपर करते हुये दोनों पैर कंधों पर रख दीजिये साथ ही दोनों हाथों की अंगुलियां आपस में फंसाकर गर्दन में माला की तरह डाल लीजिए। प्रथम अभ्यास करने के लिए एक पैर डाल कर भी अभ्यास किया जा सकता है।

इससे हाथ, पांव और गले के स्नायु मज़बूत होते हैं और रक्त प्रवाह शुद्ध होता है।

तोलांगुलासन ।
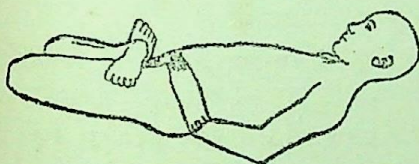
पद्मासन लगाते हुये आसन पर लेट जाइये और हाथों की मुठ्ठियां बांधकर कमर के नीचे यानी चूतड़ों पर लगाइये। अब धड़ को ऊपर की तरफ उठाइये और फिर कुछ सैकिंड ठहर कर फिर पैरों को भी उठाइये। इस प्रकार समस्त शरीर का भार हाथ की मुठ्ठियों पर आ जाना चाहिये। प्रथम धड़ उठना चाहिये और बाद में पैर अन्यथा पैर उठाने मुश्किल हो जायेंगे। ठोड़ी कंठ के मूल से लगी रहनी चाहिये और कोहनियां जमीन से लगा दें।

यह आसन उदर रोगों को दूर करता है तथा गर्दन के स्नायु को सुदृढ़ करता है।

आकर्णधनुरासन ।
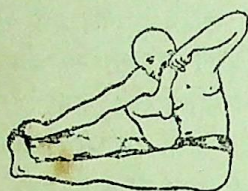
आसन पर बैठ कर पैर सीधे फैला दीजिये और दायें हाथ से बांये पैर का और बांये हाथ से दायें पैर का अंगूठा पकड़िये तत्पश्चात्, दायां पैर पूर्ववत् दिशा में ही रहने दें और बांया पैर हाथ के नीचे से लाकर खींचते हुये उसे दाहिने कान से मिलाइये। बाद में यही क्रिया दायें पैर से भी करनी चाहिये।

इस क्रिया से हाथ पैरों के स्नायु सुदृढ़ होते हैं तथा घुटने जांघ आदि अंगों की व्याधियें दूर होती हैं।

शलभासन ।

शलभ शब्द का अर्थ है पतिङ्गा यानी टिड्डा। बस उसी के समान शरीर को बना लेने का नाम शलभासन है आसन पर पेट के बल लेट कर दोनों हाथों को लम्बा करके शरीर से मिलाते हुये लिटा दें और फिर हाथों का सहारा लेते हुये पैरों को जांघ तक ऊपर की तरफ उठाइये किन्तु घुटने न मुड़ने पावें। तत्पश्चात् शिर, गर्दन, छाती और पेट को भी ऊपर की तरफ उठाइये।

इस क्रिया से शरीर के समस्त स्नायुओं पर जोर पड़ता है और रक्त शुद्ध होने लगता है। पेट सम्बन्धी सभी विकारों को दूर करता है।
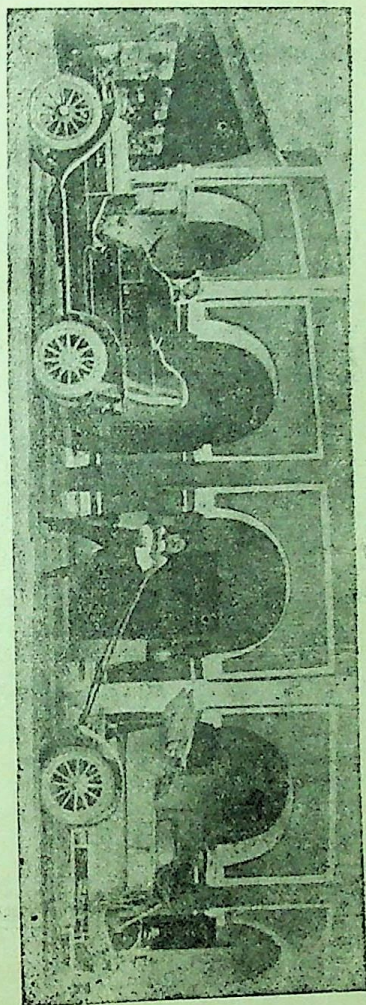
प्रोफेसर राममूर्ति दो मोटरें एक साथ रोक रहे हैं।

प्रो० राममूर्तिनायडू छाती पर हाथी को खड़ा कर रहे हैं।
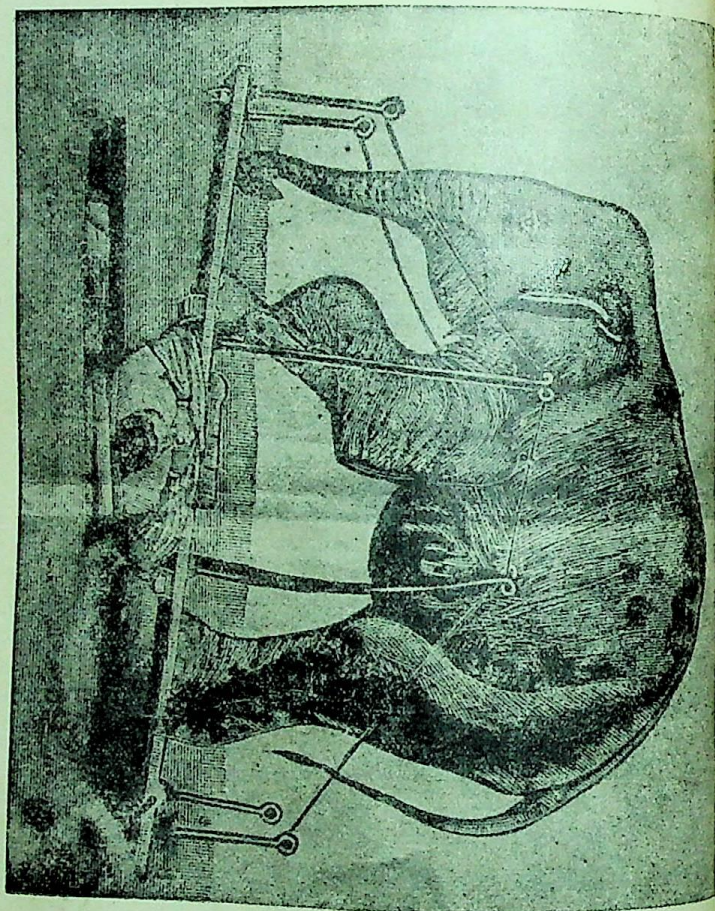
विश्वविजयी पहलवान

थे भीम तुल्य महाबली अर्जुन समान महारथी।
श्रीकृष्ण लीलामय हुये आप जिनके सारथी॥
उनपूर्वजों की कीर्ति का वर्णन अतीव अपार है।
गाते हमीं गुण हैं न उनके गा रहा संसार है।
भारत भारती

संसार के प्राचीन सभ्य देशों के इतिहास में बड़े २ शक्तिशाली पुरुषों की कथाऐं पाई जाती हैं। इटली, मिश्र, यूनान, अरब और फारिस के इतिहास भी ऐसी कथाओं से खाली नहीं हैं। हरक्यूलीज और रुस्तम का नाम कौन नहीं जानता। जैसे भारत में सूरदास नाम अंधों के लिये पेटेन्ट है एवं हरक्यूलीज यूनान का देवता और रुस्तम का नाम ही मल्ल अर्थ बोधक समझा जाता है। भारत के प्राचीन मल्लों में रावण, हनुमान, बाणासुर, जरासंघ, कंस चाणक आदि भी अनेक विश्व विजयी मल्लों के नाम पाये जाते हैं।

किसी समय में यह कला अत्यन्त प्रशंसनीय समझी जाती थी किन्तु अब केवल नाम मात्र के दो चार पहलवान रह गये हैं कि जिन की मृत्यु के बाद इस कला के लुप्त हो जाने का ही भय है।

एक बार जब पैरिस में स्वास्थ्य प्रदर्शनी हुई थी और जिसमें प्रयाग के देश भक्त मोतीलाल नेहरू के साथ गुलाम आदि कितने ही पहलवान पैरिस गये थे। तब वहाँ मादर अली नामक तुर्की पहलवान से गुलाम की कुश्ती निश्चित हुई। गुलाम ने प्रत्येक बातों में अपने प्रतिस्पर्धी को विजय किया। जिस समय जगद्गुरु पहलवान टामकेनन दिग्विजय करता हुआ कलकत्ते आया तो उस समय कूंचबिहार के राजा नृपेन्द्रनारायण भूप बहादुर वहीं पर थे। उन्होंने टाम के साथ गुलाम के पिता रहीम को लड़ाया और इस कुश्ती में रहीम जीता। दुबारा सन् १९१२ में बेंजमिन साहब प्रो० राममूर्ति तथा अन्य भारतीय सोलह पहलवानों को बिलायत ले गये किन्तु जब से गामा बिलायत गया था तब से वहां के निवासी भयभीत हो चुके थे अतः कोई भी भिड़ने को उद्यत न हुआ। कुछ समय पश्चात फ्रांस और स्विटजरलैंड के प्रसिद्ध पहलवान मारिस डिरयाज ही लंदन लड़ने आया। अहमदबख्श ने प्रथम बार कुछ सैकिंड में और दूसरी बार १ मिनट में जमीन दिखादी कि जिसे अवलोकन कर समस्त योरोप को विस्मित होना पड़ा। पश्चात डिरयाज के मैनेजर ने अरमण्ड कारमिलैंड के प्रसिद्ध पहलवान को बुलाकर अहमदबख्श से भिड़ाया किन्तु अहमदबख्श ने उसे भी चार मिनट में चित्त कर दिया। जब इंगलेंड में भारतीय पहलवानों से कोई भी लड़ने को उद्यत न हुआ तब वह सब निराश हो फ्रांस

पंजाब केसरी गुलाम पहलवान

गये और वहां मारिस, गाविया आदि पचास पहलवानों को परास्त कर फिर अमेरिका इस आशा से गये कि संसार के सर्व श्रेष्ठ पहलवान फ्रेंकगोल के साथ कुश्ती लड़ेंगे किन्तु फ्रेंक ने अस्वीकार कर दिया। तब विस्को के साथ काली नामक भारतीय पहलवान की कुश्ती हुई। दो वर्ष बाद फिर बाबू यतीन्द्र मोहन उर्फ गोबर विलायत गया और उसकी व्यायाम पद्धति की सबही समाचार पत्रों को प्रशंसा करनी पड़ी। गोबर ने एडिनबर्ग के जिम्के केम्बले और जिम्केईशन नामक दो पहलवानों को हराया। गोबर को इस कुश्ती में साढ़े बाईस हजार रुपये तथा प्रेक्षकों की टिकटों की बिक्री में से हिस्सा भी मिला। तत्पश्चात् गोबर ने फ्रांस के दो पहलवानों को हरा कर गोच के साथ लड़ने की इच्छा प्रगट की किन्तु गोच ने अस्वीकार कर दिया। गोच ने अमेरिकस नाम के पहलवान को अपने स्थान पर स्थापित कर दिया किन्तु इस अमेरिकस को आइरिश पहलवान पैटकालनी ने और पैटकालनी को इमामबक्स ने हरा दिया था।

———

प्रो० राममूर्ति नायडू।

प्रोफेसर राममूर्ति नायडू इंडियन हरक्यूलीज़ कलियुगी भीम के नाम से काफी प्रसिद्ध थे। इन्होंने अपनी अद्भुत करामात दिखाकर सारे संसार में अपनी शक्ति का अपूर्व सिक्का जमा दिया था। प्रो० राममूर्ति की जन्म भूमि मदरास प्रान्त के विजयानगर में है। आपके पिता का नाम रायबहादुर नारायण स्वामी था। सन् १९१२ में योरोप के प्रायः सभी शहरों में घूम २ कर आपने दो २ मोटरें रोकना, हाथी छाती पर खड़ा करना, लोहे की मोटी २ सांकलों को तड़से तोड़ डालना, आदमियों से भरी हुई गाड़ी को सीने पर से उतारना, १०–१५ मन के वजनी पत्थर को सीने पर रख कर हथोड़ों से टुकड़े २ करा डालना आदि बलकारी और आश्चर्य जनक कार्य प्रदर्शित कर वहां की जनता को चकित कर दिया। अधिक समय न मिलने पर भी आपने योरोप के समस्त पहलवानों को ललकारा था किन्तु केवल स्विटजरलैण्ड के डोरिया और चेरीगिलाड़ नाम के पहलवानों ने सन्मुख आने का साहस किया। इनसे आपके चेले भिड़ गये और लन्दन ही में विजय प्राप्त की। आपने स्वयं सैन्डो को लड़ने का आवाहन दिया किन्तु सैन्डो ने अस्वीकार कर दिया। आपका कथन था कि स्पेन

फ्रांस, बोर्डों आदि में एक अत्यन्त महाक्रूर आमोद प्रमोद मनाया जाता था। वह यह था कि एक साँड को कुछ समय तक अन्धकार में रख कर पागल बना देते थे और फिर वह अखाड़े में लाया जाता था तब एक घुड़ सवार नग्न तलवार द्वारा उसके टुकड़े २ कर डालता था। मैं उस समय वहीं उपस्थित था, अतः मुझसे यह नीच कर्म न देखा गया तब मैंने अखाड़े में खड़े होकर कहा कि यदि इतने मनुष्यों में कोई सच्चा वीर हो तो इस सांड को शस्त्र विहीन होकर रोके किन्तु किसी का भी साहस न हुआ। तब फिर मैंने कहा कि यदि आप सब यह प्रतिज्ञा करें कि हम इस क्रूर खेल में सम्मिलित न होंगे तो मैं इसको सींग पकड़ कर बिल्ली सा डरपोक बना दूं, परन्तु किसी ने प्रतिज्ञा न की और न मुझे अपनी शक्ति प्रदर्शित करने का अवसर ही प्राप्त हुआ"। आपको सैंकड़ों स्वर्ण पदक प्राप्त हो चुके थे और आपने भी अनेकों संस्थाओं को लाखों रुपया दान दिया था किन्तु खेद है कि आपका अन्तिम समय आर्थिक अभाव के कारण बड़ा ही कष्टमय और अशान्तिप्रद रहा और किसी भी संस्था ने बात तक न पूछी। अन्त में यही कहना पड़ता है कि परम पिता परमात्मा के खेल निराले हैं। जो मनुष्य लाखों का दान करे उसे उदर पूर्ती के लिए निराश्रितों की भांति दूसरों का मुख ताकना पड़े।

विश्व विजयी गामा

इस पंजाबी पहलवान गामा ने देश विदेशों में भ्रमण कर अनेक यशस्वी मल्लों को परास्त कर सारे भूमण्डल पर भारत का डंका बजा दिया। सन् १९०९-१० में बेंजमिन साहब गामा और इमामबख्श नामक पहलवानों को भारत से साथ ले गये और अमेरिका के प्रसिद्ध पहलवान रोलर के साथ गामा की और स्वीटज़रलैन्ड के पहलवान लेम के साथ इमामबख्श की कुश्ती हुई। दो लाख रुपया एकत्र कर प्रतिज्ञा पत्र अंकित किया गया। गामा ने रोलर को २० मिनट में तथा इमामबख्श ने लेम को १२ मिनट में चित्त कर दिया। जिसे देख कर योरुप ने दाँतों तले उँगली दबाई और गुलाम को पंजाब केशरी तथा इमामबख्श को नर व्याघ्र की उपाधी से भूषित करना पड़ा। इस विजय के उपलक्ष में पुरस्कार के गुलाम को १५ हजार और इमामबख्श को ७ हजार नकद एवं टिकटों की आय में से भी हिस्सा मिला। इस के कुछ समयान्तर फिर आस्ट्रीया के पहलवान विस्को से गामा की कुश्ती हुई और गामा विजयी माना गया। गुलाम के भाई इमामबख्श और आयलैंन्ड के पहलवान पैट कन्नोली की कुश्ती हुई, जिस में हाथ पकड़ते ही इमामबख्श ने पैट को जमीन पर दे मारा।

पोलेण्ड का प्रसिद्ध पहलवान जिवस्को दिग्विजय करता हुआ पटियाले आया और गामा को कुश्ती के वास्ते ललकारा। यद्यपि गामा और जिवस्को दोनों सन् १६१८ में लन्दन में परस्पर भिड़ चुके थे। अधिक समय होजाने के कारण कुश्ती बन्द करादी गई और दूसरे दिन पुनः होनी निश्चित हुई परन्तु जिवस्को को सामने आने का साहस न हुआ। ऐसा होने पर गामा को World Champian विश्व विजयी होने के उपलक्ष में पुरुस्कार स्वरूप पेटी दी गई थी। एक बार ऐसा हो जाने पर भी न जाने क्या विचार कर गामा को ही जिवस्को ने आकर फिर ललकारा। गामा भी क्या हटने वाला था, सहर्ष सामने आ गया। २८ जनवरी सन् १६२८ को प्रातःकाल पटियाले में कुश्ती निश्चित हुई। दोनों तरफ से प्रतिज्ञा पत्र लिखे गये कि जो आज जीतेगा वह विश्व विजयी माना जायगा। अखाड़े में हजारों दर्शकों की भीड़ थी। बड़े २ राजा महाराजा तथा अफसर लोग उपस्थित थे। कुश्ती आरम्भ हुई। गामा ने बिजली की चमक की तरह झपट कर जिवस्को को उठाकर जमीन पर पटक छाती पर चढ़ बैठ। गामा विश्व विजयी माना गया। भूपाल नरेश द्वारा चांदी की गुर्ज जो रुस्तमे आलम होने का चिह्न था गामा को मिला। तीसरे पहर फिर गामा के भाई इमामबख्श और गूंगा पहलवान की कुश्ती हुई। इमामबख्श कुश्ती जीता और रुस्तमे हिन्द की पदवी मिली।

इग्युन सैन्डो ।

प्रोफेसर सैन्डो की जन्म भूमि जर्मनी प्रान्त के कौनिग्जवर्ग नामक जगह में थी। दस वर्ष की अवस्था में एक दफ़ा वह अपने पिता के साथ इटली गया। वहाँ उसने रोम और फलारेंस की गैलरियों में पत्थर और धातु की सुदृढ़ मूर्तियाँ देखीं। उन की सुगठित आकृति देख कर उनके समान ही हृष्ट पुष्ट होने की लालसा आपके हृदय में समा गई और व्यायाम आरम्भ कर दिया। २१ वर्ष की आयु तक शरीर यथेष्ट प्रौढ़ होगया। सन् १८८६ में सैमसन नामक पहलवान ने लंदन में घोषना प्रकाशित की थी कि जो कोई उसे पछाड़ेगा वह एक हज़ार पौंड और उसके चेले साइक्लोप्स को जो पछाड़ेगा वह एक सौ पौंड का पुरस्कार पावेगा। इस घोषणा को सुन कर सैन्डो वेनिस नगर से लंदन पहुँचा कर सैमसन को ललकारा और विजय प्राप्त की। साइक्लोप्स ने २४० पौंड के लोहे के बंद दोनों हाथों से अपने से ऊँचा उठाया परन्तु सैन्डो ने एक ही हाथ से यह करामात कर दिखाई। लोहे का मोटा छड़ और सीकन तोड़ना तथा २८० पौंड का डंबल भांजने आदि में भी सैमसन को परास्त किया।

सैन्डो न्यूयार्क से बोस्टन और शिकागो आदि होता हुआ सैन्टलुई पहुँचा। वहाँ अपने खेलों को दुहराने वाले के लिए दस हजार डालर का पारितोषिक घोषित किया पर कोई सन्मुख नहीं

आया। सेंन्टलुई से वह फ्रांसिसको पहुँच कर उसने शेर और भालू की लड़ाई का विज्ञापन निकाला। २० हजार दर्शकों के लिये सुविस्तृत रंगशाला बनाई गई किन्तु पुलिस ने तमाशा रोक दिया। तब सैन्डो ने भालू की जगह स्वयं ही लड़ने का इरादा किया। अपने मित्रों के मना करने पर भी वह किंचित विचलित न हुआ फलतः बड़ी धूम धाम के साथ एक भयंकर शेर के साथ लड़ने के लिए अखाड़े में कूद ही पड़ा और उधर शेर भी गर्ज कर सामने आया। सैन्डो ने पैतरे से उसका निशाना बचा बांये हाथ से गर्दन और दांये हाथ से कमर पकड़ कर ५३० पौंड के पशु सम्राट को सिर से ऊँचा कर पृथ्वी पर दे मारा। दूसरी बार फिर शेर क्रोधान्ध होकर उछला। अब की बार सैन्डो ने उसे पीठ पर ले लिया और गर्दन पकड़ कर आगे चारों खाने चित्त पटक लिया। इस प्रकार शेर पर अपने प्रचण्ड बल का आंतक जमा कर सैन्डो ने बड़ी कीर्ति और सम्पत्ति कमाई। शेर इतना ठंडा हो गया कि सैन्डो को अपने कन्धे पर बिठा कर अखाड़े में टहलने लगा।

अपनी अद्भुत शक्ति का परिचय देते हुये सैन्डो ने आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैन्ड की सैर की। आप एक बार भारत भी आये थे। आपने कितनी ही उपयोगी पुस्तकों की भी रचनाएँ की हैं। सैन्डो व्यायाम प्रणाली का आज भी सर्वत्र प्रचार और आदर हो रहा है।

—ज़िबस्को—

ज़िबस्को प्रसिद्ध पोलिश पहलवान था और आठ भाषायें जानता था। न्याय शास्त्र का पढ़ा हुआ था मगर विकालत नहीं की और अपने देव तुल्य शक्ति के कारण पहलवानी का पेशा इख्तियार किया। यह दो हज़ार से अधिक कुश्तियां लड़ चुका था। वजन २४५ पौंड और लम्बाई ५ फीट दस इंच थी। बड़े भारी डील डौल का मनुष्य था। २५ वर्ष पहले यह अनुमान था कि ३८ साल की आयु होने के कारण ज़िबस्को कुश्ती लड़ने के योग्य नहीं रहा किन्तु फिर भी ज़िबस्को ने फील्ड लेनियां में "वगमन" को जो कि मशहूर वज्रमुष्टी मि० सेंगुलर को गिराकर रुस्तमे आलम (World Champian) बन गया था ज़िबस्को को ने इसे दो बार विजय किया। पहली बार ८ मिनट ११ सैकिन्ड में और दूसरी बार ४ मिनट में वगमन को गिरा दिया। सन १९१२ ई० में गामा के साथ लन्दन में कुश्ती हुई थी मगर ३ घंटे १२ मिनट तक कुश्ती रहकर बराबर छूटी किन्तु दुबारा सन १९२८ ई० में स्वयं ज़िबस्को ने पटियाला आकर गामा को चेलेंज दिया मगर गामा ने इसे भिड़ते २ फ़ौरन पछाड़ दिया।
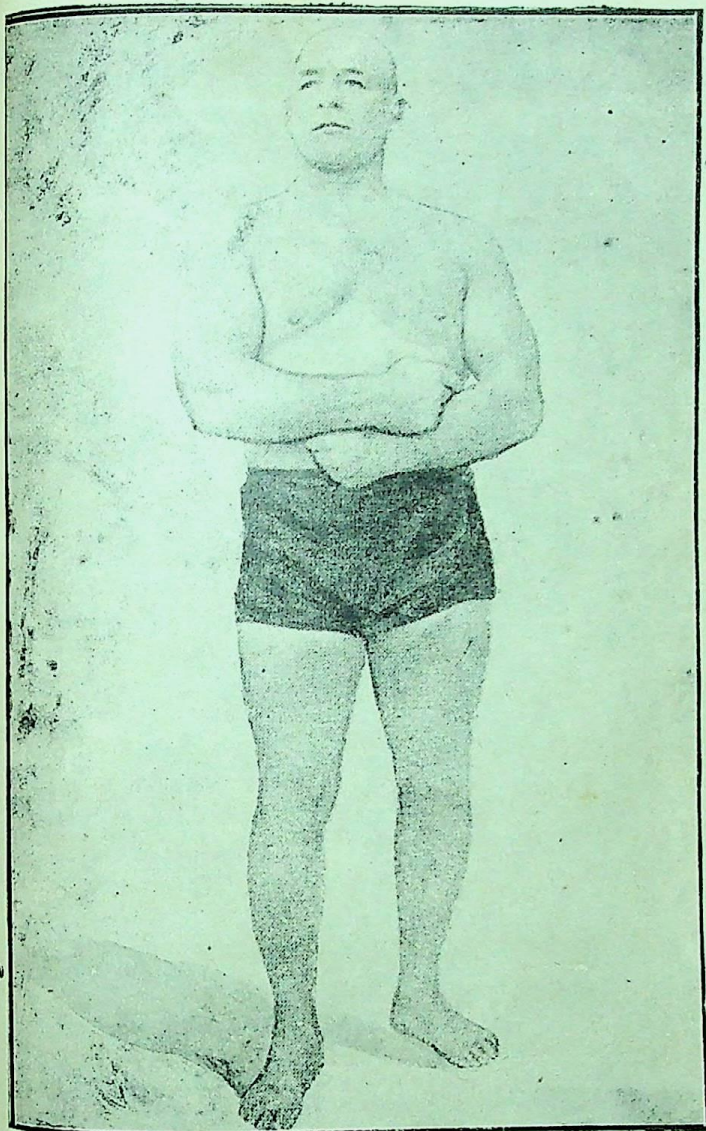
पोलैंड का प्रसिद्ध पहलवान जिबस्को ।
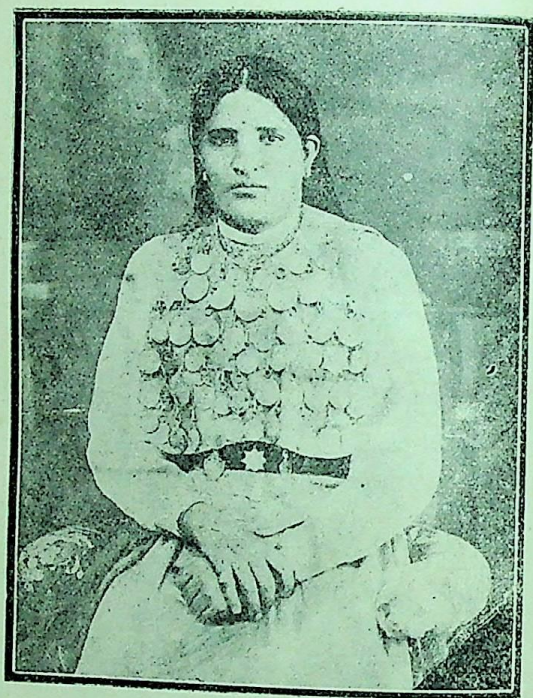
ताराबाई ।

ताराबाई ।

—**—

ताराबाई का जन्म अजमेर में हुआ था और बाल्यावस्था में ही माता पिता के स्वर्गवास हो जानेके कारण यह सर्व भाँति अनाथ होगई अतः यह सहायता हितार्थ अपने किसी सम्बन्धी के निकट बड़ोदा चली गई। मकान के पास ही एक अखाड़ा था, जिसमें कुश्ती होते देख इन्हें भी रुचि उत्पन्न हुई और निरन्तर अपूर्व बल प्राप्त कर अद्भुत पराक्रमी कर्त्तव्यों का प्रदर्शन किया। यह अपनी अनुपम शक्ति द्वारा अद्भुत कार्य कर दर्शकों को सम्मोहित कर देती हैं। यथा बड़े भारी पत्थर को सिर के बालों द्वारा उठाना। भालों पर बिना किसी अवलम्ब के सोना तथा ३० मन के पत्थर को छाती पर रखना आदि शक्ति शाली कार्य इनके बांये हाथ के खेल हैं। जो हमारे स्त्री समाज के लिएअत्यन्त गौरवकी बात है। इतना अविरल परीश्रम करने पर भी इनके मुख पर रंच मात्र श्रान्ति के चिन्ह प्रतीत नहीं होते और प्राचीन वीरांगनाओं का सहसा स्मरण हो आता है। भारत तथा स्त्री समाज के लिए यह क्या कम गौरव का विषय है।

शरीर रचना ।

शरीर से पुण्य परोपकार, शरीर ही है गुण का आगार।
शरीर ही है सुर लोकद्वार, शरीर ही से सुविचार सार॥
शरीर ही से पुरुषार्थ चार, शरीर की है महिमा अपार।
शरीर रचना पर ध्यान दीजै, शरीर सेवा सब छोड़ कीजै॥

जिस प्रकार वैज्ञानिकों ने धातुओं के पदार्थों द्वारा रेल, मोटर, वायुयान आदि वस्तुऐं बना कर उनमें गति उत्पन्न कर दी है एवं प्रकृति ने हमारे शरीर रूपी इंजन को भी इस चमत्कार के साथ बनाया है कि जिसकी यद्यपि मनुष्य नकल करने में असमर्थ है तथापि कितने ही विद्वानों ने इस के कल पुर्जे यानी अवयवों को निकाल २ कर उनके सम्बन्ध में इतना ज्ञान अवश्य प्राप्त कर लिया है कि उनमें छोटी मोटी खराबी उत्पन्न हो जाने पर सुधार भी किया जा सकता है। अब हम संक्षेप रूप में शारीरिक अंग प्रत्यंगों का वर्णन करते हैं क्योंकि शारीरिक अवयवों का हाल ज्ञात हुये बिना मनुष्य शारीरिक व्याधि का निर्णय ही नहीं कर सकता और साथ ही रोगी होने पर उल्टी चाल चल सकता है।

यदि वास्तविक रूप से विचारा जाय तो हमारे शरीर के मुख्य तीन भाग हैं। पहिला सिर, दूसरा धड़ और तीसरा परों वाला भाग। जिनका विवरण निम्न प्रकार है।

स्नायु व नस नाड़ियां

मस्तिष्क और सुषुम्ना।
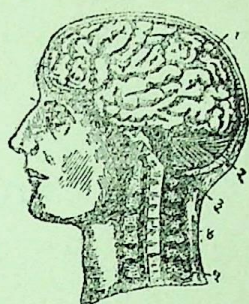
नम्बर १ बृहत् मस्तिष्क, नम्बर २ लघु मस्तिष्क नम्बर ३ सेतु नम्बर ४ सुषुम्ना नम्बर ५ कशेरु कंटक।

सिर Head.

मस्तिष्क—Brain का आकार अंडाकार और पिछला भाग अगले भाग की अपेक्षा अधिक चौड़ा और मोटा होता है। अनुमानतः लम्बाई ६ इंच. चौड़ाई ५॥ इंच और मोटाई ५ इंच होती है। पूर्ण युवाअवस्था में पुरुषों के मस्तिष्क का भार २२ छटांक और स्त्रियों का २० छटांक के करीब होता है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों के मस्तिष्क का भार अधिक होता है। ४० वर्ष की अवस्था तक मस्तिष्क का वजन बढ़ता रहता है। तत्पश्चात् शनैः २ कम होने लगता है।

बृहत मस्तिष्क—(Cerebrum) यह सिर के अगले और ऊपरी भाग में नरम भूरे रंग के पदार्थ की गाठों द्वारा बना हुआ है। इन के द्वारा ही हमें हर तरह का ज्ञान तथा सूचना मस्तिष्क तक पहुंचती है। बाहरी रंग भूरा परन्तु भीतर का श्वेत रंग होता है। घाईयों ऊँचा नीचा उभार पड़ने के कारण यह कहीं २ ऊँचा नीचा दिखाई देता है। बृहत मस्तिष्क भी दो अर्द्ध गोलों में विभक्त किया गया है और बीच की दराज में एक प्रकार का श्वेत पदार्थ भरा रहता है जो इन दोनों भागों को जोड़ता है। इन पोली जगह में दो यंत्र और भी हैं जिन्हें सन्देश वाहक यंत्र (Pons veroli) कहते हैं। इनमें से १२ तन्तु निकल कर नाक, आँख, कान में फैल गये हैं और इन तन्तुओं द्वारा ही हर तरह का सन्देश मस्तिष्क को पहुंचता है। भूरा भाग बात सेलों से और श्वेत भाग सूत्रों से बनता है।

लघु मस्तिष्क—(Cerebri) सिर के नीचे पिछले भाग में स्थित है और सदैव कम्पित दशा में रहता है। आकार गोल और कुछ चपटा होता है। चौड़ाई ४ इंच और वजन अनुमानतः २, २॥ छटांक होता है। बृहत मस्तिष्क के समान ही इसमें भी घाइयां तथा भूरा और श्वेत रंग होता है इसके भी तीन भाग किये गये हैं। बीच का भाग उभरा हुआ और दोनों तरफ नीचे दबा हुआ होता है और शेष दो भाग गोलार्द्ध हैं जो बीच वाले भाग के अगल बगल दोनों सतह को दबाये रहते हैं।
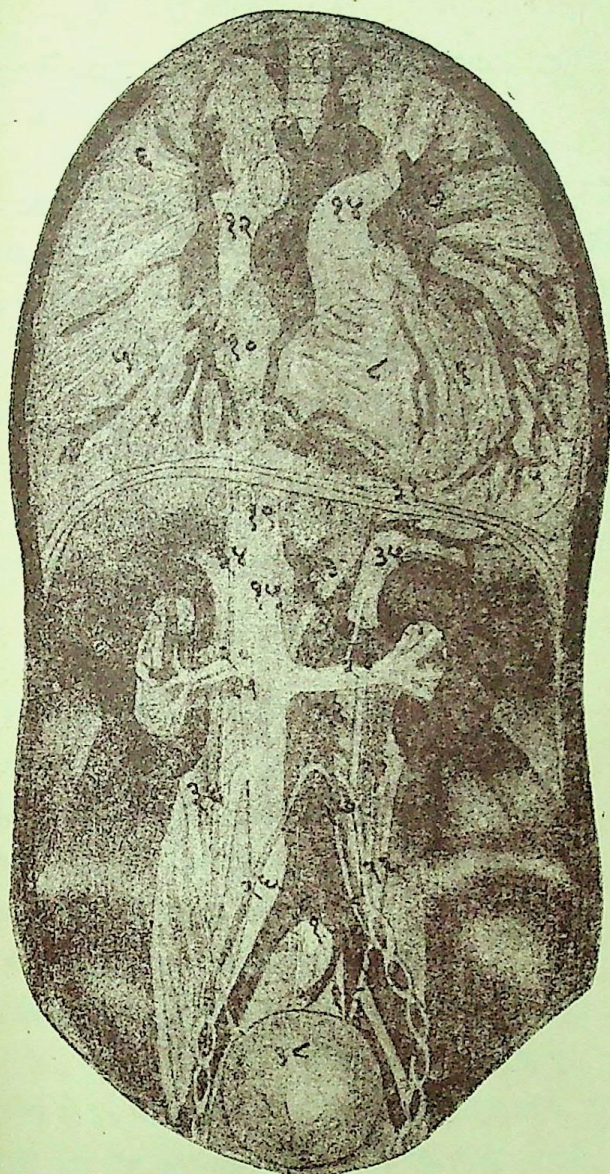
शारीरिक आन्तरिक इन्द्रियें और रक्त बाहिनी नाड़ियां

सेतु Pons.

लघु मस्तिष्क के सामने महराब की भांति मुड़ा हुआ श्वेत रंग और वात सूत्रों से बना हुआ जो भाग है उसको ही सेतु कहते हैं। बृहत मस्तिष्क, लघुमस्तिष्क और सुषुम्ना इन तीनों अंगों को एक जगह से दूसरी जगह जाने वाले सूत्र सेतु में ही से होकर गुजरते हैं। सेतु के सामने श्वेत रंग के वात सूत्रों से बने हुए दो डंडे होते हैं जिन्हें मस्तिष्क स्तम्भ कहते हैं। जितने वात सूत्र सुषुम्ना और सेतु बृहत मस्तिष्क को आते जाते हैं वह सब इन्हीं स्तम्भो में होकर निकलते हैं।

चित्र परिचय।

शरीर की इन्द्रियां और रक्त संचारक नाड़ियां।

१ श्वासनलिका (Trachea) द्वारा हीहम श्वास निकालते हैं।

२ ३ फेफड़ों का आवरण (Pleura)। दोनों के आसपास एक २ पतली नसों का जाल रहता है।

४ श्वास नली की अंतिम शाखा।

५ रक्तवाहिनी नाड़ियों के सिरे।

६ फैफड़ों से रक्त शुद्ध होने पर जिन दो नाड़ियों (Pulmonic Veins) के द्वारा वह हृदय के बांए पर्त में पहुंचता है।

७ अंकों से ३० अंक तक रक्त संचार करनेवाली नसों के द्वारा।

३१ छाती और पेट को अलग रखने वाला एक स्नायुमय पर्त।

३२ से ३८ अंक तक के स्थलों में यह बतलाया है कि मूत्र सम्बन्धी अवयव।

सुषुम्ना Spinal Cord.

मस्तिष्क के नीचे के भाग से सुषुम्ना आरम्भ होती है। सुषुम्ना की जड़ बहुत कोमल होने के कारण उसे सिर के एक ऐसे सुरक्षित स्थान में रखा गया है कि जहां किसी भी तरह का आघात न पहुँच सके। सुषुम्ना पीठ की रीढ़ की हड्डी में रहती है और उसकी जड़ मगज की नली होती है। श्वास-प्रश्वास ही नहीं वरन् शारीरिक सभी क्रियाओं का सुषुम्ना पर थोड़ा बहुत आधार अवश्य होता है।

सुषुम्ना की लम्बाई पुरुषों की १८ इंच और स्त्रियों की १७॥ इंच, वजन आधी छटांक और बेलनाकार की होती है। सुषुम्ना के अन्तिम भाग के शिखर से वात तन्तुओं व सौत्रिक तन्तुओं द्वारा निर्मित ६-७ गज लम्बी एक पतली श्वेत सूत्र आरम्भ होकर गुदास्थि से लग जाती

है। सुषुम्ना बाहर से श्वेत, भीतर धूसर रंग की होती है जो ३१ जोड़ों से मिलकर बनी है। धूसर भाग में सेलें और श्वेत भाग में सूत्र होते हैं।

आंख EYE
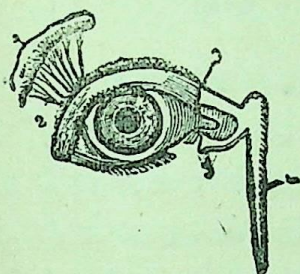
नेत्र जितनी अमूल्य, दुर्लभ और उपयोगी वस्तु है उतनी ही ईश्वर ने इसे ऐसे सुरक्षित स्थान में रखा है कि जहाँ किसी प्रकार का आघात पहुंचना कठिन बात है। नेत्र भ्रूओं के नीचे और नासिका के दोनों तरफ कनपटियों से चिपटे हुये हैं। तीन तरफ से तो खोपड़ी रूप कोठरी में ही बंद हैं और आगे की तरफ से पलक रक्षा करते हैं। आंखों में जो गोल २ काला दाग दृष्टिगोचर होता है वह वास्तव में ऊपर नहीं है वरन् नीचे की तह में कांच सदृश स्वच्छ निर्मल पड़त में से चमकता है। यह पीछे जाकर स्वेत पड़त से मिल गया है जिसे कनीनिका कहते हैं। कनीनिका में एक काला चमकता हुआ गोल बिन्दू नजर

आया करता है जो समयानुसार फैलता और सिकुड़ता रहता है। इसे पुतली या तारा कहते हैं। यह छिद्र जिस परदे में होता है उसे उपतारा कहते हैं। उपतारे के पीछे चक्षु ताल होता है और इसके धुंधले हो जाने पर ही दृष्टि शक्ति क्षीण हो जाती है। आकार में यह मसूर के दाने की भाँति होता है।

ताल के पीछे आंख का बड़ा कोष्ठ है इस में गाढ़ा लसदार स्वच्छ अर्ध तरल द्रव्य भरा रहता है और यही चक्षु के आकार को स्थिर रखता है अथवा यों कहिये कि अगर यह न होता तो आंख पिचक जाया करती। इसी द्रव्य के दबाव से ही आंखों के तीनों पटल भी एक दूसरे से मिल रहे हैं। इन में ९८.५० सैंकड़ा जलांश होता है।

आंख के तीन पड़त।

बाह्य पटल—यह पीले श्वेत सौत्रिक तंतुओं से निर्मित है। अन्य दोनों पटलों की अपेक्षा यह पटल मोटा और कठोर होता है। नेत्र संचालनी पेशियां यहीं पर रहती हैं अनुमानतः पिछले भाग की मोटाई $\frac{1}{24}$ इंच के होती है और पिछला बराबर भाग आगे के भाग की अपेक्षा अधिक मोटा होता है।

बीच का पड़त—यह पीले सौत्रिक तन्तुओं से निर्मित है तथा रक्तवाहिनियां अधिक होती हैं और भीतरी पड़तपर केशकाओं

का एक घना जाल होता है। केशकाओं के बीच में और सौत्रिक तन्तुओं में जो सेलें रहती हैं उन में एक प्रकार का स्याही मायल रङ्ग भरा रहता है। इसी कारण पटल काला दिखलाई देता है।

भीतरी पड़ल—यह पड़त नाड़ी सूत्रों तथा विशेष प्रकार की सैलों की कई तह होती हैं। पिछले भाग की मोटाई ९१० इंच होती है परन्तु उपतारा के समीप २४१० इंच ही रह जाती है। जीवित अवस्था में यह पटल स्वच्छ रहता है और उसका रंग सैलों के भीतर एक विशेष रंग रहने के कारण नील लोहित होता है परन्तु मृत्यु के पश्चात् यह पटल अस्वच्छ और धूसर रंग का होजाता है।

चक्षु के पाश्चातय ध्रुव पर इस पटल के भीतरी पृष्ट पर एक अण्डाकार पीला धब्बा होता है जिसे पीतबिन्दु कहते हैं और इस में देखने की शक्ति सबसे अधिक होती है। पीत बिन्दु से $\frac{1}{2}$ इञ्च नासिका की ओर हटकर दृष्टि नाड़ी आरम्भ होती है। जिन तारों से यह नाड़ी बनती है वे अन्तरीय पटल में रहने वाली नाड़ी सैलों से निकलते हैं। यह तार केन्द्र गामी और सांवेदनिक हैं और इकट्ठे होकर चक्षु पार्शव से मध्य और वाह्य पटलों में से होकर बाहर निकलते हैं अनुमानतः दृष्टि नाड़ी में ५००००० तार होते हैं।

प्रकाश की किरणें कनीनिका पर पड़ती हैं। कनीनिका में से होकर ये चक्षु के भीतर प्रवेश करती हैं। जलीय रस तारा, ताल

और बृहत कोष्ट में रहने वाले स्वच्छ द्रव्य में से होकर ये दृष्टि पटल पर पड़ती है। इस पटल पर वस्तु का प्रतिबिंब बनता है। प्रकाश की किरणों से दृष्टि पटल की सैलों में एक विचित्र रासायनिक प्रक्रिया होती है और इस प्रक्रिया का प्रभाव दृष्टि नाड़ी द्वारा मस्तिष्क को पहुंचता है और हम को रंग आकारादि का ज्ञान होता है।

अक्षि गोलक को इधर उधर घुमाने के लिये आंखों में ६ मांस पेशियां भी होती हैं। इसमें चार पेशियां सीधी, एक २ ऊपर नीचे तथा दो दोनों कोयों में होती हैं।

पलक Eyelid.

आंखों के ऊपर नीचे दो पलक होते हैं। पलक के ऊपरी भाग पर कोमल त्वचा और भीतरी पृष्ट पर श्लैष्मिक कला होती है तथा रक्त केशिकाओं के कारण इसके रंग में कुछ लाली रहा करती है। कुछ नेत्र निमीलनी नामक पेशियां भी रहती हैं कि जिनके ही अवलंब से पलक झपकते तथा बन्द होते हैं। दोनों पलकों के किनारों पर बाल होते हैं जिन्हें बिरुनियां कहते हैं जो छोटी मोटी चीजों को आंखों में गिरने से रोक लेती हैं।

अश्रु ग्रन्थि Lacrimal gland.

अश्रु ग्रन्थि बादाम के बराबर होता है। नेत्र गुहा (पलक) की छत में कनपुटी की ओर गढ़ा होता है। अश्रु ग्रन्थि इसी गढ़े में

रहती हैं। ग्रन्थि और अक्षिगोलक के बीच में आंख की दो पेशियां रहती हैं। इस ग्रन्थि में जो रस बनता है उसे अश्रु कहते हैं।

नासिका Nose.

मस्तक के नीचे और दोनों नेत्रों के बीच में नासिका है परदे द्वारा नाक के दो भाग किये गये हैं। जिन्हें दायां बांया नथुना कहते हैं। नाक की नोक तथा नीचे का भाग त्वचा, मांस और कारटिलेज से बनी हुई हैं, जो दबाने से झुक जाती है। ऊपर के भाग में अस्थि होने के कारण कठोर होता है। नासिका का सबसे प्रथम कार्य श्वास लेना और परित्याग करना है। जब हम नासिका द्वारा हवा लेते या खींचते हैं तो वायु नासारन्ध्रों द्वारा नासिका से प्रवेश कर मध्य और अधो सुरंगों में होती हुई पश्चिमी द्वार द्वारा कंठ में प्रवेश करती है तत्पश्चात् कंठ से स्वर यंत्र और फिर टेंटुये में से होकर फुफ्फुसों में पहुँच जाती है। श्वास नासिका द्वारा ही लेना श्रेयष्कर है कारण नासारंध्रों में बालों की चलनी होती है जो सूक्ष्म जीव जन्तुओं तथा धूल, मिट्टी आदि के कणों को हवा के साथ अन्दर प्रवेश होने से रोकती है। दूसरे जो श्लैष्मिक कला में जो श्लैष्मिक बनती है उसमें कीटाणु नाशक शक्ति होती है अतः इससे भी प्रवेश करने वाले जीवों का नाश हो जाता है।

तीसरे नासिका की मोटी रक्तमय कला के रक्त की गर्मी से भीतर जाने वाली वायु गर्म हो जाती है अतः निमोनिया आदि

रोगों के होने का भय नहीं रहता। यह सब साधन मुख से हवा लेने में नहीं हैं। यही कारण है कि बहुधा मुख से श्वास लेने वालों के जुकाम तथा फुपफुस आदि के रोग हुआ करते हैं।

प्रत्येक नथनों में उर्ध्व शक्ति का तथा उसके सन्मुख परदे की श्लेष्मिक कला का काम गंध पहचानने का है। गंधज्ञ सेलें बीच में से मोटी और दोनों सिरों पर पतली होती हैं। जो सिरा पृष्ट पर होता है उस में बाल के समान महीन तार निकले हुए होते हैं। दूसरे सिरे से एक पतला और लम्बा तार निकलता है। सेलों के इन लम्बे और पतले तारों से घ्रांण नाड़ियां बनती हैं। जब गंधवत द्रव्यों से घ्राणांकुर लगते हैं तो घ्राण सेलों पर एक प्रकार का विशेष प्रभाव पड़ता है। घ्राण नाड़ियों द्वारा यह प्रभाव मस्तिष्क के घ्रांण केन्द्रों को पहुंचाता है जिससे हम को गंध का बोध होता है।

जिह्वा Toungh.

खाद्य व पय पदार्थों का स्वाद जीभ द्वारा ही ज्ञात होता है। इसके द्वारा ही हम बोलते चालते हैं। जीभ का रंग स्वस्थ्य दशा में गुलाबी रहता है परन्तु पीड़ित दशा में रक्त हीनता के कारण सफेदी लिये हुए और अजीर्ण होने पर जीभ पर दुर्गन्ध युक्त भूरे रंग का मैल सा जम जाता है। जीभ ऐसे मांस से बनी है कि जिसमें संकोच और प्रसार की शक्ति होती है तथा मांस के

के ऊपर मोटी श्लैष्मिक कला चढ़ी रहती है। यदि आप जीभ के ऊपरी भाग को देखेंगे तो श्लैष्मिक कला में अनेक छोटे और बड़े दाने दिखाई देंगे। यह दाने सौत्रिक तंतु नाड़ी सूत्र और रक्त केशिकाओं के इकट्ठे होने से बनते हैं। जिह्वा मूल पर नौ दस
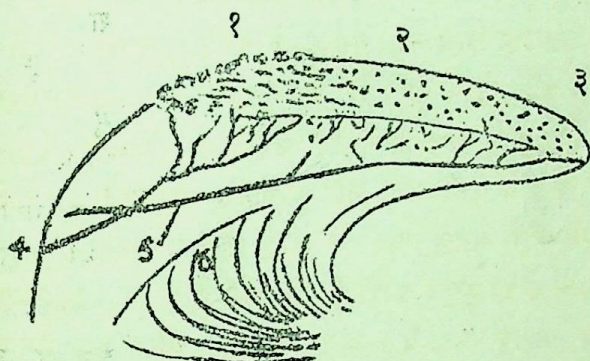
जिह्वा

(1) Bitter तीक्ष्ण केन्द्र (2) क्षार केन्द्र (3) Sweet मिष्ट केन्द्र (4) 9 th Cranial Nerve ६ वीं ज्ञान तंतू (5) Trijeminal nerve ५ वां ज्ञान तंतू (6) Muscles मांस पेशियां

बड़े २ दाने रहते हैं जो पंक्तियों में होते हैं परन्तु पीछे जाकर एक दूसरे से मिल कर एक बृहत कोण बनाती हैं और दूसरे प्रकार के दाने जीभ की नोक पर होते हैं। इन्हीं के द्वारा स्वाद की परीक्षा की जाती है क्योंकि यह रसज्ञ सेलों से बने हुए हैं। विज्ञानिकों का अनुमान है कि मधुर रस जिव्हा की नोंक से अम्ल रस किनारों और कटु जिह्वा के मूल से अच्छी प्रकार से पहिचाने जा सकते हैं।

कान Ear.
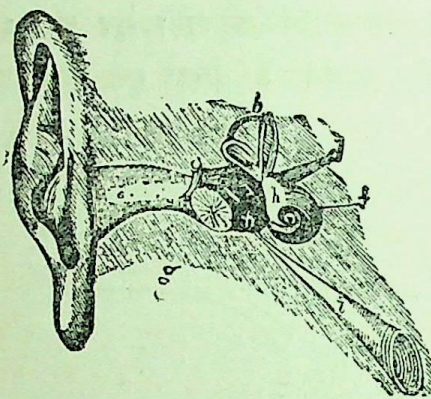
कान द्वारा ही हम हर प्रकार के शब्दों को सुन सकते हैं। कान मुख्य कर तीन भागों में विभक्त किया गया है। यथा बाह्य कर्ण मध्य कर्ण और अन्तस्थ कर्ण।

बाहरी भाग के भी दो भाग और है। एक लोर और दूसरा कर्ण शष्कुलि। आकार सीपी के समान और कारटिलेज से बनी हुई है। लौर सौत्रिक तंतु और बसा से बनी हुई है। कान की नली जो कर्ण शष्कुली के छिद्र के मध्य कर्ण की बाहरी दीवार तक रहती है। कर्णांजली कहते हैं। इस नली के बाहरी भाग में एक तिहाई भाग की दीवार कारटिलेज और शेष भाग अस्थि कृत है। इस नली पर त्वचा लगी रहती है और इस पर जो मैल जमता है उसे ही कान का मैल कहते हैं।

यदि कान की कर्णांजलि कर्ण दर्शक यंत्र से देखें तो जहां उसका अंत होता है वहां एक धूसर श्वेत चमकदार तिरछा परदा

लगा हुआ दृष्टिगोचर होता है। इसे कर्णपट कहते हैं और इसके द्वारा ही कान के दो भाग हो जाते हैं। अति वेग के साथ धमाका होने, कनपटी पर ज़ोर से थप्पड़ लगने या कान का मैल निकालते समय सींक वगैरह की चोट लग जाने से कर्णपट फट कर रक्त बहने लगता है और मनुष्य बहरा हो जाता है। कर्णपट के पास जो अस्थि है उसको मुग्दर कहते हैं। बीच की अस्थि को नेहाई कहते हैं मुग्दर का आकार हथौड़े और नेहाई का आकार स्वर्णकार की नेहाई के सदृश होता है। तीसरी अस्थी अंतःस्थ कर्ण के पास होती है इसकी शक्ल रकाब के समान होती है। मध्यभागः- यह एक छोटी सी कोठरी है। चौड़ाई चौथाई इञ्च, ऊँचाई व लम्बाई लगभग आध इञ्च होती है। बाहरी दीवार कर्णपट से बनती है। इस में दो छिद्र होते हैं। एक अंडाकार और दूसरा गोल। इस के सामने की दूसरी दीवार में एक नली का मुख होता है जो मध्य कंठ से सम्बन्ध रखती है। इस भाग में तीन अस्थियां और भी होती हैं। जो परस्पर बंधनों द्वारा बंधी रहती हैं और इस में सर्वत्र एक पतली श्लैष्मिक कला बिछी रहती है। अन्तःस्थ कर्णः-इसकी बनावट बड़ी विचित्र है। साधारण शब्दों में समझना एक प्रकार से असंभव है। इसके भी तीन भाग हैं। मध्य कर्ण के सम्मुख एक कोठरी होती है यही बीच का भाग है। इस कोठरी के पिछले भाग से तीन मुड़ी हुई नालियां जुड़ी रहती हैं। कोठरी के सामने घड़ी की कमानी की भांति मुड़ा हुआ एक भाग होता है जिसे कौकला कहते हैं।

अस्थिकृत अंतःस्थ कर्ण के तीनों भागों के भीतर झिल्लीकृत अन्तस्थ कर्ण रहता है। अस्थिकृत नालियों के भीतर झिल्ली कृत नालियां रहती हैं। अस्थिकृत कुटी में झिल्ली कृत कोष्ठ रहते हैं और अस्थिकृत कोकले में झिल्लीकृत कोकला रहता है। इस प्रकार अंतस्थ कर्ण के दो भाग हुए।

जब कोई चीज हिलती या बजती है तो उस में एक प्रकार की कंपकंपी उत्पन्न होजाती है। जिस प्रकार तालाब में पत्थर गेरने से बीच में लहर उठती है मगर किनारे तक पहुंच जाती है एवं शब्द की उत्कंपन वायु में होती हुई हमारे कान तक पहुंच कर कर्णांजली की वायु में उत्कंपन पैदा करती है।

इस नली के अंत पर कर्णपटह नामक जो झिल्ली लगी है वह इस उत्कंपन को ग्रहण करती है और कांपने लगती है। कर्णपटह के हिलने के कारण मध्य कर्ण की तीनों अस्थियां हिलती हैं। कर्णपटह जब मध्यकर्ण की ओर जाता है तो उस के भीतरी पृष्ठ से लगा हुआ मुग्दरदंड भी भीतर को हो जाता है। जब मुग्दर दंड भीतर को हटता है तो उसका शिर बाहर की ओर आता है मुग्दर के शिर से नेहाई का यंत्र बंधा हुआ है, इस कारण जब मुग्दर का शिर बाहर को गति करता है तो नेहाई का गात्र भी उसके साथ बाहर की ओर आता है। अब नेहाई का बृहत प्रवर्द्धन जो रकाब से बंधा हुआ है भीतर की ओर जाता है

जिसकी वजह से रकाब का पादान नामक अंश भी भीतर को गति करता है। फिर इसके विपरीत क्रिया होती है। कर्ण कुटी में एक जलीय तरल रहता है और शब्द की गति वहाँ पहुँच कर उस में उत्कंपन पैदा करती है। इस तरल की उत्कंपन से लोमश सेलों पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है। जिसकी सूचनायें श्रावणी नाड़ी के तारों द्वारा मस्तिष्क के श्रावण केन्द्रों को जाती हैं और हम को शब्द का ज्ञान होता है।

दांत Teeth

अगर दांत न होते तो खाद्यपदार्थ हमें साबत ही निगलने पड़ते तथा अपच आदि नाना प्रकार के रोग हमें घेरे रहते। २५-३० वर्ष की अवस्था में ३२ दांत निकल आते हैं। सोलह ऊपर और इतने ही नीचे होते हैं। इनमें से कुछ दांत पदार्थों के कतरने और कुछ चबाने के काम में आते हैं। अंतिम दो ढाढ़ कुछ समय पश्चात् निकलती हैं जिन्हें अधिकांश बोल चाल में अक्कल ढाढ़ कहते हैं। ६-७ महिने की अवस्था से दांत निकलने लगते हैं और २॥ वर्ष की अवस्था में बच्चे के मुख में लगभग २० दांत निकल आते हैं। जिन्हें दूध के दांत कहते हैं। फिर यह दांत ५.६ वर्ष की अवस्था होने पर गिरने लगते हैं और उनके स्थान पर नये दांत निकलने लगते हैं। जो फिर पूर्ण अवस्था प्राप्त होने पर गिरते हैं। नीचे के दांत ऊपर के दांतों से पहिले और जल्दी निकलते हैं। दांतों पर एक प्रकार का कड़ा परत चढ़ा रहता है

और इसके घिस जाने पर दांतों में ठंडा, गर्म खारी वस्तुओं का प्रभाव पहुंच कर दर्द और चीसें पैदा कर देता है।

दांत भीतर से खोखले होते हैं जिसे दन्त कोष्ठ कहते हैं। इसके भीतर एक कोमल पदार्थ भरा रहता है जिसमें सूक्ष्म सौत्रिक तंतु, कई प्रकार की सेलें, रक्त शिराएं और वात सूत्र रहते हैं। इस मुलायम चीज को दंत मज्जा कहते हैं। प्रत्येक दांत के मूल की शिखर में एक छोटा छिद्र होता है कि जिसमें से रक्त वाहिनियां और वात सूत्र यन्त्र कोष्ठ में प्रवेश करती हैं। अधिक ठण्डी गर्म चीज या ठण्डी के बाद एक दम गर्म या गरम के बाद एक दम ठण्डी चीज खाने या पीने से भी हानि पहुंचती है। कोई भी चीज खाने के पश्चात् कुल्ले वगैरा से दांत भली भांति साफ कर लेना चाहिये अन्यथा खराब होकर अनेक रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

मसूड़े—यह घने सौत्रिक तंतु से बने हुए हैं। एक ओर दांत ग्रीवा से और दूसरी ओर जबड़ों की अस्थि से लगे रहते हैं। सौत्रिक तन्तु के ऊपर चिकनी रक्तमय श्लैष्मिक कला लगी रहती है।

लार ग्रन्थियां—तीन बांई तरफ। एक कान के सामने और नीचे। दूसरी जिह्वा के नीचे, तीसरी हनु के नीचे। इन ग्रन्थियों में जो रस बनता है उसे थूक या राल कहते हैं। यह क्षारीय रस है। उसमें श्लेष्म, जरासी प्रोटीन और कई प्रकार के लवण घुले रहते हैं। इसके अतिरिक्त उसमें श्वेत सार से एक प्रकार की शर्करा बना देने की शक्ति होती है।
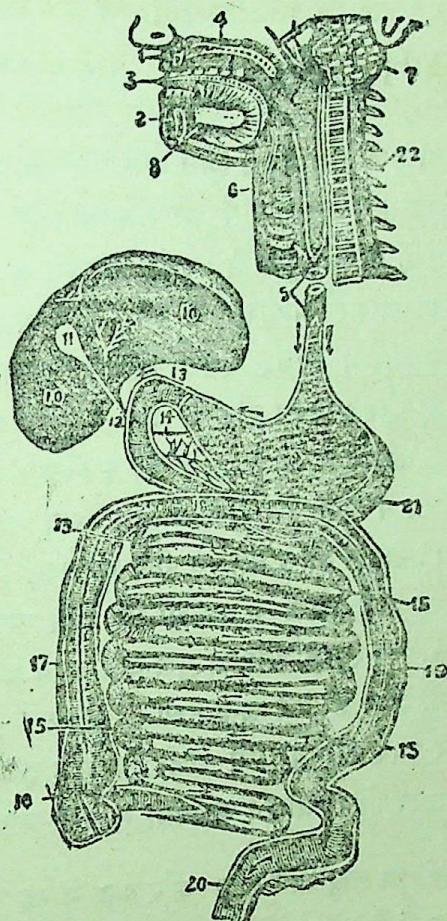
शारीरिक अवयव

गर्दन, दांत, मसूड़े, स्वर यंत्र, शुषुम्ना, टेंटुआ, छोटी बड़ी आंतें, पित्ताशय, यकृत, आमाशय आदि

अन्ननल
Alimentary canal

मुख में चबाया हुआ पदार्थ जिस मार्ग द्वारा आमाशय वगैरह अवयवों में आता है उसी मार्ग को अन्ननल कहते हैं। अन्ननल मांस के स्नायुओं से बना हुआ है। इसके सिकुड़ने से खाया हुआ भोजन धकेला जाकर आमाशय में आता है। अन्ननल गले के निचले सिरे से आरम्भ होकर श्वास नली के पिछले भाग और थोड़ी सी बायीं ओर हट कर पीठ के बासें के सहारे नीचे उतरा है। तथा पीछे फँसे हुये छाती और पेट के बिचले परदे में से होकर आमाशय में आता है और अन्तिम भाग गुदा द्वार तक चला गया है। अन्ननल श्वास नली के पीछे अवस्थित है अतः जो भोजन खाया जाता है उसका तनिक सा भी अंश श्वास नली में न चला जाय अतएव श्वास नली का मुख बन्द करने के लिये एक छोटा सा ढकना जीभ के साथ लगा हुआ है जो खाये हुये पदार्थ के गले से नीचे उतरते समय श्वास नली का मुंह ढक देता है। फलतः उसके ऊपर होकर भोजन अन्ननली में चला जाता है।

अन्न प्रनाली का कुछ भाग ग्रीवा और वक्ष में रहता है। यह सर्वत्र एक सी नहीं है वरन कहीं पतली, कहीं मोटी और कहीं थैली के समान फूल गई है। अन्न प्रनाली की लम्बाई १० इंच होती है। अन्न प्रनाली में किसी भी प्रकार का पाचक रस नहीं बनता है

वरन इसका काम केवल भोजन को कंठ से आमाशय तक ही पहुंचाना है। इसकी दीवारें मांस और सौत्रिक तन्तु से बनी हैं, भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक कला भिल्ली रहती है। श्लैष्मिक कला में लम्बाई के रुख सलवटें पड़ी रहती हैं। नली के ऊपर के भाग ऐच्छिक मांस और नीचे के भाग में अनैच्छिक मांस होता है।

टेंटुवा Trachea.

सामने की तरफ़ ग्रीवा की मध्य रेखा में टटोलने से एक कठोर और लम्बी चीज़ मालूम होती है। जब हम कोई चीज़ निगलते हैं या पानी पीते हैं तो यह ऊपर नीचे उठती व बैठती हुई दृष्टिगोचर होती है। लम्बाई ४॥ इंच और मुटाई १ इंच से कुछ कम होती है। छिद्र गोल और पिछला भाग अन्नप्रनाली से मिला रहता है। टेंटुवे का ऊपरी भाग ग्रीवा में और नीचे का वक्ष में रहता है। इसकी दीवारें कारटिलेजों के छल्लों द्वारा बनी हुई हैं। सब छल्ले परस्पर सौत्रिक तन्तुओं से बंधे हुये हैं। टेंटुवे का पिछला चपटा भाग भी इसी से ही बना हुआ है। छल्लों के भीतरी पृष्ठ पर सौत्रिक तह के ऊपर श्लैष्मिक झिल्ली लगी रहती है।

स्वरयन्त्र, Larynx.

स्वरयन्त्र नौ कारटिलेजों द्वारा निर्मित एक कोष्ठ है जो ग्रीवा के ऊपर के भाग में कंठिकास्थि के नीचे और कंठ के सामने

रहता है। कोष्ट के नीचे के भाग से टेंटुवे का आरम्भ होता है और ऊपर का भाग कंठ से सम्बन्ध रखता है। नौ कारटिलेजों से बे आ तो उसकी अगली पिछली और पार्शविक दीवारें बनती हैं। एक कारटिलेज जो पीपल के पत्ते के समान होता है इस प्रकार झुक जाता है कि उससे स्वरयन्त्र का रास्ता ढक जाता है ताकि भोजन उसके भीतर न गिर सके।

छोटी आंत
Small Intestine.

छोटी आंत २२ फुट लम्बी और व्यास १ से पौने दो इंच तक होता है। यह सर्प की भांति गेंडली मारे उदर में पड़ी रहती है। (देखो अंक १३) छोटी आंत बड़ी आंत से कम चौड़ी होती है परन्तु लम्बाई में चौगुनी होती है। इसका आरंभिक भाग घोड़े के नाल जैसा है और इसमें पित्त लाने वाली नलिका (देखो अंक ११) होती है। जिसमें होकर पित्त आंतों में आता है। (देखो अंक १२) इसका भीतरी पड़त बहुत मुलायम और रूओं से भरा होता है। इसमें बहुत सी छोटी २ अनेक थैलियां सी बनी होती हैं। आकार में लम्बाई १ इंच और चौड़ाई आधा इंच होती है। इस में भोजन के पौषण कारक तत्व को चूस लेने वाली रगें होती हैं। इन सब रगों का संयोग हो जाने से एक नल बन जाता है। यह नल उदर में से होकर छाती में जा दायीं तरफ बड़ी नस में मिल जाता है।

जब इसका एक भाग सिकुड़ता है तो दूसरा भाग फैलता है ताकि भोज्य रस धकेले जाने का नम्बर बराबर जारी रहे। क्षुद्रांत्र के अन्त तक पहुंचने के पूर्व ही आहार रस में से आवश्यक रस, रक्त और लसीका में चूसनेवाली रगों द्वारा पहुंच जाता है और शेष व्यर्थ भाग बड़ी आंत में चला जाता है। सबसे भीतर श्लैष्मिक कला और दोनों के बीच में अनैच्छिक मांस रहता है। मांस की दो तह होती हैं एक बाहरी जिस में सेलें लम्बाई के रुख बिछी रहती हैं दूसरी भीतरी इस में सेलें चौड़ाई के रुख रहती हैं।

बड़ी आंत Colon.

दाहिनी जांघ से शुरू होकर ऊपर को यकृत के अधोभाग तक जाती है (देखो अङ्क १७ वां) फिर वहां से कलेजे के पास होती हुई दायीं ओर चली गई है और वहां से फैंफड़े वाले भाग में होकर बायी पसली तक वह पेट में उतर गई है (देखो १२ वां अङ्क तीसरा भाग यह दण्ड के नीचे से आरम्भ होकर पेट की बायीं तरफ जांघ तक सीधा उतर गया है (देखो अङ्क १६ वां) बड़ी आंत की लम्बाई ५ फीट है। ऊपर जाने वाला भाग २॥ इंच का है पर आगे आकर यह आंत पतली हो गई है अतः नीचे उतरने वाला भाग १॥ इन्च से ज्यादा बड़ा नहीं है।

पित्ताशय Glall Badder.

कलेजे के नीचे जहां पित्त बनता है उसे पित्ताशय कहते हैं।

आकार नासपाती की भांति होता है देखो ११ वां अङ्क) पित्ताशय की नली आमाशय के नीचे के सिरे से आरम्भ होने वाली छोटी आंत में मिल गई है। इस नली के साथ एक दूसरी नली मिलकर आंतों में प्रवेश कर गई है। रक्त कुछ पीलाहट लिये हुये हरे रंग का क्षारीय प्रतिक्रिया वाला कड़वा द्रव्य होता है। गुरुत्व १०२६ से १०३२ तक होता है और इसमें कई प्रकार के लवण और दो प्रकार के रंग घुले रहते हैं। पित्त—पित्त-स्रोतों द्वारा पित्त प्रनाली में पहुंचता है। जब भोजन पक्वाशय में होता है तब रस अंग में जा पहुंचता है। जब भोजन पचाने के लिये इसकी आवश्यकता नहीं होती है तब यह संयुक्त पित्त स्रोत से पित्त प्रनाली में जाने के बजाय पित्ताशय में चला जाता है और वहाँ इकट्ठा रहता है।

वसा के पचाव के कारण और आत्मीकरण के लिये पित्त बड़ी आवश्यक चीज है अन्यथा वसा का अधिक भाग बिना पचा हुआ ही विष्टा द्वारा बाहर निकल जाता है। दूसरे आमाशय से आये हुये अम्ल प्रति क्रिया वाले आहार इसकी अम्लता क्षारीय पित्त और क्लोम रस के क्षार के कारण जाती रहती है और क्लोम रस का प्रभाव आहार रस पर अच्छा पड़ता है। तीसरे आंतों में पित्त कम रहने से सड़ान अधिक होता है और विष्टा अधिक दुर्गन्ध युक्त होती है।

———

यकृत Liver

यकृत आमाशय के ऊपर बांयी तरफ और यकृत के ऊपर दाहिना फुस्फुस और हृदय होता है। दाहिनी ओर से बाईं ओर तक लम्बाई ८ से १० इंच तक होती है। दाहिना भाग मोटा और चौड़ा होता है, और बाया पतला चपटा। दाहिने भाग की ऊंचाई ६-७ इंच और चौड़ाई ४—६ इंच सामने से पीछे तक होती है। कलेजे का बड़ा भाग दांई तरफ से पसलियों द्वारा ढका रहने के कारण दबाने से भी मालूम नहीं पड़ता परन्तु जब रोग होने पर कलेजा बढ़ जाता है तब दबाने से मालूम होजाता है। कलेजा सहस्त्रों बारीक दानों द्वारा बना हुआ है और उन दानों में से प्रत्येक दाने में महींन रगों का जाल फैला रहता है। रंग सुर्खी मायल भूरा होता है और वजन पोने दो सेर से कुछ कम होता है। यकृत में ही पित्त बनता है यकृत अधिकांश शर्करा रक्त में नहीं जाने देता वरन् शर्करा से शर्कराजन बना देता है।

मूत्र में जो यूरिया और यूरिक अम्ल नामक यौगिक निकला करते हैं वे भी यकृत में ही बनते रहते हैं और जो यकृत में पहुंच कर फिर शुद्ध हो जाते हैं। अजीर्ण, हृदय और फुस्फुस के रोग यकृत में विकार उत्पन्न होने से ही उत्पन्न होते है।

———

आमाशय Stomach
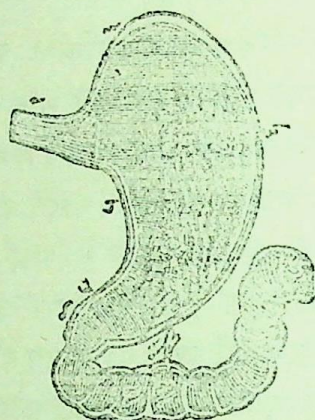
आमाशय

आमाशय को पाकस्थली भी कहते हैं। यह पेट के मध्य में बांई पसली के पास होता है। इसके बांई तरफ कलेजा, नीचे अंतड़ियां और पीछे पीठ का बांस होता है। आमाशय का ऊपरी भाग अन्ननल से और नीचे का भाग आंतों से जुड़ा रहता है। लम्बाई १२, १३ इंच और चौड़ाई ४ इन्च के लगभग होती है। आमाशय में दो छिद्र होते हैं। पहिला छिद्र बायीं तरफ हृदय के निकट होता है और इसी में होकर अन्न प्रनाली से भोजन भीतर आता है और दूसरे छिद्र द्वारा आंतों में पहुंचता है। जिसे पक्काशय का द्वार कहते हैं। आमाशय की दीवार अनैच्छिक मांस और सौत्रिक तन्तु की होती हैं। भीतरी पृष्ठ पर श्लैश्मिक कला बिछी रहती है। आमाशय जब खाली होता है तो सिकुड़ा

हुआ और रक्त कम होने के कारण पांडू रंग का वर्ण होता है परन्तु जब भोजन आजाता है तब रक्त अधिक होने के कारण लाल रंग का होता है। आमाशय की ग्रन्थियों में एक प्रकार का रस बनता है जिसे अधिकांश बोल चाल में आमाशयिक रस कहते हैं। भोजन के पहुँचते ही इस रस का बनना आरम्भ होजाता है और आध घंटे में पूर्ण रूप से तैयार होजाता है। जब तक यह रस तैयार नहीं हो पाता तब तक लाल का श्वेत सार परिवर्तक पदार्थ भोजन के श्वेत सार पर अपना असर करता रहता है ततपश्चात् चौड़े भाग से भोजन थोड़ा २ क्रमशः बायें तंग भाग में पहुंचता है। इस के दोनों द्वार मांस के संकोच प्रसार से खुलते और बन्द होते रहते हैं।

अस्थि-पिंजर Skeletion.

यदि वास्तविक रूप से विचारा जाय तो यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि समस्त शरीर का आधार केवल अस्थिपिंजर पर ही है। यदि हम शरीर पर से त्वचा, मांस आदि उतार कर फैंकदें तो फिर अस्थि पिंजर ही रह जायगा। हड्डियां कई प्रकार की होती हैं यथा गोल, चपटी, लम्बी, नरम, सख्त और कुछ हड्डियां ऐसी भी हैं जो बीच में से प्रथक २ होती हैं और पीछे उनके छोर परस्पर मिलकर एक होगये हैं। कुछ अस्थियां ऊपर से कठोर परन्तु भीतर नरम होती है। कुछ इसके विपरीत और कुछ बाहर भीतर इकसा रहती हैं। कुछ हड्डियां ऐसी हैं कि जिन में होकर नसें व रग वगैरह आर पार चली गई हैं और उन पर मांस के

तंतु बड़ी मजबूती के साथ बँधे व लिपटे रहते हैं। हड्डी जिस
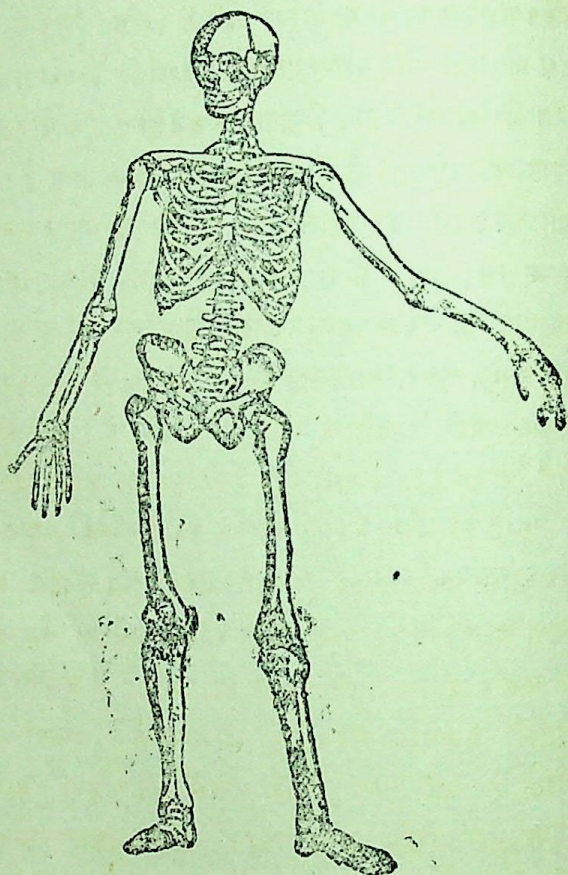
अस्थि पञ्जर।

स्थान पर आकर परस्पेर सटी होती हैं वहां कुर्चानामक पदार्थ भरा रहता है ताकि हड्डी सुगमता पूर्वक मुड़ या झुक सके।

अस्थियां मुख्यत: दो पदार्थों से बनी हैं। एक चिकना पदार्थ Animal matter और दूसरा खनिज Earthly Matter यानी खार। चिकने पदार्थों से हाड़ में दृढता उत्पन्न होती है। यदि हड्डी को जलाया जाय तो उस में से चिकना पदार्थ उड़ जाता है। फिर यदि आप उसी हड्डी को मसल कर देखोगे तो वह केवल राख रूप रह जायगी। जिस प्रकार जलाने से स्निग्ध पदार्थ उड़ जाता है एवं हड्डी को तेजाब में रखकर रासायनिक क्रियाओं द्वारा खार-वाला पदार्थ भी उड़ाया जा सकता है और फिर हड्डी रबर की भांति नरम होकर चाहें जिस तरफ मोड़ी जा सकती है। डाक्टरों का अनुमान है कि १०० भाग वाली हड्डी में निम्नांकित पदार्थ होते हैं। चिकना पदार्थ ३३ भाग, फासेट आफ लाइम खानिज पदार्थ ५१ भाग, कारबोनेट आफ लाइम १२ भाग, मगनेशिया १ भाग, क्लोराइड आफ केलशियम २ भाग, मीठा सोडा वगैराह और दूसरे प्रकार के खार १ भाग। अवस्थानुसार इन वस्तुओं में कमीवेशी भी होती रहती है। युवावस्था की अपेक्षा बाल्यावस्था में चिकना पदार्थ अधिक होता है। यही कारण है कि बालकों की हड्डियां युवावस्था वालों की अपेक्षा अधिक नरम होती हैं। निम्न प्रकार मनुष्य के शरीर की हड्डियों में परिवर्तन होता रहता है। बचपन में चिकना पदार्थ ४१ भाग, युवावस्था में २० भाग और वृद्धावस्था में १२ भाग रह जाता है। खनिज या खारपदार्थ बालकपन में ४८ भाग, और युवावस्था में ७५ भाग और बुढापे में १२ भाग रहता है।

अस्थियों तथा मोड़ स्थानों में भी एक प्रकार का पीत वर्ण का स्नेह भरा रहता है जिसको मज्जा कहते हैं। यदि वह वस्तु अस्थियों तथा जोड़ों में न होती तो संघर्षण द्वारा हड्डियां ढीली पड़ जातीं और शरीर का कोई भाग मुड़ नहीं सकता वरन् काष्टवत् सीधा रहता। डाक्टरी मतानुसार शरीर में हड्डियां इस प्रकार मानी गई हैं। मेरुदंड में ३३, खोपरी में ८, चहरे में १४, हृदय में २५ जिन में पसलियां भी सम्मिलित हैं। दोनों हाथों में ६४, पैरों में ६२, कान और दांतों में ३७ होती हैं परन्तु आयुर्वेद विज्ञान विशारदों ने ३६० हड्डियां मानी हैं। इतना फर्क केवल इसी कारण हुआ है कि आयुर्वेदाचार्यों ने मोटी और कठोर रगों व नसों और पसलियों को भी हड्डियों की गिनती में शामिल कर लिया है और पाश्चात्य डाक्टर ऐसा नहीं मानते हैं।

त्वचा Skin.

सब से प्रथम शरीर के गुप्त व आन्तरिक स्थानों के रक्षार्थ ढकने के समान ईश्वर ने त्वचा बनाई है। त्वचा ही हमारे शरीर को सर्दी गर्मी से बचाकर हमें तुरन्त सूचना देती है कि हमें किस वस्तु की आवश्यकता है या होगी और उस वस्तु का उपयोग ठीक

है या नहीं। यदि अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखा जाय तो मनुष्य के शरीर में छोटे २ हजारों रेशेदार कोष्ठचक्र दृष्टिगोचर होते हैं। इन चक्रों का आकार अनुमान से १:१५०० इंच होता है। शरीरस्थ मज्जा, मांस, मेद, रक्त आदि धातु इन्हीं चक्रों से बने हैं और इनमें एक प्रकार का बेरङ्ग दानेदार गूदा भरा रहता है जिसे पलल कहते हैं। यही वस्तु जीवन का मुख्य सार है। यह छोटे २ चक्र परस्पर मिल कर पांच प्रकार के मसाले उत्पन्न करते हैं। १-रक्त २-कौषिक कला ३—संयोजक ४—पेशिक मसाला ५—स्नायुविक मसाला। पेशिक मसाला-पेशियों के चक्रों के मिलने से बना है और शारीरिक अवयवों को हरकत करने में सहायता पहुंचाना इस का मुख्य काम है। अनुमान और स्थानानुसार त्वचा की मोटाई १/१० से इंच तक १/८ मानी गई है। स्वच्छ वायु का रोम कूपों द्वारा अन्दर प्रवेश करना तथा शरीरस्थ विषैली हानिकारक गेस को पसीने के रूप में निकालना और छोटी २ असंख्य नसों की रक्षा करना केवल त्वचा का ही प्रथम कार्य है। हमारी त्वचा में असंख्य बाल से भी पतली नसें जाल की भांति फैली हुई हैं। जिन में रात दिन उष्णरक्त का संचार होता ही रहता है और जो जीवन को सजीव रखने के लिये अति आवश्यक विषय है।

इसी से सारा शरीर ढका हुआ है। सर्दी गर्मी का त्वचा द्वारा ही ज्ञान होता है। सारी त्वचा सूक्ष्मछिद्रों से परिपूर्ण है जिन्हें रोमकूप कहते हैं। एक रुपये के समान वर्तुलाकार स्थान में सैंकड़ों

रोमरेश होते हैं। वैद्यक शास्त्र में त्वचा अवभासिनी, लोहिता, श्वेता, ताम्रा, वेदनी और मांसधरा आदि सात प्रकार की मानी गई हैं। मगर अंग्रेजी में केवल केयाकेल और ट्रहिकन दो प्रकार की मानी गई हैं। यह रोमकूप शरीर में कहीं अधिक और कहीं कम होते हैं। अनुमान से माना गया क समस्त शरीर में रोमकूप दो करोड़ पचास लाख के लगभग होते हैं। यह रोमकूप शरीर के उपचर्म की तह में होते हुए चर्म के उस सब से नीचे भाग में जाकर और परस्पर मिल गांठे बन जाती हैं जिन्हें स्वेद-ग्रन्थि के नाम से पुकारते हैं।
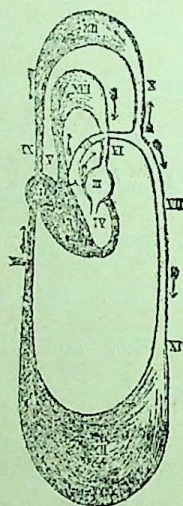
रक्त परिभ्रमण

I दायां ग्राहक कोष्ठ; II दायां क्षेपक कोष्ठ; III बायां ग्राहक कोष्ठ; IV बायां क्षेपक कोष्ठ; V फुप्फुस या धमनी; VI फुप्फुसी या

शिरा; VII मह। धमनी VIII तथा IX ऊर्ध्वगा तथा अधोगा महाशिरायें; X मस्तक तथा ऊर्ध्व शाखा को जाने वाली धमनियां XI निम्न शाखा की धमनियां, XI शिरा और धमनियों के बीच में केशिकाओं के जाल, XIII फुप्फुस के अन्दर केशिकाओं के जाल।

रक्त Blood

रक्त एक तरल धातु है, जिसके द्वारा न केवल शरीर का ही पोषण होता है बल्कि इसीसे मल धुलते रहते हैं। तरल होने के कारण खून नलियों के अन्दर बहता है, जिन को रक्त स्रोत (रग) कहते हैं। रग तीन प्रकार की होती हैं। एक वह जो हृत्पिण्ड से खून को जोर से बाहर फैंकती हैं जिसे धमनी कहते हैं। इन्हीं की फड़कती हुई गति कहीं दबाने से उङ्गलियों को मालूम होती है और 'नाड़ी' (नब्ज) कहलाती है। दूसरी वह जो कि सारे शरीर के खून को इकट्ठा करके हृत्पिण्ड की तरफ ले जाती है। इनको शिरा कहते हैं। शिराओं के मोटे जाल कहीं २ त्वचा के नीचे नीले नीले दिखाई देते हैं। तीसरी किस्म वह है जो कि अन्तिम धमनी और शिराओं के बीच में बहुत बारीक दीवारों से रक्त का पौष्टिक पदार्थ छन कर शरीर के सब भागों में और उनका मल शोषित हो कर रक्त में चला आता है।

रक्त सारे शरीर में चक्कर काटता रहता है इसका कारण यह है कि शिरा और धमनियां हृत्पिण्ड से जुड़ी रहती हैं। हृत्पिण्ड

एक मांस का बना हुआ 'पम्प' है और अपने दवाब से धमनियों के द्वारा रक्त को बाहर फैंकता है और शिराओं के द्वारा रक्त लौट कर फिर इसमें जमा होता रहता है।

निम्न चित्र को अच्छी तरह से देखिये। उसकी बायीं ओर के रक्ताशय से (१६ और २० का अङ्क) शुद्ध खून का एक नल, जिसे बड़ी नस कहते हैं, निकला है। (११ वाँ अंक) जिसकी एक बड़ी शाखा पेट में (देखो अंक १२—१२) तथा दोनों पैरों
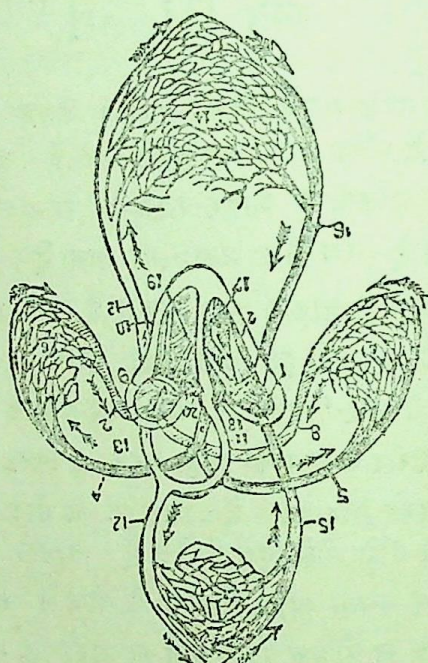
शिराओं व केश वाहिनियों द्वारा रक्त परिभ्रमण

में गयी है और दूसरी शाखाएँ दोनों हाथ तथा सिर में गयी हैं।

(अंक १२) यहाँ शाखाओं से हमारा मतलब हाथ पैर की शाखाओं से नहीं है, वरन् ऊँचे बढ़ते हुए वृक्ष की तरह इन मोटी शाखाओं से निकलने वाली बारीक नसों और उन में से निकलने वाली कितनी ही केश-वाहिनियों अर्थात् बाल की तरह सूक्ष्म नालियों के जाल से मतलब है। ये सूक्ष्म नलियाँ आगे जाकर फैल गयी हैं। इनमें शुद्ध खून फिरता रहता है। (देखो अंक १४-१४ तथा ६-६) जिस प्रकार छोटे छोटे नाले, परस्पर में मिल कर, एक बड़ी नदी का रूप धारण कर लेते हैं, अथवा जिस तरह एक वृक्ष की लम्बी-लम्बी डालियाँ, जुदा-जुदा फैल कर, एक वृक्ष का तना बन जाती है, उसी प्रकार से छोटी छोटी नसें परस्पर में मिलकर एक बड़ी नस का रूप धारण कर लेती हैं।

यह मोटी नस, शरीर के निचले भाग में से (देखो अंक १६ और एक दूसरी नस' दोनों हाथों तथा माथे की ओर की शाखाओं में से और ऊपर की ओर (देखो अंक १५ वां) की नसों में से इस प्रकार, दोनों ही नसें काले रंग के खून को लेकर रक्ताशय के दाहिने भाग में (देखो दाहिना भाग; अंक १—२) उतरती है और वहां उस खून को छोड़ देती हैं। वहां यह काला खून, दो भागों में बट कर एक-एक रग द्वारा दोनों फैफड़ों में जाता है (देखो अंक ४—५) फैफड़ों में गई हुई रगें भी शरीर की केशवाहिनी नस के साथ जाल की तरह फैल जाती हैं और फैंफड़ों में की हवा के खण्डों की

नसों के जाल के साथ मिलते ही वह काला खून वहां शुद्ध होजाता है शुद्ध हो जाने पर यह रक्त, केश नसों के द्वारा स्वच्छ रक्त के रूप में पीछे लौट आता है (देखो अंक ६-६) और रक्त जाल आगे तथा एक जगह इकट्ठा होकर एक मोटी नस का रूप धारण कर लेता है। (देखो अंक ७-८) और य: नस उस शुद्ध खून को फिर रक्ताशय की बांयी ओर के खण्ड में भेज देती है, यहां साफ रक्त सब से मोटी नस द्वारा निकला था।

इस तरह साफ खून रक्ताशय के बांये खंड से मोटी नस द्वारा निकल कर शरीर के समस्त भागों में फैल जाता है और वहां से काला खून बड़ी या मोटी नसों द्वारा रक्ताशय के दांये खंड में जा कर वहां से फिर दो भागों में विभक्त हो फेफड़ों में जाता है। फेफड़ों में यह काला खून शुद्ध होकर फिर रक्ताशय के दांये खंड में जाता है और वहां से फिर शरीर को पुष्ट करने के लिये बड़ी नस द्वारा शरीर में फैल जाता है। रक्त का ऐसा एक दौरा न होने में १॥ मिनट लग जात है। आमाशय, आतें और तिल्ली की नसों का रक्त रक्ताशय में नहीं जाता वरन् कलेजे में आता है और वहां उसे फेफड़े ही शुद्ध करते हैं।

रक्त दूषित होने पर नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रुधिर धमनियों द्वारा लौटता है उस समय उसका रंग श्याम रंग होता है और फिर वह अपनी मलीनता फुस्फुस में जाकर वायु को देता है तब वायु उसे पुनः शुद्ध कर हृदय में भेजती है और

वहां पुनः धमनियां उससे अपना पूर्ववत् काम लेती हैं। रुधिर शुद्ध करने का सर्वोत्तम उपाय केवल प्राणायाम है क्योंकि अधिक श्वास फेंफड़े और हृदय में प्राणायाम द्वारा ही प्रवेश कर सकता है। हृदय के दोनों तरफ दो कोठरियां बनी हुई हैं जिन में से एक में अशुद्ध रक्त एकत्र हो दूसरे में धीरे धीरे शुद्ध होने के वास्ते जाता रहता है और वहां से शुद्ध हो समस्त शरीर में धमनियों और स्नायुओं द्वारा फैलता और चक्कर काटता रहता है। दोनों कोठरियों में अनुमान से तीन तीन छटांक रुधिर आ सकता है।

जब हम तुरन्त प्रवाहित रक्त को अवलोकन करें तो उस समय लाल चिपचिपा सा पदार्थ प्रतीत होता है किन्तु यदि हम उसे अनुवीक्षण यन्त्र द्वारा अवलोकन करें तो उसमें छोटे छोटे लाल श्वेत कण दीख पड़ते हैं। लाल कणों का आकार गोल चपटा होता है और जो अनुमान से एक वर्ग इन्च के स्थान में एक करोड समा सकते हैं। श्वेत कण लाल कणों से अधिक बड़े होते हैं और न इनका कोई विशेष स्वरूप ही है। यह एक वर्ग इन्च स्थान में २५० तक आ सकते हैं। श्वेत कणों में प्रति शतांश ९० अंश पानी होता है जो विषैले कीटों के मारने और घाव भरने के हितार्थ उपयोगी होता है। लाल कण वाला मनुष्य बलवान और श्वेत कण वाला निर्बल होता है। रक्त पानी से भारी होता है और स्वास्थ्य-हित मनुष्य शरीर में २३ भाग रक्त का होना उचित है।

यदि आप रक्त को एक बरतन में रख दें तो कुछ समय बीतने पर वह जम जायगा और ऐसा प्रतीत होगा कि सब का सब ठोस होगया है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता यदि बरतन कुछ देर के लिये अलग रख दिया जाय तो उसमें एक लाल छिछड़ा पीले से पानी पर तैरता हुआ दिखाई देगा। छिछड़ा बरतन से कहीं चिपट जाय तो पीला पानी उसके ऊपर आ जायगा। जमने के पश्चात् जो यह पीला पानी बना उसका नाम (रक्त रस सीरम) है।

यदि आप छिछड़े को बाहर निकाल लें और उसको जल से धोवें तो कुछ देर पीछे उसका लाल रंग धुल जायगा और आपके हाथ में एक श्वेत वस्तु रह जायगी। ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि यह वस्तु सूक्ष्म तारों से बनी हुई है। छिद्रों में कुछ गोल चीजें फँसी रहती हैं. ये रक्त की सैलें और रक्त कण हैं। जिस पदार्थ से ये तार बने होते हैं उसको फाईब्रिन कहते हैं

कारटिलेज मज्जा वसा

Cartilage. Bonemarrow Fat.

शरीर के कितने ही स्थानों में श्वेत या पीले रंग की चिकनी चमकदार व लचकदार चीजें पाई जाती हैं। जिसे कारटिलेज कहते हैं। यह हड्डी के माफिक कठोर तो नहीं होती तथापि इस से वही काम निकल जाता है जो अस्थि से निकलता है। कान की

लोर और नाक की नोक इत्यादि कारटिलेज की ही बनी हुई है । दूसरी वस्तु जो जोड़ों के भीतर रहती है वह मज्जा है। मज्जा दो प्रकार की होती है एक लाल और पीला। लम्बी अस्थियों के खोखले गात्रों में पीली मज्जा और लम्बी अस्थियों के सिरों, कलाई और टखने की छोटी २ अस्थियों और कशेरुका के गात्रों इत्यादि में लाल मज्जा रहती है। पीली मज्जा में प्रति १०० भागों में ४६ भाग चर्बी और शेष ४ भाग में अन्य चीजें होती हैं। लाल मज्जा में १०० में से ७५ भाग जल के होते हैं और शेष २५ भाग सेलें सौत्रिक तंतु आदि रहते हैं। शरीर में तीसरी वस्तु वसा है। वसा मांस के ऊपर और त्वचा के नीचे होती है। केवल पलक, अंडकोष और शिशन इन तीनों स्थानों को छोड़कर अन्य शारीरिक सर्व भागों में वसा होता है। वसा ही शरीर को सर्दी गर्मी की अधिकता और न्यूनता से रक्षा करती है। अधिक वसा का बढ़ जाना स्वास्थ्यप्रद नहीं होता। सामान्यतः १०० भागों में १८ भाग वसा के होते हैं।
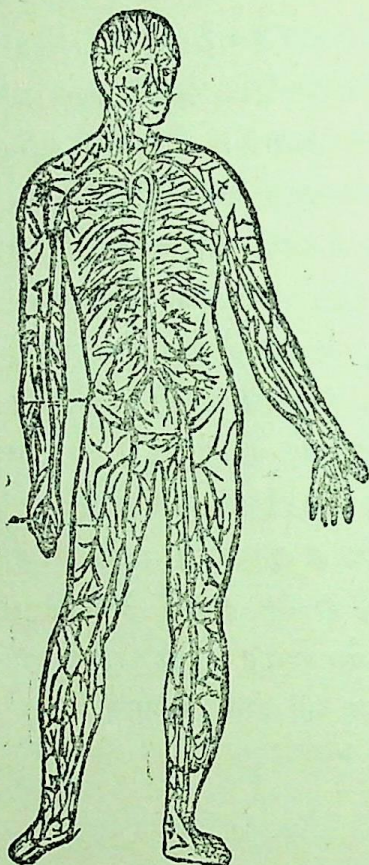
धमनी और असंख्य शाखायें।

Artery. धमनी ।

हमारे शरीर में दो प्रकार की रक्तनलिकायें होती हैं । एक वह जो रक्त को हृदय में से लेकर अंगों में पहुँचाती है । दूसरी वह जो रक्त को इकट्ठा करके हृदय में लौटा कर ले जाती है । पहली को धमनियां और दूसरी को शिरायें कहते हैं । केवल एक धमनी को छोड़ कर अन्य सब धमनियों में शुद्ध रक्त और चार शिराओं को छोड़ कर अन्य सब शिराओं में अशुद्ध रक्त रहता है । बड़ी धमनी हृदय के बांयें क्षेपक कोष्ठ से और इस में से शाखा प्रशाखा रूप में अति सूक्ष्म सैंकड़ों छोटी २ धमनियां निकल कर फैल जाती हैं जिन्हें केशिकायें कहते हैं । इन के शिराओं की दीवार में से रक्त छन २ कर तरल अंगों की सेलों से मिल कर बहता है । वोह नालियां जो केशकाओं के मिलने से बनती हैं शिरायें कहलाती हैं ।

फैंफड़े Lungs.

यह छाती में पसलियों के नीचे दोनों ओर दो पंखों के सदृश स्थित हैं । इन का आकार मधु मक्षिका के छत्ते या स्पंज की भांति है । रंग हलका बादामी और इसके कुछ नीचे ही हृत् खण्ड है जो रक्त शोधन यंत्र है और इसी से छाती में धड़कन शब्द उत्पन्न होता है । इसकी आकृति में झिल्ली के शतशः कोष्ट छिद्र

हैं। यहाँ आकर रुधिर अपनी अशुद्धता त्याग पुनः पूर्ववत् साफ और शुद्ध हो जाता है। मनुष्य एक मिनट में लगभग १५ बार श्वास लेता है और एक बार के श्वास में नाड़ी ४-५ बार चलती है। युवा मनुष्य की अपेक्षा छोटे बालक और जागृति दशा की अपेक्षा सोने की दशा में श्वास अधिक लिया जाता है। यह पसलियों से अलग एक प्रकार की झिल्ली से लिपटे हुए हैं। स्वस्थ्य और युवा मनुष्य के फैंफड़े का वजन ११-१२ छटांक होता है

फैंफड़े
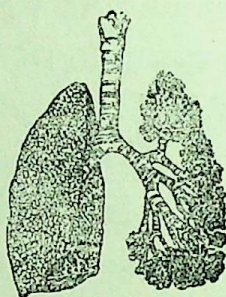
मगर दांये और बाये में कुछ अन्तर होता है। फैंफड़ों पर सूजन या किसी बीमारी के होने से या गर्भावस्था में फैंफड़ों का वजन बहुत कम हो जाता है। जिस प्रकार आमाशय का कार्य हमारे समस्त शरीर में आहारांश पहुंचाना है एवं फुफ्फुस (फैंफड़ों) ही वायु पहुंचाने का कार्य करते हैं।

फैंफड़े ओकषिजन नामक गैस को तो ग्रहण करते हैं और कार्बनद्वि ओषित गैस, उड़न शील हानिकारक पदार्थ और जलीय

वाष्प इन तीन चीजों को बाहर निकालते हैं। प्रौढ़ मनुष्य के फैंफड़ों का रंग कुछ नीलाहट लिये हुये, नवजात बालक के फैंफड़ों का रंग गुलाबी और गर्भ में गहरा लाल होता है। स्वस्थ्य मनुष्य के फैंफड़े वायु भरे रहने के कारण स्पंज की भांती जल पर तैरते रहते हैं परन्तु निमोनियां, क्षय आदि रोग होने की दशा में फैंफड़े खराब होकर ठोस हो जाने के कारण पानी में डूब जाते हैं।

गुरदे Kidney.
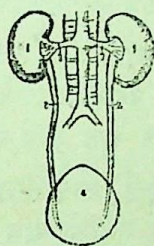
कमर की हड्डी के दोनों तरफ और चूतड़ की हड्डी से ढाई इंच ऊंचे, जिगर और तिल्ली से इनका ऊपर वाला हिस्सा ढ़का रहता है। इनमें खून से पेशाब बनता है। जितना रक्त में मामूली से ज्यादा पानी का हिस्सा होता है वह सब गुरदे की बारीक २ नसों में छन कर मूत्राशय में जमा होता रहता है। एक गुरदे का वजन ढाई छटांक से तीन छटांक तक होता है, लम्बाई चार इंच, चौड़ाई ढाई इंच और मोटाई डेढ़ इंच होती है। इसका आकार सेव के बीज के समान होता है। इनके मध्यमें दो नालियां हैं जो वस्ती

को जाती हैं। यह रुधिर से पानी का भाग [illegible] कर नालियों द्वारा वस्ती में डालती हैं।

हृदय Heart.

हृदय छाती में दोनों फैंफड़ों के बीच में स्थित है। इसका आकार नाखपाती के समान प्रायः हथेली के बराबर और वजन प्रायः पांच छटांक होता है। इसके बीच में एक खड़ी दीवार है जिससे हृदय के दो भाग दायें और बायें हो गये हैं और फिर दोनों भागों के चार भाग होते हैं। हृदय छाती के बाईं तरफ तीसरी छटी पसली के दरम्यान छाती की हड्डी के बीच वाले हिस्से से लेकर निपल के एक इंच नीचे तक स्थित है। इसकी लम्बाई पाँच इंच चौड़ाई साढ़े तीन इंच और मुटाई २॥ इंच होती है। दिल का वजन मर्दों में पांच छः छटांक होता है मगर
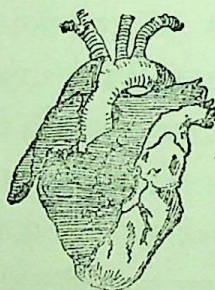
हृदय

स्त्रियों का वजन इससे एक छटांक कम होता है। अशुद्ध रक्त इसी में आकर शुद्ध होता है अतः इसका रंग काला होता है। अशुद्ध

काला रक्त हृदय के दक्षिण भाग में आकर एकत्र होता है और जब जब हृदय सुकुड़ता है तो रुधिर एक नली द्वारा चला जाता है जो दोनों फैंफड़े में जाती हैं और महीन महीन शाखा प्रशाखाओं में विभक्त हो जाती है। हृदय का दाहिना भाग काला और बायां सुर्ख होता है क्योंकि समस्त शरीर का अशुद्ध रक्त दाहिने भाग में ही आ एकत्र होता रहता है और फिर धीरे धीरे बायें भाग में जा शुद्ध हो रक्त वाहिनी नलों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में भ्रमण करता है। हृदय का ऊपरी भाग मोटा और नीचे का भाग पतला होता है।

तिल्ली Spleen.

तिल्ली का वजन ढाई छटांक से साढ़े तीन छटांक तक होता है परन्तु भोजन पचने के समय या ज्वर दशा में उसका वजन कुछ अधिक हो जाता है। लम्बाई पांच इंच. चौड़ाई तीन इंच और मुटाई डेढ़ इंच होती है। तिल्ली शरीर का बहुत ही उपयोगी अवयव है। जो पेट में बांई तरफ आमाशय से अधिकांश दबा हुआ है और कुछ बाहर की तरफ भी निकला हुआ है। इसका स्थान नवीं, बीसवीं और ग्यारहवीं पसली के सामने है। इसका परिमाण सब पुरुषों के समान नहीं होता है। यकृत के समान यहां भी रंजक पित्त रहता है। डाक्टरों का कथन है कि खून की टिकियाऐ इसी अंक में बनती हैं। जब शरीर में गर्मी अधीक

होती है तो इसके प्रभाव से रक्त भ्रमण सवेग होने लगता है और यह अंग बहुत सा रक्त अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है।

मूत्राशय Urinary bladders.

यह वह थैली है जिसमें सूत्र गुर्दों से मूत्र प्रणालियों में आकर इकट्ठा हुआ करता है। यह अंग वस्तिगह्वर के पीछे रहता है और इसके पीछे वृहत् अंग का अन्तिम भाग यानी मलाशय रहता है। स्त्रियों में मूत्राशय के पीछे गर्भाशय और गर्भाशय के पीछे मलाशय रहता है। मूत्राशय की दीवार स्वाधीन मांस से बनी होती है, भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक झिल्ली लगी रहती है। जब यह अंग खाली होता है या उसमें मूत्र थोड़ा होता है तो उसका आकार कुछ कुछ तिकोनिया सा होता है, किंतु जब वह मूत्र से खूब भर जाता है तो गोलाकार हो जाता है और वस्तिगह्वर से ऊपर को निकल कर उदर की अगली दीवार के पीछे आ लगता है।

मूत्राशय व मूत्रमार्ग

Urinary Bladder & Urethra.

म श = अधोगा महाशिरा
म ध = महा धमनी
ध = वृक्क की धमनी
श = वृक्क की शिरा
१. वृक्क
२. मूत्र प्रनाली
३. मूत्राशय
४. मूत्र प्रनाली का छिद्र
५. शुक्र स्रोत का मुख
६. प्रौस्टेट ग्रन्थि
७, शिश्न मूल ग्रन्थि
८. शिश्नमूल ग्रन्थि स्रोत छिद्र
९. मूत्र मार्ग का स्थूल भाग
१० शिश्न दण्डका (कटा हुआ)
११. शिश्न दण्डका का पिछला
नोकीला भाग
१२ मूत्र भाग
१३. शिश्न मुन्ड
१४. मूत्र बहिर्द्वार
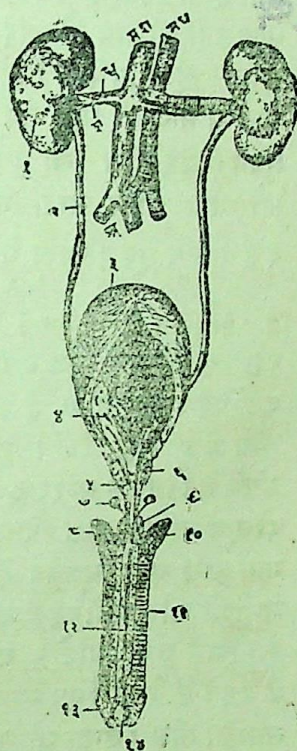
इन्द्रिय के अग्र भाग को मणि, शिश्न मुण्ड और सुपारी भी कहते हैं। देखो चित्र नं० २ में १३ अङ्क। इसके पिछाड़ी और

बराबर सटा हुआ एक गोल और कुछ गहरा चक्करदार खड्डा होता है जिसे मणिघात कहते हैं देखो चित्र नं० २ में १३ अङ्क के बराबर इस खड्डे में स्वयं ही एक प्रकार की चिकनी और बदबूदार वस्तु जमा होती रहती है जिसे शिश्न गूंथ कहते हैं। यदि यह वस्तु साफ नहीं की जाय तो उपदंश, गर्मी तथा त्वचा रोग उत्पन्न हो जाता है।मूत्राशय देखो चित्र नं०२ में अङ्क ३ मूत्राशय के नीचे के भाग से मणि के छिद्र तक मूत्र के बहने का जो रास्ता है उसे मूत्रमार्ग कहते हैं। देखो चित्र नंबर २ में अङ्क १२। मूत्र मार्ग प्रारम्भिक १ इंच लम्बा भाग प्रोटेस्ट ग्रन्थि और शेष लगभग ६ इंच भाग मूत्र दण्डिका में रहता है।

ब्लैडर (Bladder) के दोनों ओर के मूत्र पिण्डों में मूत्र पैदा होता है और मूत्र नली द्वारा मूत्र वस्ति के अगले भाग में जहां पर इकट्ठा होता है उसे मूत्राशय कहते हैं। बराबर वाले चित्र में ४ अङ्क देखें। मूत्राशय अंडे के आकार की कोथली होती है। जिसके अन्दर ३ रास्ते होते हैं। जिनमें दो रास्तों में से दो मूत्र नालियां द्वारा पेशाब मूत्राशय में आता है और तीसरे मार्ग द्वारा बाहर निकलता है। पुरुषेन्द्रिय सौत्रिक स्वेत और पीले तन्तुओं और अनैच्छिक मांस के तीन बेलदार डन्डों से निर्मित है। इनमें से दो मोटे २ डन्डे ऊपर की तरफ पास २ समान्तर में रहते हैं देखो चित्र नम्बर २ में अङ्क ११ एवं दूसरी तरफ भी समझें। तीसरा डन्डा जो भीतर से पोला होता है और जिस में मूत्र नली होती है उक्त दोनों डन्डों के बीच में नीचे की तरफ रहता है। देखो चित्र नं० २ में अङ्क १२ इन डन्डों को शिश्न डन्डिका कहते हैं।

शुक्राशय ।
Seminal Vesicle

यह दो थैलियां जो वस्ति गह्वर में मूत्राशय के पिछले भाग से लगी रहती हैं और इनके पिछाड़ी मलाशय होता है। शुक्राशय की लम्बाई लगभग २-३ इंच होती है। सिरा स्थूल व नीचे का भाग पतला और नुकीला होता है। थैली के अन्तः पार्श्व से शुक्रप्रनाली लगी रहती है। शुक्रप्रनाली का अन्त थैली के नीचे वाले नुकीले सिरे में होता है। जहां शुक्रप्रनाली शुक्राशय से जुड़ती है। वहीं से एक पतली नलिका प्रारम्भ होती है जिसे शुक्रस्रोत कहते हैं। शुक्रस्रोत प्रोस्टेट ग्रन्थि के भीतर घुस कर मूत्र मार्ग में खुलता है। शुक्रग्रन्थि में जो वस्तु बनती है वह शुक्रप्रनाली द्वारा शुक्राशय में इकट्ठा हुआ करती है और फिर यहां से मैथुन के समय शुक्रस्रोत द्वारा निकल कर मूत्र मार्ग में पहुंचती है और योनि में प्रवेश करती है। उपरोक्त सारी बातें आपको चित्र नं० ३ को भली भांति देखने से ज्ञान हो जायेंगी। शुक्राशय का चित्र पृष्ठ १५१ पर देखें।

अण्डकोष (Scrotum)
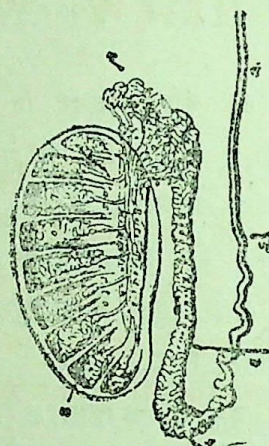
शिश्न के नीचे लटकती हुई एक थैली होती है। देखो चित्र नं० १ में अ अक्षर। इस थैली में बसा की जगह अनैच्छिक मांस की एक तह होती है। अण्डकोष को त्वचा के नीचे कृमिवत आकुञ्ज के सदृश लहर दिखाई देती हैं जो सर्दी गर्मी या ज्वरादि की दशा में अनैच्छिक मांस के प्रभाव से सिकुड़ या फैल जाती है। वृद्धावस्था में मांस शक्तिहीन होने के कारण थैली ढीली होकर नीचे की तरफ लटक जाया करती है। अण्डकोष भीतर से एक परदे द्वारा दो भागों में विभक्त है और हर एक भाग में एक मुर्गी के अंडे के आकार के अनुसार सख्त चीज होती है जिसे अण्ड या शुक्र ग्रन्थि कहते हैं।

रोगोत्पादक कीटाणु

इसके पूर्व कि हम रोगों के विषय में कुछ लिखें, यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि रोग किस २ प्रकार उत्पन्न होते हैं। इसके उत्तर में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि रोग दो प्रकार से होते हैं। एक कीटाणुओं द्वारा और दूसरा शरीर में उत्पन्न होने वाले विपर्य आहार विहार के कारण।

प्रकृति ने संसार में दो प्रकार के कीटाणु पैदा किये हैं। एक रोग उत्पादक और दूसरे रोग निवारक। इन कीटाणुओं का शरीर में सर्वत्र साम्राज्य होता है और यह इतने सूक्ष्म होते हैं, जो बिना सूक्ष्म दर्शक यंत्र (Microseope) के नहीं देखे जा सकते। मनुष्य के शरीर में कई करोड़ कीटाणु होते हैं। साधारणतया कीटाणुओं का आकार २५००० होता है और एक तोले वज़न में लगभग कई हज़ार कीटाणु चढ़ सकते हैं।

कीटाणु भी दो प्रकार से रोग उत्पन्न करते हैं। एक तो अपने डंक द्वारा काट कर दूसरे मनुष्य के रक्त में रोग का विष फैलाते हैं और दूसरा रूप यह कि कुछ कीटाणु स्वयं या उनके अंडे, भोजन, जल, श्वांस आदि द्वारा शरीर में पहुंच कर कृमि रोग रूप में

रोग उत्पन्न करते हैं। दूसरे प्रकार के रोग अप्रत्यक्ष परिवर्तनों के परिणाम से होते हैं।

यह ध्यान में रखने की एक और बात है कि प्रकृति ने हमारे शरीर में श्वेत रक्ताणु कीटाणु और पैदा कर रखे हैं जो बाहर से आने वाले रोग उत्पादक कीटाणुओं से युद्ध कर उन्हें भक्षण करने को हर समय तैयार रहते हैं। किन्तु यदि बाहर से आक्रमण करने वाले कीटाणु शरीरस्थ श्वेत रक्त कीटाणुओं से सबल हुए तो वह शरीर में अपना घर बना कर रोग उत्पन्न कर ही देते हैं।

कीटाणुओं की आकृति व उत्पत्ती

प्लेग के कीटाणु शलाकाणु, हनुस्तंभ के शलाकाणु टाइफाइज के पुच्छयुक्त शलाकाणु, क्षय के झुके हुये शलाकाणु हैजे के चन्द्राणु और उपदंश के कीटाणु लहरदार होते हैं।
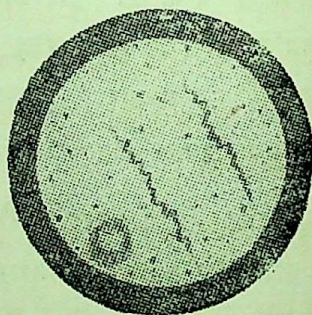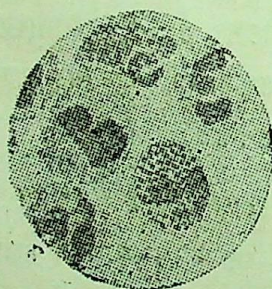
गर्मी व सुजाक के कीटाणु

कुछ कीटाणु ऐसे भी होते हैं जो भिन्न २ अवस्थाओं में भिन्न २ आकृति धारण कर लेते हैं। उन से शरीर का जीवन मूल सिकुड़ कर एक जगह एकैत्र हो जाता है और उसके चारों ओर एक मोटा कोष बन जाता है। ऐसी दशा में यह कीटाणु महिनों तक जीवत शरीर ही में पड़े रहते हैं।

इन कीटाणुओं की उत्पत्ती भी बड़ी प्रबल होती है। इन में स्त्री पुरुषों का भेद नहीं होता। एक कीटाणु लम्बाई या चौड़ाई की रुख से फट जाता है और वह एक कीटाणु के दो कीटाणु बन जाते हैं। बस इसी प्रकार एक से दो, दो से चार और चार से आठ निरंतर बनते चले जाते हैं। बहुधा आधा घन्टे से एक घन्टे में यह कीटाणु एक से दो बन जाते हैं। यदि हिसाब लगाया जाये तो मालूम हो जायेगा कि इस प्रकार एक कीटाणु से २४ घन्टे में लाखों कीटाणु तैयार हो जाते हैं। देखा कितनी भयंकर उत्पत्ती है किन्तु प्रकृति इन्हें इतना नहीं बढ़ने देती। इनको विकास के साधन नहीं मिल पाते। रोगोत्पादक कीटाणु सूर्य की गर्मी से बहुत कुछ नष्ट होते रहते हैं और बचे कुचे हमारे अन्य उपचारों से।

कीटाणु किस प्रकार विष फैलाते हैं।

इन कीटाणुओं में दो प्रकार का विष होता है। एक तो वह जो उनके शरीर के भीतर होता है और उनके मरने पर शरीर

से बाहर आकर रोग उत्पन्न करता है। दूसरा वह जो उनके शरीर के ऊपर ही रहता है।

यह कीटाणु चार प्रकार से रोग उत्पन्न करते हैं (१) व्रण (घाव) द्वारा जैसे चर्म रोग के कीट (२) वायु द्वारा जैसे हैज़ा, थाइसिस (क्षय) के कीट (३) भोजन द्वारा जैसे आन्तरिक ज्वर, विशूचिका के कीट (४) शोषण अर्थात् श्लैष्मिक कलाओं द्वारा जैसे डिपथेरिया के कीट।

ये कीटाणु अपना विष चार प्रकार से फैलाते हैं। (१) वायु द्वारा फैलाने वाले रोग जैसे चेचक, मसूरिका, (२) जल द्वारा फैलाने वाले रोग जैसे मोतीझरा आदि (३) भोजन द्वारा फैलाने वाले रोग जैसे प्रवाहिका, हैजा आदि (४) कृमियों द्वारा फैलाने वाले रोग जैसे मलेरिया, प्लेग आदि (५) संसर्ग से फैलाने वाले रोग जैसे, दाद, खाज, खुजली आदि।

कीटाणु किस प्रकार पहुँचते हैं।

यों तो प्रतिक्षण हजारों कीटाणु शरीर में हमारे श्वास लेते समय, भोजन के साथ, पानी के साथ, हवा के साथ और गंदी गुबार उड़ते समय हमारे शरीर में पहुँच जाते हैं किन्तु साथ ही इन का मुकाबिला कर इन्हें नष्ट कर देनी की शक्ति जिसे जीवनी शक्ति कहते हैं प्रकृति ने पहिले से ही हमारे शरीर में रख छोड़ी है जो इनके प्रभाव और इनके विकास को नष्ट कर देती

और उन्हें शक्तिहीन बना रोग उत्पन्न होने से रोक देती है। किन्तु किसी कारणवश यदि किसी स्थान की शक्ति क्षीण हुई और रोगोत्पादक कीटाणु सबल हुआ तो वह कीटाणु अपना अधिकार जमा लेता है और अपने सहायक कुटुम्ब की सृष्टि कर रोग उत्पन्न कर देता है।

इस जीवनी शक्ति के अतिरिक्त हमारे रक्त में एक और प्रकार के श्वेत कण रूपी जीव होते हैं जो इन कीटाणुओं पर प्रहार कर उन्हें नष्ट कर डालते हैं।

उक्त लिखित साधनों के द्वारा तो कीटाणु शरीर में पहुँचते ही हैं किन्तु इनके पहुँचने और उत्पन्न होने के कुछ और भी साधन हैं जिन में मुख्य दो हैं। एक मक्खी और दूसरा मच्छर।

मक्खी

मक्खी ही सब से अधिक रोग कीटाणु फैलाने में सहायक बनती है। मक्खी अपने अंडे गन्दी जगह में देती है जैसे गोबर, पेशाब, पखाना, उलटी, कफ आदि के स्थान पर। एक मक्खी लगभग एक बार में १५० अंडे देती है जो ८-१० घन्टों के समय में ही छोटे २ श्वेत कीट का रूप धारण कर लेते हैं जिसे लार्वा कहते हैं। लार्वा भी लगभग एक सप्ताह ज्यों का त्यों रह कर और गन्दगी से अपना पोषण लेकर बादामी रंग के गोल अन्डों में बदल जाते हैं और इस प्रकार २ सप्ताह में लगभग

आदामी खोला उतार कर पूरी मक्खी की सूरत में आजाते हैं। वर्षा ऋतु में यह अन्डे और भी जल्दी और अधिक संख्या में तैयार होते रहते हैं।

मक्खी के पावों और परों पर रोएँ होते हैं जिन पर रोग उत्पादक कीटाणु असंख्य तादाद में लिटते रहते हैं जो सहज ही में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाते हैं। दूसरे यही मक्खी गन्दी रोगोत्पादक प्राणघातक पदार्थों को खा कर अथवा

मक्खी के पैरों में असख्य कीटाणु लिपटे हुये हैं।

प्लेग की मक्खी

उनका रस पीकर आती है। बाद में उसी विषैले रस को मुख से निकाल कर किसी वस्तु या पदार्थो पर बैठ कर लगा देती है और उन्हीं पदार्थों को हम खाते हैं। बस इस प्रकार यह विषैले कीटाणु हमारे शरीर में पहुँच कर रोग का कारण बन जाते हैं।

प्लेग के रोग को हम अधिकांश में चूहे द्वारा फैलना समझते हैं किन्तु ऐसा नहीं है। यह भी मक्खी ही द्वारा उत्पन्न होता है।

प्लेग की मक्खी अन्धेरे में, जहां सूर्य की किरणें व रोशनी न पहुँच सके वहां उत्पन्न होती है और बढ़ती रहती है। यह अधिक से अधिक १॥ फुट से ऊँची नहीं उड़ सकती। इसके मुख की नली के पास दो लटकते हुए चाकू से होते हैं। इन्हीं से यह चूहों को काटती है और फल स्वरूप अनेकों कीटाणु रक्त में प्रवेश कर जाते हैं चूहे मरने लगते हैं व वायु दूषित होती है और कीटाणु फैलकर मनुष्यों को अपना शिकार बनाते हैं।

प्लेग के कीटाणु सदैव पैरों पर ही लगते हैं क्योंकि यह १-१॥ फुट से ऊँचे नहीं उड़ सकते। इसलिए जब प्लेग का प्रकोप हो रहा हो तो नंगे पैर न घूमना चाहिए बल्कि मौजे, जूते या बिरजिस वगैहरा पहन कर चलना फिरना चाहिए।

मक्खी के समान ही मच्छर भी ज्वरादि रोग उत्पादन करने में विशेष सहायक होता है। यह भी मक्खी की ही तरह

मच्छरों के अण्डे मलेरिया का मच्छर

गंदगी, सड़न और सील की जगह में अन्डे देता है जो एक प्रकार के रसदार पदार्थ से आपस में एक दूसरे से जुड़े रहते हैं और उन पर पानी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह जल पर तैरते रहते हैं और इन्ही अन्डों से कुछ समय पश्चात झिल्लियां बनती

है जिन्हें मच्छर का लार्वा कहते हैं। फिर मच्छर का थूया (खोल) सा बन जाता है और अन्त में वह मच्छर की पूरी शक्ल में परिवर्तित हो जाता है।

मच्छर अधिकतर मलेरिया रोग उत्पन्न करता है। बरसात में ही मच्छरों की उत्पत्ती अधिक होती है तभी मलेरिया का प्रकोप बढ़ता है।

जिन स्थानों में पानी भरा रहता है अथवा जहां वर्षा अधिक होती है। किन्तु जमीन रेतीली न होने के कारण पानी सूख नहीं पाता और खड्डों के रूप में भरा पड़ा रहता है वहीं मलेरिया ज्वर की अधिक होने की संभावना रहती है। यह ही कारण है कि यह ज्वर शहरों की अपेक्षा ग्रामों में अधिक होता पाया जाता है।

यह तो हुई कीटाणु विषयक बातें। अब यह बता देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि इन कीड़ों को किस प्रकार नष्ट किया जा सकता है। इस क्रिया को क्रिमिनाशक क्रिया (Disinfection) कहते हैं। क्रिमिनाशक क्रिया के भी निम्न तीन रूप होवे हैं।

१—प्राकृतिक (Natural):— शुद्ध प्राण वायु और सूर्य की सप्तरश्मियी किरणें।

२—भौतिक (Physical):— इस विधि में अग्नी, भाप, उबालना या गरम हवा का समावेश होता है। यानी इनके द्वारा रोगी के वस्त्रों, कीटाणुओं या अन्य दूषित वस्तुओं की शुद्धी की जाती

है। कितने ही जीवाणु और कीटाणु ऐसे भी हैं कि जिनके अन्डे २०,३० मिनट तक गर्म पानी में उबालने पर भी कठिनता से मर पाते हैं।

३—रासायनिकः—(Chemical disinfection):— यह रासायनिक जंतु नाशक पदार्थ तीन रूपों में व्यवहार से लाये जाते हैं। घन (Solids) जलयुक्त (Liquids) और वायुयुक्त (Gaseous) जिन का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है:—

१—रसकपूर (Mercury Perchloride) यह सस्ता, एवं तीव्रगति शील जंतु नाशक प्रयोग है और १:१००० की मात्रा में काम आता है। कपड़े धोने के लिए १:५०० की मात्रा में और जख़्म अथवा हाथ आदि धोने में इस से भी कम मात्रा में काम लेते हैं।

२—फिनाईल (Phenol) क्रेसॉल (Cresol) लईसॉल (Lysol) क्रिओलिन (Creoline) आदि डामर से बनाये जाते हैं और कार्बोलिक आम्ल का एक भाग होता है। १:२० के प्रमाण में यह द्रव्य हैजा, मोतीझरा, आंवदस्त इत्यादि रोगों के जन्तुओं को नष्ट करने के काम में लाना चाहिए। पेशाब घरों व पखानों में भी गेरने से वहां के कीटाणु मर जाते हैं। मकानों की दिवारों एवं फर्श आदि भी धोये जा सकते हैं। इन की जगह चूना (Lime) यानी भट्टी का निकला ताजा चूना भी काम में लिया जा सकता है।

चने पर क्लोरिन गैस (Chelorine Gas):— का प्रयोग करने से बिलीचिंग पाउडर (Bleaching Powder) बनता है जो जल शोधन में काम लिया जा सकता है।

३—क्लोरिन गैस (Chelorine Gas):— यह हरे रंग का जलन पहुंचाने वाला गैस है। आर्द्रता के संपर्क से इसकी क्रिया बढ़ती है। कपड़ों को जला देता है। यह केवल दीवारों, मूत्रालय, पखानों व गन्दी जगहों के धोने ही के काम आता है।

४—सल्फर-डाय-आक्साइड (Sulphur dioxide):— यह रंगहीन व तीक्ष्ण गैस गंधक से बनती है। जो केवल फर्श, दीवारों, टट्टी व पेशाबघरों के धोने के काम में आती है।

इसी प्रकार फारमेलडिहाईज (Formaldehyde) डी० डी० टी० D. D. T. Dichloro-Phenyl Trichlorethane तथा साबुन (Soap) आदि भी विसंक्रामक पदार्थ हैं।

रोग निर्णायक यन्त्र

कुछ समय पूर्व हमारे आयुर्वेदाचार्य रोगी की नाड़ी की गति द्वारा ही प्रायः रोगों की परीक्षा कर लेते थे किन्तु समय के प्रभाव से अब वह बात नहीं रही। अब तो कितने ही वैद्य भाई भी स्टेथिस्कोप और थर्मामीटर आदि यंत्रों का आश्रय लेने लगे हैं।। अब हम पाठकों के ज्ञातव्य हितार्थ कुछ आधुनिक प्रचलित ऐसे यन्त्रों का संक्षिप्त वर्णन करते हैं, जिनों से हमें रोग निदान करने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है और जिन का उपयोग करने का ज्ञान प्राप्त कर लेना प्रत्येक गृहस्थ को हितकर होगा।

थर्मामीटर Thermometer

थर्मामीटर ताप देखने का एक यंत्र होता है जैसा कि तुम अगले पृष्ट में दिया हुआ चित्र देख रहे हो। इस यंत्र में एक पतली, समान सूराख की लम्बी नली लगी रहती है। यह नली वायु रहित होती है, अन्दर पारा भरा रहता है और नली के दोनों मुँह बन्द होते हैं। इसके अन्दर बन्द पारे का आयतन तापक्रम के बढ़ने के साथ २ बढ़ता है और एक निश्चित तापक्रम के लिए इस में एक निश्चित ही आयतन होता है जो कि पतली नली पर बने हुए निश्चित निशान द्वारा दिखाया गया है।

पारे में यह अद्भुत शक्ति होती है कि वह ३५७° सेंटीग्रेड पर भाप बनता है, ३०° सेन्टीग्रेड पर जमता है और न काच की नली की दीवाल में चिपकता ही है। इस के अतिरिक्त यह एक चमकीला अपार दर्शक द्रव है। इस का Expansion बढ़ाव समान होता है। किसी डिग्री में कम और किसी में ज्यादा नहीं होता। इसीलिए पारे Mercury का नली में प्रयोग किया जाता है।

यह भी ध्यान रहे कि थर्मामीटर केवल बुखार देखने के ही काम का नहीं होता बल्कि और भी कितने ही प्रकार के थर्मामीटर होते हैं। कुछ तो इस तरह के थर्मामीटर होते हैं कि जिन के द्वारा हवाई जहाज, मोटर, आग लगने आदि की दुर्घटनायें होने के पूर्व ही हमें सूचना मिल जाती है। इस प्रकार के थर्मामीटरों को Dial or Index Thermometer कहते हैं। ऐसे थर्मामीटरों में एक सुई बिजली की घंटी से लगी रहती है। जब ताप क्रम किसी एक खास निश्चय पर पहुँचता है तो घन्टी बज कर हमें खतरे की सूचना दे देती है।

एक और प्रकार का भी थर्मामीटर होता है जिसे Maximum Minimum Thermometer कहते हैं। ऐसे थर्मामीटर दिन रात के तापक्रम की कमी वेशी बतलाते रहते हैं। इनका प्रयोग Meteorological तथा Agricultural के कामों में होता है।

तीसरे प्रकार के थर्मामीटर जो ज्वरादि देखने के काम में आते हैं इनको Clinical या Doctors थर्मामीटर कहते हैं।

अब हम अन्य थर्मामीटरों का विवरण न देकर केवल डाक्टरी थर्मामीटर का ही उल्लेख करते हैं।

डाक्टरों के व्यवहार में आने वाले थर्मामीटर की पहली बड़ी रेखा पर ६५° लिखा रहता है। ६५° और ६६° के बीच चार छोटी २ रेखाएं होती हैं। सभी एक २ डिग्री का पांचवा हिस्सा बतलाती हैं। हर एक बड़ी रेखा एक २ डिग्री पर होती है। जिस प्रकार थर्मामीटर के बड़े निशान डिग्री कहे जाते हैं उसी प्रकार छोटे निशान प्वाइंट कहलाते हैं। दो बड़े निशानों के बीच में एक छोटा निशान होता है और यह एक २ छोटे निशान दो २ प्वाइंट होते हैं अतएव १० प्वाइट की एक डिग्री होती है। ६८ डिग्री के ऊपर और ६६ डिग्री के बीच के प्रथम दो छोटी रेखाओं के बाद एक तीर के आकार का निशान बना होता है। जिस पर ६८°४ डिग्री लिखा रहता है। यह मनुष्यों की स्वाभाविक तापमान बतलाता है किन्तु यह तापमान यूरोप के लोगों के लिए है और हमारे देश में स्वाभाविक गर्मी ६६·४ से ६८° के बीच में होती है।

थर्मामीटर बगल में, जीभ के नीचे या मलद्वार में लगाने से शरीर की गर्मी मालूम हो जाती है।

थर्मामीटर
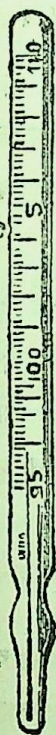
थर्मामीटर लगाने के पूर्व कुछ जनने योग्य बातें

१—थर्मामीटर लगाते समय इस बात का ध्यान रखा जाय कि बगल या मुख में दबे हुये भाग को हवा तो नहीं लग रही है अन्यथा ताप कम कम आवेगा।

२—थर्मामीटर बगल में लगाने पूर्व यह देख लेना चाहिए कि बगल में पसीना तो नहीं आरहा है, कोई कपड़ा तो बीच में नहीं आ रहा है या बाल वगैहरा तो अधिक नहीं हैं।

३—थर्मामीटर को लगाने पूर्व इसे ऊपरी हिस्सा से पकड़ कर झटका देकर पहले के चढ़े हुए पारे को ९५° डिगरी पर पहुँचा देना चाहिये।

४—थर्मामीटर लगाने के पश्चात् भलीभाँति पानी से धो कर और कपड़े से चारों तरफ पोंछ कर रखना चाहिए अन्यथा संभव है कि इसी रोग के रोग कीटाणु उसमें लगे रह जायें और उसी रोग का प्रभाव दूसरा व्यक्ति जो कि उसे व्यवहार में लारहा है उसके भी वही रोग होजाय।

थर्मामीटर कितनी देरतक लगा रहना चाहिए

इस विषय में मत भेद है कारण कोई थर्मामीटर ½ मिनिट का होता है और कोई १ मिनिट का और कोई ५ मिनिट तक का। सारांश यह है कि जितना टाइम थर्मामीटर पर लिखा हो उस से

कम होना ही नहीं चाहिए बल्कि कुछ ज्यादा ही लगाना चाहिए अन्यथा ताप क्रम उचित न आयेगा।

डाक्टरी थर्मामीटर में एक विशेष खूबी यह होती है कि इस का पारा न तो ताप से अधिक बढ़ता है और न लगाने के पश्चात् मन चाहे जितनी देर तक रखा रहे तो भी पारा अपने निशान से नीचे वापिस नहीं खिसकता जबतक कि उसे झटका देकर न उतारा जाय। इन थर्मामीटरों में हिक्स, जील और प्रापटी के थर्मामीटर अच्छे माने गये हैं।

ताप मान (Temperature)

शरीर का टेम्परेचर सर्वदा समान न रहकर घटता बढ़ता रहता है। इस के अतिरिक्त शरीर के भिन्न २ अवयवों का भिन्न २ टेम्परेचर होता है।

मुँह और बगल के टेम्परेचर में लगभग १ डिग्री से कुछ अधिक ही अन्तर होता है। इसके अतिरिक्त रास्ते चलने के पश्चात् धूप में रहने के पश्चात्, क्रोधावेश के समय, गर्म भोजन या दूध पीने के पश्चात्, ताप मान बढ़ जाता है।

अब हम पाठकों की जानकारी के लिए अगले पृष्ठों में तापमान सम्बन्धी तूलिका दे रहे हैं क्योंकि भिन्न २ रोगों, अवस्था, समय और ऋतुओं में तापमान न्यूनाधिक होता रहता है।

टाइफाइड या आन्त्रिक ज्वर में दूसरे हफ्ते में सन्ध्या के समय	१०२ या १०३° साधारण ज्वर होता है किन्तु १०५° हो तो खतरा समझना चाहिए।
नये मलेरिया ज्वर में	१०६° तक विशेष भय की बात नहीं।
नये वात रोग में	१०४° या इससे भी ऊपर बढ़ना भय को की बात है।
सूति का ज्वर में	१०५° तक होजाता है
	९७ से ९०° तक तक पतन अवस्था दिखलाती है।
हैजा के अलावा किसी भी रोग में	९३° तक उतरना खतरनाक है।
हैजा रोग में	कभी २ ८०° तक उतर आता है।
तरुण, पारी के बुखार अथवा पुराने क्षय वाले रोग में	एकाएक कम होना भय की बात है।
मृत्यु की सूचना देने वाले ज्वर में	लगातार ७ ८ दिन तक १०५ या १०६° रहना

नाम अंग, समय, ऋतु और रोग	टेम्परेचर
बगल	९८.४°
मुख	९९.५°
एक दिन का बच्चा	१००.४°
तीन दिन के बाद	९८.६°—९९.५°
१५ वर्ष तक	९८.५°
४० वर्ष तक के पुरु	९७.५°
५० वर्ष तक के पुरुष	९८°
स्त्रियों के	९८.४°
स्त्रियों का तापमान पुरुषों की अपेक्षा	कुछ अधिक
प्रातःकाल में सांयकाल की अपेक्षा	१° कम
यात्रा के पश्चात्	१° या २° अधिक
गर्म देश में	१° अधिक
ठण्डे देश में	१° कम
ग्रीष्म ऋतु में गर्म भोजन करने के पश्चात्	½° अधिक
शीत काल में	½° कम
मलेरिया बुखार, मस्तिष्क आवरक झिल्ली प्रदाह, फुसफुस प्रदाह, आरक्त ज्वर, मोहज्वर और चेचक रोग में	१०६ या १०७° तक बढ़ जाती है।
सामान्य ज्वर में	९९ से १०१° तक
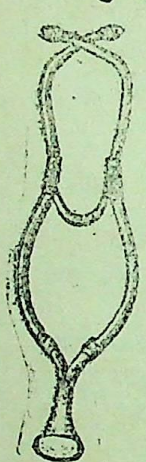
स्टेथिस्कोप

Stethoscope

यह एक ऐसा यंत्र है कि जिसके द्वारा हमें बहुत से अन्दरूनी रोगों का सहज ही में पता चल जाता है। इस यंत्र का नाम है स्टेथिस्कोप और इसके आविष्कर्ता फ्रान्स प्रदेश के त्रिवम्पर नामक शहर में १७८१ के १७ फरवरी का जन्म लेने वाला मिस्टर लैनेक है।

धातु और रबर से बना हुआ यह यंत्र शारीरिक आन्तरिक अवयवों के शब्दों को पहिचानने के लिए बड़ा ही उपयोगी प्रमाणित हुआ है। डाक्टर या परीक्षक रोगी की परीक्षा करते समय इसके निचले भाग को रोग स्थान पर एक हाथ से पकड़ कर लगाता है और ऊपर की दोनों नलियों को कानों में लगा कर शब्द सुनकर रोग निर्णय करता है। स्टेथिस्कोप ही एक ऐसा यन्त्र है जिस के द्वारा गर्भस्थ बच्चे तक की श्वांस गति आदि ज्ञात हो सकती है। भ्रूण के श्वांस शब्द चौथे पांचवें मास में सुनाई पड़ने लगता है तथा श्वांस गति से यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि भ्रूण पुलिंग है या स्त्रीलिंग।

स्टेथिस्कोप

अब हम पाठकों को इसका साधारण ज्ञान बता देना आवश्यक समझते हैं ताकि समय पड़ने पर बिना डाक्टर के वे स्वयं भी थोड़ा बहुत लाभ उठा सकें।

परीक्षा और रोग निदान

यदि छाती की परीक्षा करनी हो तो रोगी का सिर कुछ पीछे की ओर झुका देना चाहिए और दोनों हाथ नीचे की तरफ गिरा देने चाहिए। यदि पीठ की परीक्षा करनी हो तो गर्दन आगे की तरफ झुकी होनी चाहिए। श्वास जिस प्रकार सदैव लेते हैं उसी प्रकार साधारण रूप से लेना व छोड़ना चाहिये। श्वास क्रिया में परिवर्तन न होना चाहिए और न किसी प्रकार नाक या मुंह से आवाज ही करनी चाहिए।

अगर दाहिनी छाती की परीक्षा करनी हो तो रोगी का मुंह बाईं ओर को करे और बाईं छाती की परीक्षा करनी हो तो रोगी का मुँह दाहिनी ओर करना चाहिए।

छाती की परीक्षा करते समय परीक्षक को एक हाथ रोगी की पीठ और पीठ की परीक्षा करते समय छाती पर लगाना अनिवार्य है ताकि रोगी आगे पीछे न झुक सके। परीक्षा करते समय शोर गुल करना या जोर २ से बात चीत करना बन्द कर देना चाहिये।

रोग निदान के लिए श्वांस की गति गिनना आवश्यक है। ध्यान रहे कि प्रायः नाड़ी की स्पन्दन चार बार होने पर श्वांस की गति एक बार होती है। कभी २ समय, स्थान और अवस्था के अनुसार नाड़ी गति में अन्तर भी पड़ जाया करता है अर्थात् नाडी गति कम और श्वांस गति तेज हो जाती है क्योंकि ज्यों ज्यों सूर्य बढ़ता जाता है त्यों २ नाड़ी की गति कम होती जाती है और श्वांस की गति तेज होजाती है। श्वांस की गति संध्या को १८ बार और सुबह को १७ बार होती है।

स्वस्थ्य आदमी के श्वांस लेने में कोई शब्द नहीं होता लेकिन अस्वस्थ्य और रोगी मनुष्य के श्वांस में रोगानुसार भिन्न २ प्रकार के शब्द सुनाई देते हैं जैसा कि पाठकों को अगले पृष्टों को पढ़ने से विदित होगा

Inspection (दर्शन):— इस उपाय से छाती की गठन वा आकृति में किसी तरह की गडबड़ी है या नहीं यह बात ज्ञात होती है और श्वांस की चाल अथवा छाती की संचालन क्रिया का अनुभव होता है।

Palpitaion (स्पर्शन):— चिकित्सक अपनी हथेली को रोगी की छाती पर रखकर रोगी को १-२-३ की संख्या गिनने को कहे। इससे रोगी की बोली व स्वर का कम्पन व घरघराहट हथेली में मालूम होगी।

Measurement (माप):— छाती में जल संचय होने से छाती की माप बढ़ जाती है और फेंफड़ा संकुचित होने से छाती की माप कम होजाती है। प्ल्युरा की ह्रास—वृद्धि जानने के लिए फीता से छाती की माप कर लेनी चाहिए।

Percussion (आघात):— इसको अंगुली से ठोक कर परीक्षा करना कहते हैं। रोगी के जिस स्थान की परीक्षा करनी हो उस स्थान पर चिकित्सक अपने बायें हाथ की दो अंगुलियों को रख कर दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुली से धीरे २ चोट दें। इस क्रिया से जो शब्द सुनाई देता है उसे (Pulmonary Resonance) कहते हैं।

फेंफड़ा ठोस रहने पर यह शब्द खोखला निकलता है। छाती में ज्यादा मांस या चर्बी होने पर अथवा प्लुरिसी रोग की अवस्था में निहायत कम शब्द होता है।

क्षय रोग फेंफड़ों में हो जाने पर गड्ढे पड़ जाते हैं जिस के कारण खोखली अर्थात् फूटे हुये बर्तन की आवाज की तरह शब्द होता है।

Auscultation (आकर्षन): छाती के अन्दर जो शब्द होता है उसके सुनने को आस्कलटेशन कहते हैं। इसकी परीक्षा की सुविधा के लिए स्टेथिस्कोप नामक यन्त्र का व्यवहार होता है।

अधिकांश छाती के बीच, ऊपर और नीचे के भाग पर स्वर

यन्त्र पर, फैंफड़ों पर, हँसली के ऊपरी, बीच व नीचे के भाग पर, बगलों के नीचे के भाग इत्यदि पर स्टेथिस्कोप का प्रयोग किया जाता है।

भिन्न २ शब्दों की पहचान

आरोग्य दशा में छाती पर स्टेथिस्कोप लगा कर सुनें तो दो आवाजें सुनाई देगी। एक श्वांस लेने की और दूसरी छोड़ने की। श्वांस लेने के समय जो आवाज पैदा होती है वह ऐसी होती है, जैसे गेहूँ की बालों पर प्रातःकाल की हवा लगने से पैदा होती है किन्तु श्वांस छोड़ने की आवाज पहिली आवाज की अपेक्षा कुछ तेज होती है।

बच्चों की आवाज युवकों की आवाज को अपेक्षा कुछ तेज होती है। वृद्धावस्था में कम होजाती है। स्त्रियों की आवाज भी तेज होती है। स्नायुकीय पीड़ा वाले मनुष्यों की भी आवाज बहुधा तेज सुनाई देती है। वायु प्रणाली का श्वांस शब्द कन्धों की हड्डियों पर भी सुनाई देता है।

रोगावस्था में श्वांस की आवाज या तो कम या तेज या धीमी पड़ जाती है यानी अपनी साधारण स्थिति को बदल देती है। इस दशा के शब्द को रौनकाई (Rhonchi) या राल (Rales) कहते हैं।

क्षय रोगी के तीसरे दर्जे में किसी पोली चीज के अन्दर फूँकने से जैसा शब्द पैदा होता है वैसा सुनाई देता है जिस को केवरीनिअस ब्रीदिंग (Cavernous breathing) कहते हैं। इसके अतिरिक्त यदि फैंफड़े में कोई गड्ढा होजाता है और दीवार उसकी मोटी हो जाती है और खाली भी होता है तब एक विशेष तेज आवाज सुनाई देती है जिसे एम्पोरिक रैसपिरेशन (Amphoric Breathing) कहते हैं।

दमा (Asthma) की अवस्था में सीटी देने की या विशेषावस्था में कौवे की बोली की भांति सुनाई देती है।

यक्ष्मा की प्रारम्भिक दशा (Pleurisy) प्लुरिसी में दो वस्तुओं की रगड़ की भांति (Friction Sound) और विशेषावस्था में बुलबुला फटने या धातुपात के समान शब्द सुनाई पड़ता है।

न्यूमानिया (Pneumonia) में कागज फाड़ना या बाल भंजना आदि के समान और विशेषावस्था में घंटा बजने के समान सुनाई देता है।

नाड़ी की गति लिखने वाला यंत्र
Sphigmograph.

नाड़ी की गति आदि कागज पर लिख देने वाले यंत्र को स्फिगमोग्राफ कहते हैं। जो बातें वैद्य नाड़ी द्वारा ज्ञात कर सकते थे वह आज इस यंत्र द्वारा कागज पर गति स्वरूप स्वयं ही लिखी जा सकती हैं। इस यंत्र को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं यानी अग्र भाग, मध्य भाग और अन्तिम भाग।

अग्र भाग:—दोनों पहलू फीते से परिमित हैं। इस भाग के नीचे ठीक मध्य भाग में एक स्प्रिंग लगी हुई होती है जो नाड़ी (रेडियल आर्टी) पर रखी जाती है। यह नाड़ी की गति से हिलती और एक लोहे के तार द्वारा ढेकली को हिलाती है। यह ढेकली ऊपर की तरफ एक खड़े लोहे के खम्भे से लगी हुई है। इसके हिलने से सुई नाड़ी की गति के अनुसार चलती है और यंत्र में लगे हुये कागज पर रेखा अङ्कित करती है।

मध्य भाग:—के एक तरफ पहिया लगा है, जिसको फेरने से धमनी पर एक औंस से ८ औंस तक का दबाव पड़ सकता है। दूसरी तरफ एक रोलर दो फिरकियों सहित लगा हुआ है। जिसके भीतर काजल लगा हुआ कागज लगाते हैं। जिस पर अङ्कित हुए लेख द्वारा नाड़ी की गति विदित होती है।

अन्तिम भागः—यह भाग एक चौकोर सन्दूक की तरह बन्द है। जिसके ऊपर की तरफ यन्त्र को चलाने या रोकने का कांटा लगा हुआ है जिसे इधर उधर कर सकते हैं और पीछे की तरफ स्क्रू लगाने का स्थान है। इस यन्त्र को हाथ पर लगाते समय स्क्रू को घुमा कर कुंजी लगा देते हैं।

यन्त्र लगाने की रीतिः—रोगी को सीधा लिटा कर और हाथ फैलवा कर यन्त्र बांधना चाहिए। शोक, क्रोध, व्यायाम, परिश्रम तथा भोजन उपरान्त आदि अवस्थाओं में यन्त्र न लगाना चाहिये क्योंकि ऐसे समयों में नाड़ी की गति अनिश्चित रहती है।

इस यन्त्र का प्रयोग करने के पूर्व यह देख लेना अति आवश्यक है कि नाड़ी किस स्थान पर ठीक चल रही है क्योंकि कमानी ठीक उसी स्थान पर लगानी पड़ती है और जब सुई चलने लगे तब पहिये को फेर कर जितने औंस दबाव डालना हो उसी अङ्क पर उसको लगा दो। पश्चात् काजल से रंगा हुआ कागज बेलन और फिरकियों के बीच में रखकर सुई को कागज पर टिका दो। अब कांटा जो कि सन्दूक के ऊपर की तरफ है उसको एक तरफ हटादो जिससे यन्त्र चलने लगे और कागज सरकने लगे। नाड़ी की गति के अनुसार सुई से अङ्कित होता हुआ कागज जब बेलन से बाहर निकल आवे तब कांटे को दूसरी तरफ हटा दो जिससे यन्त्र का चलना बन्द हो जावे। इस अङ्कित कागज पर नाड़ी की गति के चिह्न होंगे। इस

कागज को स्थायी रखने के लिए एक भाग लोबान तथा पांच भाग रेक्टीफाइड स्प्रिट के सौलूशन में भिगो कर रख देते हैं।

नाड़ी गति की परीक्षा

नाड़ी गति के अनुसार आद्योपांत जो रेखा बनती है उसको रेसूपायरेटरी या वेसलाइन कहते हैं। इसमें नाड़ी का तनाव स्वाभाविक समझा जाता है। जब इस यन्त्र की सुई ऊपर चलती है और एक खड़ी या कुछ तिरछी लकीर न बहुत ऊंची और न बहुत नीची दक्षिण की तरफ को कुछ नोकदार कोण बना कर नीचे उतर जाती है जिसे प्राइमरी वेव कहते हैं। यह चिह्न बांये क्षेपक कोष्ट के सिकुड़ने से नाड़ी में नया रुधिर आने पर होता है।

रेखा में कोने का कम नुकीला होना स्फिगमोग्राफ की कमानी का नाड़ी पर ठीक बीच में न होने से होता है और चपटा होना (अयार्टा) के छिद्र के तंग होने के कारण से होता है। जब सुई नीचे उतर कर दूसरी लहर पैदा करती है। उसको प्रीडाई क्रोटिव वेव कहते हैं और उससे अयार्टा की किवाड़ियां बन्द होना और हृदय के सिकुड़ने का कार्य समझा जाता है। अन्त को यह लकीर सीधी लहरदार होकर वेव लाइन तक उतर जाती है जिससे हृदय गति समाप्त होना समझा जाता है।

अब हम पाठकों के ज्ञानार्थ स्फिगमोग्राफ यन्त्र द्वारा लिए गये कुछ चित्रों के नमूने दे रहे हैं। इन चित्रों में जो सफेद कागज पर काली लकीर लहरदार दिखाई दे रही हैं वह स्फिगमोग्राफ द्वारा लिए हुये चित्र में यह लकीरें सफेद होती हैं और कागज काला होता है।

स्फिगमोग्राफ
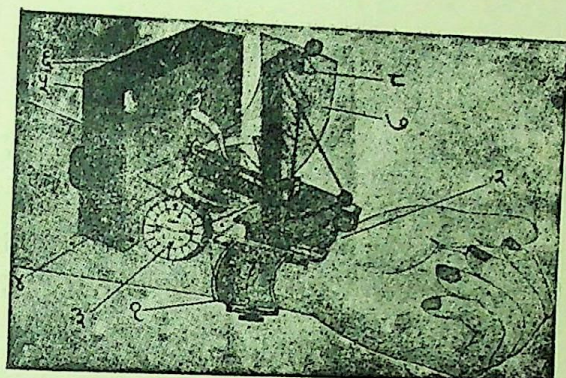
चित्र नं० १

यद्यपि इस नाड़ी चित्र में प्रायः आरोग्यावस्थानुसार गति में कही गई सब बातें पाई जाती हैं तथापि आर्टी के तनाव के कारण दबाव की न्यूनाधिकता से कुछ २ परिवर्तन भी पाया जाता है।

चित्र नं० २

यह नाड़ी चित्र एक १० वर्ष की अवस्था वाले लड़के का है जो वृक्क मूत्र स्थान की बीमारी में व्यस्त था। नाड़ी की गति ६५ प्रति मिनट थी।

चित्र नं० ३

यह नाड़ी गति चित्र क्षय रोगी का है। अवस्था २४ बर्ष और नाड़ी गति १६ प्रति मिनट थी। जब आर्टी (रक्तनाड़ी) का तनाव न्यून हो जाय और हृदय शीघ्र और अधूरा सिकुड़ कर कैपिलरीज से रुधिर शीघ्र निकल जाय तो उसे डाई क्रोटिकपल्स कहते हैं।

चित्र नं० ४
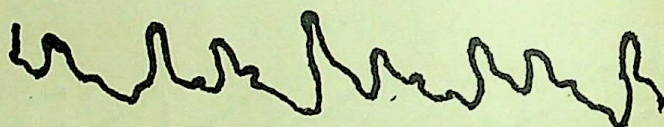
यह नाड़ी गति चित्र एक न्यूमोनिया के रोगी का है जिसकी गति प्रति मिनट में ६८ थी।

चित्र नं० ५
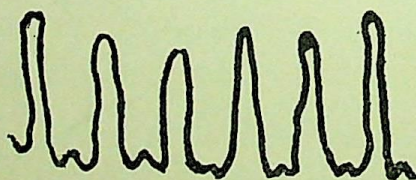
यह नाड़ी गति चित्र सन्धि शूल के रोगी का है, जिसकी गति संख्या ११० प्रति मिनट थी।

इसी प्रकार अन्य रोग पिडित रोगियों के चित्र लिये जा सकते हैं।

दोष भेद से नाड़ी की गतिः—

वात सेः—घक्र (तिरछी) और जोक, सर्प आदि की गति की तरह। पित्त सेः—उष्ण, चपल और तेज। काक, लवा, मेडक आदि की गति की तरह। कफ सेः—स्थिर (मन्द) राज हंस, मयूर, कपोत, मुर्ग और हाथी की गति की तरह।

काल भेद से नाड़ी की गतिः—स्वस्थ्य मनुष्य की नाड़ी प्रातःकाल स्निग्ध, कुछ वात मिश्रित, मध्यान्ह काल में उष्ण, काकादि की तरह पित्त गति मिश्रित और सायंकाल में दौड़ती हुई स्वच्छ बिना उपद्रव की होती है।

रोग भेद से नाड़ी की गतिः—ज्वर आने के पूर्व मन्द तथा ज्वर वेग पूर्ण होने पर अति वेगवती हो जाती है। उद्वेग, भय, क्रोध, मैथुनोपरान्त, श्रमोपरान्त आदि अवस्थाओं में वेगवती तथा अजीर्ण अवस्था, तैल, गुड़ मासादि के व्यवहारोपरान्त मन्द मन्द और लाठी की तरह कठोरपन लिये हुये चलती है। मधुर भोजन में मोर की भांति, तिक्ताहार में भू लता की भांति, अम्ल भोजन में उष्णता युक्त, कटुआहार में भ्रमर की तरह, कट्याहार में कठिनता युक्त मुरझाई हुई और लवणाधिक भोजन में वेगगति हो जाती है। मन्दाग्नि, धातु क्षीणता तथा उपवास अवस्था में हाथी व हंस समान मन्द गति किन्तु साथ ही कभी २ सर्प गति की भांति वेगवती भी हो जाती है। विशूचिका, मूत्रावरोध, पेट फूल जाने आदि में मन्दगति से चलती है।

रोगोपचार

Prevention of Diseases.

प्रायः यह देखने में आता है कि संसार में जितनी भी मृत्युयें होती हैं उन सब का कोई न कोई कारण विशेष अवश्य रहता है जिसे हम दूसरे रूप में रोग होना कह सकते हैं। किन्तु हम इन रोगों के विषय में उचित जानकारी न रखने अथवा उनका समय पर अनुकूल औषधादि द्वारा प्रबन्ध न हो सकने आदि के कारण ही अधिकांश काल के कवल बन जाते हैं। इस कारण हमारा कर्त्तव्य होजाता है कि हम रोगोपचार विषयक ज्ञान संम्पादन कर स्वयं स्वस्थ्य बनें तथा अपने अधीनस्थ व्यक्तियों की भी रक्षा कर उन्हें दीर्घजीवी बना सकें। यों तो हजारों प्रकार के रोग हैं परन्तु हम यहां स्थानाभाव के कारण केवल उन्हीं रोगों का दिगदर्शन करा रहे हैं जो सर्व साधारण को आये दिन सताते रहते हैं।

ज्वर का रूप

शरीर में उष्णता माप की वृद्धि हो जाने को ज्वर (Fever) कहते हैं साधारणतया उष्णतामाप ९८ या ९८.४० डिग्री रहता है या रहना चाहिये और इसी को हम Normal temperature के नाम से संम्बोधन करते हैं। ज्वर होने पर प्रायः भोजन से

अरुचि, शरीर जोड़ों में फूटन, मानसिक सन्ताप आदि लक्षण प्रकट होने लगते हैं। ज्वर प्रकोपावस्था के समय दोषों में विषमता प्रायः पित्त की प्रबलता एवं पाचन क्रिया में विकृति मन्दाग्नि होती है और यह उत्पन्न होता है प्रायः मिथ्याहार—विहार के सेवन तथा सर्दी का आघात होजाने पर। अब यह सिद्ध होता है कि हम ज्वर निवारण हेतु आमाशयस्थ दोषों को परिपाक दशा में लाने का प्रयत्न करें और इसका सुगम उपाय केवल लंघन ही है किन्तु वायु, क्षुधा, तृष्णा, मुखशोष, श्रम से युक्त रोगी तथा बाल, वृद्ध, गर्भणी और शक्तिहीन दुर्बल व्यक्तियों को उनकी शक्ति अनुसार ही लंघन करना चाहिए अथवा दशा व रोगानुसार नहीं भी कराना चाहिए।

विषमज्वर Malaria

विषमज्वर के विषय में वैज्ञानिकों का मत है कि यह रोग मनुष्य शरीर में रक्त कणों के अन्दर अर्द्ध चन्द्राकार रूप में पराश्रयी कीटाणु के उत्पन्न होने पर होता है। यह कीटाणु दल-दल, कीचड़, सण्डास आदि क्लेदन घृणित स्थानों में रहने वाले एनोफिलिस जाति के मच्छर द्वारा काटने पर रक्त में पैदा होने लगते हैं। इस ज्वर की तीन अवस्थायें होती हैं। प्रथम शीता-वस्था, दूसरी उष्णावस्था, तीसरी स्वेदावस्था और अनियमित काल होता है।

प्रथम अवस्था में शीतलता के कारण शरीर के रोंगटे खड़े होने अथवा कपकपी होना, वस्त्र ओढ़ने और धूप व अग्नि सेवन की इच्छा होती है। टेम्परेचर १०१° तक बढ़कर व्याकुलता, शिर-शूल, श्वांस और नाड़ी की गति बढ़ जाती है। दूसरी अवस्था में तृष्णा, अंग वेदना, मूत्र प्रवृति, शिर शूलादि उग्र रूप धारण कर लेते हैं और तीसरी अवस्था में अधिक या न्यून स्वेद आने से सभी विकार शनैः २ शान्ति होने लगते हैं। विषम ज्वर में निम्न लिखित औषधियों का उपयोग करें।

करंजादिवटी:—श्वेत करंज सींगी, अर्क मूल त्वक २-२ तोला, काली मिर्च, कुटकी, अतीस, चिरायता प्रत्येक १-१ तोला, नीम की कोमल पत्तियां, सोंठ ६-६ माशे और भीमसेनी कपूर ३ माशे। इन सब को कूट पीस कपड़छन कर पान के रस में खरल कर चने के समान गोलियां बनालें। २-२ गोलियां तीन समय ज्वर आने से पूर्व साधारण जल में सेवन करें।

महा ज्वरांकुशः—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सींगिया विष ३-३ माशा, शुद्ध धतूरे के बीज ६ माशा और सत्यानाशी की जड़ (चोक) १॥ तोला। सब को कपड़छन कर जमीरी नीम्बू और अदरख के रस में भावना दे निर्माण करे। २ से ४ रत्ती तक ज्वर आने से पूर्व ३ समय शहद के साथ दे।

निम्बादि चूर्णः—त्रिफला व त्रिकुटा ३०-३० तोला, सेंधा संचर और सांभर नमक १०-१० तोला। जवाखार २० तोला, अजवायन देशी ५० तोला, नीम पत्र शुष्क १०० तोला का चूर्ण बना ४-४ माशा की पुड़िया बनाले और प्रत्येक पुड़िया में २-२ रत्ती शंख भस्म मिलाले।

मन्थर ज्वर
Typhoide Fever.

इस ज्वर से आंतों में क्षत होजाते हैं इसलिए आन्त्रिक ज्वर और गले व छाती पर मोती के समान चमकदार दाने दिखाई देने लगते हैं इसलिए मुक्ताज्वर अथवा मोतीझरा के नाम से भी पुकारते हैं। कोई २ इसको म्यादी बुखार भी कहते हैं क्योंकि यह अपना पूरा समय लेने पर ही स्वयं उतर जाता है। प्रायः बसन्त ऋतु के अन्त में इसका आविर्भाव हुआ करता है। यह ज्वर शनैः २ बढ़ता है और अधिक से अधिक १०४-१०५ डिग्री तक पहुँच जाता है। प्लीहा कुछ बढ़ जाती है, अरुचि, शिर शूल, मलबन्ध आदि की शिकायतें होने लगती हैं। जिह्वा का अग्र भाग तथा दोनों किनारे लाल रंग के और मध्य भाग मलीन, कर्कश और कंटाकित सा दिखाई देने लगता है। अन्य ज्वरों की भांति तीव्र ज्वर होने पर भी नाड़ी गति तीव्र नहीं होती। यह ज्वर तीन चार सप्ताह में शमन हो जाता है और कभी २ उचित परिचर्या न होने पर पुनरावृति भी होजाती है। इस ज्वर में किसी २ को मूकता एवं बधिरता आदि रोग होते देखे गये हैं। इस ज्वर के रोगी को शारीरिक व मानसिक परिश्रम न देना चाहिए। पीने का पानी लवङ्गादि शृत शीत देना चाहिये। प्रातःकाल का उबला हुआ पानी सायंकाल तक और सायंकाल का सुबह तक ही देना चाहिए। न मांगने पर भी पानी पिलाते रहना चाहिए। रोगी के कमरे को साफ सुथरा और हलका

प्रकाशमय व हवादार रखना चाहिए। ज्वरावस्था में कभी २ अन-बिधे सच्चे मोती के दो या तीन दाने देते रहना चाहिए। ज्वर ठीक होने पर पथ्य व्यवस्था में मुग्दयूष व भुने बाजरे या ज्वार के दाने देना ठीक होता है। यदि मल साफ न होता हो तो बीज रहित ५-६ मुनक्का औटते समय दूध में गेर कर पिलाना चाहिए अथवा मुनक्का में काली मिर्च और सेंधव नमक मिलाकर और अग्नी पर सेक कर देना चाहिये। जब तक रोगी ज्वर मुक्त न होजाय अन्न न देना चाहिए। ज्वर मुक्त होने पर साबूदाना, मूंग की दाल जिसमें जीरा, धनिया, पीपर, सोंठ और सैंधा नमक गिरा हुआ हो देना चाहिये।

यदि दाने निकलने में देर हो तो आधी रत्ती अभ्रक भस्म और आधी रत्ती मुक्ता भस्म दोनों मिला कर शर्बत सौंफ या शर्बत गुज़ाब के साथ देना चाहिए। अथवा १ रत्ती शुद्ध केशर या १ से २ रत्ती अनबिधे मुक्ता मुनक्का के दाने में डाल कर गोली सी बना कर दें। ऊपर से गरम जल अथवा २ तोला खूबकला का क्वाथ बना कर दें। यदि रोगी की शक्ति हो तो अदरक के स्वरस, सैंधा नमक, सोंठ, मिर्च और पीपल मिला कर गले तक मुख में बार २ भर कर थूकना चाहिए। ऐसा करने से हृदय, पसलियों, शिर और गले आदि के सूखे और रूखे कफ को निकलने में सुविधा होती है।

यदि दाने निकल आवें तो ज्वर मुक्ति दशा तक ज्वरहर चूर्ण १-से ४ माशे तक अर्क गाजवान से अथवा अभ्रकादि योग १ से ४

रत्ती तक मधु के साथ दिन में ३ बार दें। दिन में एक बार खूब-कलादि क्वाथ देना चाहिए। यदि ज्वर १०४° से ऊपर होजाये तो रोगी के माथे पर सिरका, गुलाब जल और बर्फ की पट्टी रखने से ताप कम होजाती है।

ज्वरहरचूर्णः—तबासीर, छोटी इलायची, गुडूची, सत्व जहर-मोहरा खताई १–१ तोला, मुक्ता शुक्ति भस्म ३ माशा प्रवालभस्म ३ माशा, कूजा मिश्री ४॥ तोला।

इस ज्वर में:— दस्त न कराने चाहिए। यदि दस्तों की शिकायत हो तो आनन्द भैरव रस अथवा पंचामृत पर्पटी देना चाहिए। और यदि दस्त कराने की आवश्यकता ही आवे तो कोई हलकी विरेचन दे अथवा ग्लीसरीन का सिरिञ्ज दे। यदि कहीं मन्थरज्वर के साथ ही न्यूमोनिया होजावे तो ज्वर की दवाओं का प्रयोग न करके रस सिंदूर अभ्रक भस्म और मुक्ति भस्म एक २ रत्ती लेकर मधु के साथ चटावें। रोग मुक्ति होने पर अशक्तिता दूर करने के लिए—

अभ्रक भस्म सहस्र पुटी १ माशा, काशमीरी केशर १ तोला वंशलोचन, छोटी इलायची के दाने और इन्द्र यव प्रत्येक १–१ तोला, सत्वगिलोय २ तोला इन्हें कूट पीस कपड़छान कर चूर्ण बना कर ३ रत्ती से ६ रत्ती तक आवश्यकतानुसार दे।

अथवाः — मुक्ता पिष्टि १ माशा, कस्तूरी १ रत्ती, अभ्रक भस्म ४ रत्ती, मकरध्वज २ रत्ती को तुलसी स्वरस में मर्दन कर और १ चांवल से आधा रत्ती तक काम में ले। बुखार की अधीनता, तृष्णाधिक्य और व्याकुलता आदि में मृत्युञ्जय रस लाभदायक सिद्ध हुआ है।

श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया)
Pneumonia

अनियमित आहार, विहार मादक वस्तुओं के अतिसेवन, शीत आदि स्थान से अकस्मात उष्ण शुष्क स्थान में जाना अथवा इसके विपरीत होना। ज्वरादि अवस्था में शीत का आक्रमण होजाना आदि कारणों से यह ज्वर होता देखा गया है।

उपर्युक्त कारणों से वातादि दोष कुपित होकर श्वांस मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं तथा फुफ्फुसों में कफ संचित होने लगता है और शोक उत्पन्न करता है। रोगी को शीत पूर्वक ज्वर चढ़ता है। एक या दोनों पार्श्व दुःखने लगते हैं, मुख चिकना और कफयुक्त रहता है। स्टेथिस्कोप द्वारा परीक्षा करने पर रुग्ण भाग में चरचर, मरमर या खरखर आदि शब्द प्रतीत होते हैं। ज्वर १०१ से १०५ डिगरी तक बढ़ जाता है। दिन की अपेक्षा रात्रि को इसका प्रकोप अधिक बढ़ जाता है क्योंकि यह कफ प्रधान रोग है। इस श्वसनक ज्वर का भोग काल ७ दिन से ९ दिन तक का है। इस अवधि में या तो रोगी को लाभ होजाता है या मृत्यु के मुख में पहुँच जाता है। रोग बढ़ने पर पार्श्व की पीड़ा कम होने लगती है किन्तु अवरुद्धता बढ़ जाती है। नाड़ी की गति ११० तक और श्वांस ३० से ७० तक होजाता है। इस रोग में ज्वर एक दम घट जाना ठीक नहीं होता क्योंकि ऐसा होने पर (Heart fail) हृदय गति रुक जाने से मृत्यु तक होजाती देखी गई है। इसकी औषधि निम्न प्रकार हैं।

लवङ्गादि चूर्णः— शंख भस्म, प्रवाल भस्म १-१ रत्ती, अर्क दुग्ध में भस्म की हुई श्रृंग भस्म २ रत्ती और अपामार्ग क्षार १ रत्ती, इन सब को मिला कर एक मात्रा होती है और दिन भर में ऐसी ४ मात्रा दें।

यदि रोग भयंकर रूप धारण कर रहा हो तो षड्गुण बलि जारित मकरध्वज १ रत्ती और असली कस्तूरी १ रत्ती, २॥ तोले ब्रान्डी में घोट कर पिलादें। इस से अवश्य पसीना रुक जावेगा, हाथ पैर ठंडे होने के उपद्रव शान्त हो जायेंगे और टेम्परेचर बढ़ जावेगा। इसके साथ पसलियों पर ऐंटीफ्लोजिस्टाइन प्लास्टर की पट्टी चढ़ा देनी चाहिए। यदि ऐंटीफ्लोजिस्टाइन न मिले तो निम्न लेप करें।

दर्दहरलेपः— अंडी के चीआं बिना छिलके के २ तोले, पोहकरमूल असली १ तोले, बिजोरा १ तोला, अफीम २ माशा, यवखार ६ माशा। अंडी का चीयां पीस कर पृथक रखलो और अफीम को ६ माशा तारपीन के तेल में घोट लो। पोहकरमूल और बिजोरे को कूट कर छानलो। फिर इन सबको यवखार सहित तारपीन के तेल में पीसो और वेदना स्थान पर लेप करदो। थोड़ी सी सिकाई कर रूअड़ या अंडी के पत्ते बांध दो।

रात्रि को एक दो मात्रा १ तोला संजीवनी सुरा की भी देदो। इस से श्वांस कास शमन हो रोगी को निद्रा आती है। संजीवनी सुरा न हो तो (Brandy) भी दे सकते हैं।

मलावरोध अथवा कब्ज
Constipation

पाचन क्रिया में विकार पड़ने से मलावरोध होता है। मलावरोध ही सारे रोगों का मूल होता है क्योंकि मलावरोध के कारण ही जो परिपक्व रस हमारे शरीर को आवश्यक मिलना चाहिए वह नहीं मिलता। फल स्वरूप सारी शक्तियां क्षीण होने लगती हैं और हम रोगी बन जाते हैं।

भोजन का भली भांति न चबाना, भोजन के बाद या पूर्व तत्काल स्नान करना, भोजन करते समय चिन्ता, क्लेश अथवा क्रोधावस्था में रहना, भोजन के पश्चात् तुरन्त सो जाना, आवश्यकता से अधिक या गरिष्ट भोजन करना, अति वीर्य स्राव आदि मलावरोध का कारण बन जाते हैं।

मलावरोध के ही उग्र रूप को हम दूसरे शब्दों में संग्रहणी या पेचिश कहते हैं। मलावरोध के छाती में जलन होना, खट्टी डकारें आना, वास्तविक भूख न लगना आदि रूप होते हैं। मलावरोध का प्राकृतिक उपचार तो फलों का उपयोग तथा साथ लूई कोनी का उदर स्नान करना ही है। इसके अतिरिक्त निम्न औषधियां भी हितकर होती हैं।

१—आंवला, हरड, बहेड़ा और सैंधा नमक बराबर बराबर लेकर आधे तोले की मात्रा में रात्रि को सोते समय कभी २ गरम जल से फंकी ले लिया करें।

२—बिधारा, छोटी हरड़, गुलाब के फूल, सोंफ, सोंठ, असगंध, मुनक्का, बादाम, अंजीर और आलू बुखारा सम भाग लेकर नीबू के रस में घोट कर आधे २ तोले की गोली बनाले और रात को सोते समय गर्म पानी से १ या दो गोली ले लिया करें।

३—रात को गरम दूध के साथ दो तोले गुलाब का गुलकन्द ले लेने से मलाव रोध दूर होता है।

४—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागा, काली मिर्च यह सब एक २ भाग, सोंठ २ भाग, शुद्ध जमालगोटा ६ भाग। इन सब को खरल कर शीशी में भर कर रखदें। एक रत्ती प्रातःकाल खाकर ऊपर से शीतल जल पीलें दस्त साफ होजायगा। विरेचनान्तर दही चांवल का पथ्य करें।

५—अनार दाना, सफेद जीरा, सूखा पोदीना, त्रिफला, सोंठ, काला नमक, सैंधा नमक, सांभर नमक प्रत्येक १-१ तोला और सनाय की पत्ती १७ तोला। सब को कूट पीस कपड़छन चूर्ण करलें। रात को सोते समय ३ माशे चूर्ण गुनगुने जल के साथ फांक लें।

कटि शूल Lumbago

कटि शूल को त्रिक शूल भी कहते है क्योंकि कूल्हे की दोनों हड्डियां तथा पीठ के बांस की दोनों हड्डियों का जो सन्धि स्थान है उसीका नाम त्रिक स्थान है। वायु का प्रकोप होने पर शूल होने लगता है। इस की पीड़ा अचानक बढ़ने में देर नहीं लगती। कमर टूटने लगती है, चलना फिरना दूभर हो जाता है। रात्रिकाल में पीड़ा अधिक बढ़ जाती है। रोग स्थान पर कोई किसी प्रकार का रोग चिन्ह प्रतीत नहीं होता। रोगी मूत्र व मल त्याग करने में भी असमर्थ हो जाता है।

यह रोग रात को ओस में बैठे रहने अथवा सोने, भीगे वस्त्र पहिनने, वर्षा में भीगते रहने अथवा सील की जगह में रहने आदि कारणों से होता देखा गया है।

इस रोग में नाराच रस अथवा इच्छा भेदी रस देकर रोगी को जुलाब दिलादो। इसके पश्चात् प्रायः सायंकाल महारास्नादि क्वाथ के साथ महायोगराजगुग्गुल या चन्द्रप्रभा वटी देने से लाभ होता है। साथ ही विषगर्भ तैल अथवा नारायण तैल की मालिश करने और बालू रेत की पोटली से सेक करने से शीघ्र ही लाभ होता देखा गया है।

रोहिणी (Diptheria)

इस रोग में गल ग्रथियों और स्वर यंत्र में एक विशेष प्रकार का प्रदाह हो जाता है। यह संक्रामक रोग है। प्रायः २ से १० वर्ष तक के बच्चों को अधिक होता देखा गया है। इस रोग का कीटाणु (Bacillus) शलाकाणु रूप का होता है। हृदय और नाड़ी की गति कभी मंद और कभी तीव्र हो जाती है। गल ग्रन्थियों और कान के पास शोथ हो जाता है तथा स्वर स्पष्ट उच्चारण करने में कष्ट का अनुभव होता है। इस की दूषित लसिका से कंठ व जीभ पर एक प्रकार की झिल्लीसी चढ़ जाती है और श्वांस लेने में कष्ट होता है। इस की औषधि निम्न है।

१—जवाखार, तेज बल, पाढ़, रसौत, दारु हलदी, पीपल इन को पीस कर शहद में गोली बना सेवन करे। साथ ही मकोय के रस में घिस कर गले के बाहर लेप भी करना चाहिए।

प्रतिश्याय (Rheum)

प्रतिश्याय का ही बिगड़ना राजयक्ष्मा का अग्रदूत समझना चाहिए। मल मूत्रादि रोगों को रोकने, रात्रि में विशेष जागने, ओस में सोने, वर्षा में भीगने, क्रोध, शोक व चिन्ता आदि विकारों से सन्तापित रहने, पसीने में जल पीने व अधिक मैथुन आदि कारणों से प्रतिश्याय होते देखा गया है।

सिर में दर्द रहना, मुख या नाक से बलगम गिरना, हलक व कानों में खुजली होना, भोजन में अरुचि और शरीर भारी

रहना। यह जुकाम के आरम्भिक लक्षण हैं। इन लक्षणों के प्रगट होने पर भी जो भारी स्निग्ध, कफकारी, ठंडा वासी अथवा गरीष्ठ पदार्थ खाते हैं, ठंडे पानी से नहाते हैं। मैथुन का त्याग नहीं करते तो उन्हें क्षय रोग का शिकार बनना पड़ता है। जुकाम का बिलकुल न होना और बार २ जल्दी २ होना भी स्वास्थ्य के लिए अहितकर होता है। गले और नाक से बढ़कर ही जुकाम कानों तक पहुंचता है। पित्त नलिका में जुकाम अनुचित खान पान एवं उसमें जलन उत्पन्न हो जाने के कारण ही होता है और वह शनैः २ पांडू रोग का रूप धारण करने लगता है। इस रोग में निम्न औषधियां हितकर होती हैं।

१—पंच प्रवाल रसः—प्रवाल भस्म २ तोला, कौड़ी भस्म संख भस्म शुक्ती भस्म और मुक्ता भस्म प्रत्येक ३-३ माशा लेकर खरल में घोटले। १ से ४ रत्ती तक सीतोपलादि चूर्ण में मिला शर्बत बनफसा से ले।

२—व्योषादि वटीः—सोंठ, काली मिर्च, पीपल, चित्रक, तालीस पत्र, अमलवेत और जीरा। ये सब सम भाग ले। इलायची, तेजपात, दाल चीनी चतुर्थांश। इन सब का चूर्ण कर गुड़ में वेर के समान गोली बनाले। प्रातः सायं १-१ गोली गरम पानी से ले' अथवा सायंकाल प्रातःकाल जुशादा की पुड़िया औटा कर और मिश्री मिलाकर ले।

रक्त और चर्म रोग
Skin disease & Leprosy

यह तो सभी जानते और मानते हैं कि रक्त के दूषित होने पर ही चर्म रोगादि उत्पन्न होते हैं। रक्त विकार सम्बन्धी सब से भयंकर रोग कुष्ठ रोग है। आयुर्वेद में ७ महाकुष्ठ और ११ क्षुद्र कुष्ठ माने गये हैं।

स्पर्श का न जानना, स्वेद न होना, विवर्णता, रोम हर्ष, खुजलाहट, अंग सुप्ति, दाह आदि होना कुष्ठ के पूर्व रूप हैं। कुष्ठ रोग में यदि रूखापन, शोष, पीड़ा, शूल, कठोरपन, खरदरापन, चर्म का रंग कालिमा लिए हुये रक्त वर्ण हो तो वात प्रधान समझना चाहिए। जलन, ललाई, स्राव, कच्ची गंध गीलापन हो तो पित्त की प्रधानता हो। यदि सफेदी, ठंडापन खुजलाहट, ऊंचापन, स्नेह होकर कोड़े पड़ जायें तो कफ की प्रबलता समझना चाहिए। वायु प्रधान कोढ़ों में घृत पान कराना, कफ प्रधान में वमन और पित्त प्रधान कुष्ठों में विरेचन और रक्त-मोक्षण कराना चाहिए। यह रोग मछली या मांस का दूध के साथ सेवन करने से, गुड़, तेल, मिर्च खटाई आदि का अधिक व्यवहार करना, अधिक भोजन के बाद व्यायाम करना, वेगों के रोकने से और उपदंश आदि घृणित रोगों के होने पर इस रोग के होने की सम्भावना रहती है।

एलौपैथिक वाले इसे छूत की बीमारी बतलाते हैं। यह कीटाणु राज यक्ष्मा के कीटाणु की आकृती से बहुत कुछ मिलता जुलता होता है और शरीर में सामूहिक रूप में रहते हैं। कुष्ठ कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश होते ही शीघ्र रोगोत्पत्ती नहीं हो पाती बल्कि पांच सात वर्ष तक का समय लग जाता है।

तदन्तर बड़ी २ नाड़ियों में फैलते हुए कीटाणु अन्तः प्रकोष्ठास्थि पर प्रभाव गेरते हैं। फलस्वरूप हाथ पैरों में घाव होकर अन्त में अस्थियां गलने लगती हैं। उग्ररूप होने पर नाक और आंखों पर प्रभाव होने लगता है और रोगी की सूरत को बिगाड़ देते हैं।

कुष्ठ रोग के लिए खदिर सर्वश्रेष्ठ औषधि है। यह खदिर महाखदिर घृत, खदिरारिष्ठ, खदिराष्टक क्वाथ तथा चूर्ण आदि के रूप में उपयोग किया जा सकता है। गन्धक भी उपयोगी होता है। इसके अतिरिक्त महामरिच्यादि तैल, महाचन्दनादि तैल, गुडूच्यादि तैल आदि भी उपयोगी होता है। मंजिष्ठादिक्वाथ आरोग्यबर्धनी रस, केसरादिवटी आदि भी हितकर हैं। लगाने के लिए चालमोगरा का तेल उपयोगी होता है।

पूर्णचन्द्रलेपः—करंज के बीज, पवाड़ के बीज, नीमकी छाल गीलोय, बावची, कूठ, हरताल, काली मिर्च, नागरमोथा और गौ मूत्र की कीचड़। इस सबको सम भाग लेकर महीन पीस कर

लेप करे तो जीर्ण से जीर्ण कुष्ठ भी ३-४ मास में अच्छा होता देखा गया है।

अर्कमुंडीः—मुंडी, नीम पाञ्चाङ्ग, ब्रह्म दण्डी, वनकटेली प्रत्येक ५-५ सेर। इन्द्रायन का गूदा २॥ सेर, चिरायता ११ सेर मजीठ १ सेर, शीशम की छाल ५ सेर, शिरस की छाल १। सेर लेकर नीम मद ६० सेर में भीगो कर अर्क निकाल ले। प्रथम शक्कर मिला कर ३ माशा चोबचीनी का चूर्ण फांक ले और फिर ४ तोला अर्क पी ले।

कुष्ट के अन्तरगत होने वाले रोग

१—विचर्चिका (छाजन):— पञ्चकर्म द्वारा शरीर शुद्ध करा कर शुद्ध गन्धक २ रत्ती मधु के साथ प्रातःसायं चाटा करे और रस कपूर, मुर्दासङ्ग, मोम, छोटी इलायची के बीज, कत्था प्रत्येक ६-६ माशा लेकर, १०० बार धुला हुआ कांसी के पात्र में घृत २ तोला लेकर उक्त चीजें रसवत् घोट ले और मोम को गर्म कर मिला ले और छाजन पर लगावे।

२—सांप का तैल नारियल के तैल में मिला कर लगाने से शीघ्र लाभ होता देखा गया है।

दद्रुः—(Ringworn) खुजली युक्त लाल २ गूमड़ियों के उठे हुए मंडल को दद्रु कहते हैं। यह सूखा, गीला, काला आदि अनेक प्रकार के होते हैं। यह रोग मलावरोध होने पर और

वर्षा ऋतु में अधिक जोर पकड़ता है। यह भी छूत का रोग है। रोगी के स्पर्श करने अथवा उसके वस्त्रादि पहिनने से दूसरे के भी होजाता है। दाद की उत्पत्ती वनस्पतींय कीटाणु (Fungus) से होती है।

औषधिः—गंधक, कत्था, नीलाथोथा, सुहागा चौकिया, चारों चीजें बराबर नीबू के रस में पीस कर लेप कर दो।

प्रथम पंच कर्म द्वारा शरीर की शुद्धि करले तो अच्छा है। कैशोर गूगल या शुद्ध गंधक कम से कम ३ मास तक सेवन करे और दद्रु के स्थान पर अफीम, पवांर के बीज, नौसादर, खदिर छाल का चूर्ण को नीबू के रस में घोट मलहम बना लगावे।

अथवाः— राल, गन्धक, कच्चा सुहागा और मिश्री प्रत्येक सम भाग लेकर रसवत् घोट कर रख ले और दिन में २--३ बार दाद के स्थान को खुजला कर लगावे।

पामा खुजलीः—(Scabies or Itch) दाद और खुजली से युक्त बहुत बारीक २ गूमड़ियाँ जिनमें से पानी निकलता हो उसे पामा कहते हैं। यह रोग सांसर्गिक होता है। यह प्रायः पहले हाथ पैरों की उंगलियों के बीच और अण्ड कोषों में होती है।

इसके रोग के रोगी को प्रथम 'मंजिष्ठादिकाथ' अथवा मंजिष्ठादिअर्क पिलाना चाहिए तथा रात को सोते समय "मरिचार्यादि तैल" की मालिश करनी चाहिए।

अथवाः— शाहतरा, चिरायता प्रत्येक ६-६ माशा रात को भिगो दो और प्रातः काल मैसल छान कर शहद में मिला कर कमसे कम १५ दिवस पीओ। घी का अधिक प्रयोग करो और गुड़, तेल, खटाई व गर्म मशालों को छोड़ दो।

अथवाः— खालिस सरसों का तेल आध पाव लेकर उस में २ तोला मैनसिल पीस कर तथा ७ दाने भिलावे डाल कर पकाओ और जब भिलावे जल जायें तब एक बर्तन में पानी भर कर ऊपर से तेल का बर्तन उस में छोड़ दो। पानी पर तेल पैर जायगा। उसे भर कर शीशी में रखलो और काम में लो।

अर्दित (लकवा) पक्षाघात
Paralysis

अति उच्च स्वर से बोलने, अति कठिन द्रव्य भोजन करने काटने और चबने से जोर, से हँसने, जंभाई लेने, सामर्थ से अधिक बोझ उठाने से बायु कुपित हो पक्षाघात का कारण बन जाती है। शीत अथवा वायु के कुपित होने तथा आहार विहार में विपर्य भाव होने से भी पक्षघात होता देखा गया है।

जब वायु कुपित होकर नीचे, ऊपर या टेढ़ी गति वाली रक्त नाड़ियों में प्रविष्ट हो जाता है तो शरीर के उस अंश में शिथिलता उत्पन्न कर उसे बेकार कर देता है। अर्थात् वह संज्ञा

हीन हो जाता है। इसके उत्पन्न होने से मुख का टेढ़ा होजाना, ग्रीवा का झुक जाना, शिर का कांपना, वाणी का न निकलना अथवा अस्पष्ट शब्दों का उच्चारण होना, नेत्रों में विकृति आदि अनेक प्रकार के उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं।

यह रोग प्रायः शरीर के एक बाजू में हुआ करता है। इसे हेमीप्लिजिया (Hemiplegia) कहते हैं। किसी समय शरीर के निचले भाग यानी कुल्हे, जांघ, पैर आदि पर होता है और इसे पैरोप्लिजिया (Paraplegia) कहते हैं और हिन्दी में अर्द्धाङ्ग पक्षाघात कहते हैं। केवल वात का पक्षाघात कष्ट साध्य, संसृष्ट वात का पक्षाघात साध्य और धातुक्षयज पक्षाघात असाध्य माना गया है।

चिकित्सा करने के पूर्व इस बात पर विचार अवश्य कर लेना चाहिए कि वात व्याधि साम है या निराम। यदि वात साम हो तो आमक्षय करके चिकित्सा करे और यदि निराम हो तो औषधि के साथ पुष्टि कारक पदार्थों का सेवन कराना उपयोगी होता है। जीर्ण वात रोगों में कुचला और उपदंश सम्बन्धी वात व्याधि में हरताल या पारद आदि का प्रयोग लाभदायक होता है। प्रथमावस्था में रोगी को कभी भी अन्न भोजन न करने दे। दो तीन दिन के उपवास के बाद जौ का मंडा, साबूदाना, मूंग का पानी आदि दे। मुर्गा, कबूतर के मांस का यूष अथवा मधु, गौ दुग्ध, आदि भी पूर्ण क्षुधा लगने पर दे। बैंगन, करेला, पक्का आम

व पपीता आदि खाना चाहिए। मद्य पान करना, गुरुपाक, तीक्ष्ण मिर्च, रूक्ष और अम्ल द्रव्य भोजन, मल मूत्रादि रोगों का रोकना और मैथुन आदि से बचना चाहिए। पक्षाघात के रोगी को मानसिक चिन्ताओं से रहित रह कर हृदय के स्पन्दन अथवा शक्ति को तीव्र न होने देना चाहिए। निम्न लिखित औषधि पक्षाघात के लिए बड़ी ही उपयोगी प्रमाणित हुई है।

१—योगराजगुग्गुलः—सोंठ, पीपलामूल, चव्य, काली मीर्च, चीते की छाल, भुनी हींग, अजमोद, सरसों, सफेद जीरा, स्याह जीरा, संभालू के बीज, इन्द्रजौ, पाढ़, वाय विडंग, गजपीपर, कुटकी, अतीस, भाङ्गी की जड़, बच, मरोड़ फली, प्रत्येक १-१ तोला, त्रिफला ४० तोले और शुद्ध गूगल ६० तोले। सिवाय गूगल के उपरोक्त दवाओं को कूट पीसकर कपड़छन करलो। फिर इस चूर्ण और गूगल को लोहे की कढ़ाई में डाल कर लोहे के ही डंडे से खूब घोटो और ३-३ माशे की गोलियां बना कर शीशी में भर रखलो। सुबह दो गोली पानी से लेते रहो। यह गूगल जरा व्याधि नाशक रसायन है।

इससे पक्षाघात को ही लाभ नहीं पहुँचता बल्कि पृथक २ अनुपान से पृथक २ रोगों में लाभ पहुँचता है जैसा कि नीचे दर्शित किया गया है।

वात रोग में रास्ना, प्रेमह में दारू हल्दी, वात रक्त में गिलोय, पांडू रोग में गौ मूत्र, मेद वृद्धि में शहद, समस्त कोढ़ों में नीम,

आम वात में गिलोय, नेत्र रोग में त्रिफला, उदर रोग में पुनर्वा, पित्त रोग में काकोली और कफ रोगों में अमल तास के काढ़े के साथ देने से लाभ होता देखा गया है।

नारायण तैलः—बेलगिरी, अरणी, सोना पाठा, पाड़, महानीम, प्रसारिणी, असगंध, बरियारा, गुलसकरी, ककई, गोखरू, पुनवर्नवा प्रत्येक १०-१० तोला। इन सब को कूट पीस कर २६ सेर पानी में औटाओ और चौथाई रहने पर छान कर रखलो—फिर

सांफ, देवदारू, बालछड़, छरीला, वच, लाल चन्दन, तगर, कूट, इलायची, सरिवन, पिठवन, मुगवन, मसबन, रास्ना, असगंध, सेंधा नमक, पुनर्वा प्रत्येक २-२ तोला लेकर पानी के साथ चटनी की भांति पीसले।

इस के बाद १६ सेर पानी में एक सेर शतावर को औटाओ और जब ४ सेर पानी रह जाय तब मल कर काढा बनालो। फिर काली तिल्ली का तैल २ सेर गाय या बकरी का दूध ८ सेर। शतावर का उक्त काढा ४ सेर और ऊपर लिखी हुई दवाओं का काढा ६॥ सेर। इन सब को इकट्ठा कर मन्द अग्नि से पकाओ। जब दूध और काढ़े का जल जल कर दूध मात्र रह जाय उतार कर छान कर शीशी में भरलो। यह तैल आठ प्रकार के वात रोगों में लाभ दिखाता है।

श्वास

कहावत मशहूर है "दमा दम के साथ" जाता है। इस रोग में फैंफड़े को वायु भेजने वाली नलियां जोकि छोटी २ मांस पेशियों के द्वारा ढकी हुई हैं, उनमें आक्षेप होने से सांस लेने में कष्ट होता है और गला सायं २ करता है। आयुर्वेदानुसार पांच प्रकार के श्वास माने गये हैं। किन्तु मुख्य इसके दो रूप होते हैं। एक आर्द्र और दूसरा शुष्क।

आर्द्र श्वासः—इस में भोजनादि का रक्तादि न बनकर कफ बन जाता है और कफ निकलने में विशेष कष्ट भी नहीं होता किन्तु धातुएं न बनने से रोगी शनैः २ क्षीणता को प्राप्त होता जाता है।

शुष्क कासः—इस रोग के उठते ही कपोत की तरह रोगी घूघू किया करता है। बैठे रहने से आराम मिलता है अतः रोगी रात को भी खटिया का सहारा लेकर बैठा रहता है। बड़ी देर तक खांसते रहने पर थोड़ा सा कफ निकल पाता है और थोड़ी देर के लिए रोगी को शान्ति मिल जाती है किन्तु कुछ समय बाद ही फिर वही दौरा शुरू होने लगता है। दोनों प्रकार के रोग की औषधि निम्न प्रकार है।

मल्ल वटीः-शुद्ध संखिया १ तोला, पापड़ीखैर २ तोला. १०८ पके बंगला पानों के स्वरस से खरलकर सरसों के प्रमाण गोली बना ले।

श्वास कल्प —अपामार्ग भस्म १० तोला, शुद्ध हरताल तबकी, मल्लभस्म, गृहधूम १-१ तोला। सब को मिलाकर भस्म करे। फिर शुद्ध विषमुष्टी २० तोला मिला देवे और प्रवाल भष्म। (सैंहुड दुध पुटित) १ तोला मिला १ से २ रत्ती तक मधुसे लेवे। ऊपर से गुन गुना दूध पीवे। तेल खटाई, मिर्च आदि से परहेज रखे।

मन्दाग्नि Dyspepsia

समय पर उचित रूप में मल का न होना, भूख कम लगना, पेट में वायु के कारण गड़गड़ाहट होते रहना, छाती में जलन, डकारें आना, मुख में पानी भर आना, श्वास-प्रश्वास में दुर्गन्ध आना, हृदय धड़कना, सिर दर्द, नींद कम आना आदि मन्दाग्नि के आरम्भिक चिह्न हैं या होते हैं। इस रोग की निम्न चिकित्सा है।

लवणभास्कर चूर्णः—विडनमक, सैंधानमक धनियां, पीपल पीपलामूल, काला जीरा, तेजपात, नाग केशर, तालिस पत्र, अमल वेत प्रत्येक २-२ तोला, समुद्र नमक ८ तोला, काला नमक ५ तोला, काली मीर्च, जीरा, सोंठ तीनों १-१ तोला—अनार दाना ४ तोला, दालचीनी, बड़ी इलायची ६-६ माशा—इन दवाओं को महीन कपडछान चूर्ण बना नींबू के रस की भावना दें। नित्य प्रति भोजनोपरान्त ३ माशा से १ तोला तक मठा के साथ सेवन करें।

अथवा हिंग्वाष्टक चूर्ण—सोंठ, काली मीर्च, पीपल, सेंधानमक स्याहा जीरा, सफेद जीरा, अजवाइन सब सम भाग ले महीन कपड़छन चूर्ण करलें। फिर इन का ८ वां भाग हींग घी में भुनी हुई डालकर चूर्ण के साथ पीस गेरे और ३ माशा भोजन के समय ग्रास में थोड़ासा घृत मिलाकर सेवन करे।

गंधक वटीः—शुद्ध गन्धक व सेंधानमक २-२ तोला, और सोंठ ४ तोला इन तीनों को महीन पीस कपड़ छन चूर्ण बना ३ दिन तक नीबू के रस में घोटे और चने के बराबर गोलियां बना कर दिन रात में १-१ करके ४-५ बार व्यवहार में लावे।

विशूचिका (हैजा) Cholera

इस रोग में वमन और दस्त होते हैं। प्रारम्भ में दो तीन बार तो कैय व दस्त उदरमय रोग के समान होते हैं किन्तु बाद में चावलों के मांड के समान पानी की तरह दस्त और कय में पानी ही पानी निकलता है। यह प्रथमावस्था होती है किन्तु दूसरी अवस्था में, पेट में दर्द होना, प्यास अधिक लगना, मूत्र अवरोध होना, नाड़ी गति क्षीण चलना तथा रोगी कुछ २ संज्ञा हीन होने लगता है। तीसरी अवस्था में होट व नाखून कृष्ण वर्ण होने लगते हैं। हाथ परों में ऐंठन होने लगती है, व्याकुलता बढ़ जाती है, प्रलापावस्था होने लगती है। ज्वर आता है तत् पश्चात् तापमान शनैः २ गिर कर ९६ से ९०° डिगरी तक पहुँच जाता है।

विशूचिका होने के चिन्ह प्रकट होते ही दस्तों को एक दम बन्द करने के लिए कोई तीक्ष्ण मलावरोधक औषधि न देना चाहिए क्योंकि ऐसा करने पर पेट पर अफारा आ जाता है और वमन उग्र रूप धारण करने लगती हैं।

प्यास शान्त करने के लिए जौ का उबला हुवा पानी, पोदीना का अर्क और चूने का पानी थोड़ा २ कर के देना चाहिए। खाली बर्फ का टुकड़ा भी मुख में रखने से शान्त मिलती है। उलटी बन्द करने के लिए पेट पर राई की पट्टी लगानी चाहिए। पेशाब उतारने के लिए बेल के पत्ते २० नग, काली मिर्च नग १० दोनों को भली भांति पीस कर पेडू पर लेप करदें।

विशूचिकान्तक वटीः—शुद्ध लहसन, सैंधा नमक, शुद्ध गन्धक, सोंठ, काली मिर्च, पीपल। प्रत्येक २-२ तोले और भुनी हींग

१ तोला। इन सब का चूर्ण कर कपड़छन कर नीबू के रस में ७ दिन तक घोटें और बेर के बराबर गोली बनाकर रखलें। अथवा मदार की जड़ की छाल २ तोला, अदरख का स्वरस २ तोला। दोनों को घोट कर १-१ रत्ती की गोलियां बना कर छाया में सुखालो ३-४ घन्टे में १-१ गोली लो।

राजयक्ष्मा (Tuberculosis)

इस भयंकर रोग की कृपा से लाखों मनुष्य प्रति वर्ष मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं। यह बीमारी रोगी के फैफड़ों में सूक्ष्म कीटाणुओं (Tubercle Bacilli) के रूप में पैदा होती है यह कीटाणु थूक, रक्तादि में गोल डंडियों के आकार में पाये जाते हैं। जिन्हें "टोकिसन कहते हैं।

खांसी, कफ आना, कभी २ हलका ज्वर होजाना आदि इस रोग के प्रारम्भिक चिन्ह हैं। इस के बाद त्वचा में पीला पन होना किन्तु गालों पर लालिमा की आभा झलकना, हाथ पैरों में निर्बलता तथा अशक्तिता का अनुभव होना और दोपहर से ज्वर का कुछ अंश में बढ़ते रहना, पश्चात् रात्रि को कम होजाना, खांसी तथा कफ की मात्रा बढ़ जाना आदि इस रोग की दूसरी अवस्था है। प्रथम अवस्था में यदि रोगी सचेत होकर उचित उपचार कर लेता है तो जीवन की आशा होजाती है और दूसरी अवस्था में अमित द्रव्य व्यय करने, सुचारू रूप से चिकिसा करने से बच सकता है किन्तु तीसरी अवस्था में तो बिरले ही भाग्यवान दो चार प्रतिशत ही बच पाते हैं। तीसरी अवस्था में तो इस रोग के कीटाणु रोगी के फैफड़ों को खोखला कर देते हैं।

अशक्तिकता अधिक बढ़ जाती है और कफ में रक्त अथवा रक्त लालिमा आने लगती है।

यह रोग छूतवाला रोग है। इस रोग का रोगी अपने थूक को हवा बन्द वर्तन में थूके और उसे निवास स्थान से दूर पटकवा दे या मिट्टी में गहरा गाढ़ दे। यदि यह थूक इधर उधर पड़ा रहेगा तो थूक सूखने पर उसके कीटाणु हवा में उड़ कर दूसरे मनुष्यों को रोगी बना देते हैं। इस रोग के रोगी के पास उठने बैठने, उसका झूठा खाने पीने या केवल मुख की श्वास की हवा लगने आदि से भी यह रोग होता देखा गया है।

यह रोग प्रायः अधिक चिंतित रहने, सामर्थ्य से अधिक शारीरिक परिश्रम करने, अधिक वीर्य क्षय करने, जुकाम विगड़ने, अधिक समय तक ज्वर ग्रस्त रहने, विषैले और दूषित वातावरण वाले स्थानों में रहने तथा क्षय रोगी के संसर्ग आदि में रहने के कारण यह रोग होता देखा गया है। मादक वस्तुओं का अधिक सेवन तथा उपदंशादि रोग होने पर भी क्षय रोग होना संभव है।

यह रोग ४ प्रकार का होता है। (१) हड्डी तथा जोड़ों का क्षय (Rone T. B.) (२) गले की लसिका ग्रंथियों का क्षय (Scrofulia) (३) आँतों का क्षय (Intestinal T. B.) और (४) मेद तथा मस्तिक आवरण का क्षय (Tubercular Meningitis) यद्यपि रोग एक ही है और कारण भी एक ही प्रकार के प्रायः मिलते जुलते होते हैं किन्तु रोग होने के स्थान पृथक २ हैं और इसी कारण नामों में भिन्नता पाई जाती है।

गल का क्षय बहुत कम पाया जाता है और यदि होता है तो हम उसे क्षय रोग नहीं समझ पाते। दूसरा क्षय अस्थि वाले

का आक्रमण प्रायः रीढ़ की अस्थि पर होता है। कुछ समय निरंतर बने रहने पर रीढ़ की हड्डी के जोड़ गल कर लुप्त होजाते हैं और रोगी कुबड़ा होने लगता है यानी उस की पीठ झुकने लगती है। इस प्रकार कमर का बाँस टूटने से रीढ़ की हड्डियों के अंतर्गत गुदा पिचक जाय, तो बाँहें या टाँगे बेकार होजाती हैं। यदि रीढ़ के निचले भाग में इस रोग का आक्रमण होता है तो मूत्राशय तथा निचली अँतड़ियों में दर्द होने लगता है। मूत्र अधिक आने लगता है और पुट्ठों में दर्द होजाता है।

आंतों के क्षय में कब्ज रहना, मसूड़े व दांतों से पानी आना खट्टी डकारें आना, जुबान पर छालों की शिकायत रहना, कभी २ ज्वर आना, मल पतला आना, त्वचा रूखी २ दिखाई देना, नाखून सफेद और उनपर लकीरें नजर आना आदि प्रारम्भिक रूप होते हैं।

इस रोग के रोगी को चाहिए कि वह शारीरिक परिश्रम कम करे सदैव प्रसन्न चित्त रहे। खुली स्वच्छ वायु का सेवन करता रहे। वस्त्र और शरीर को स्वच्छ रखे, पौष्टिक पदार्थों का व्यवहार करे। भोग विलास से दूर रहना चाहिए।

इस रोग में औषधि रूप में स्वर्ण, मोती, अभ्रक भस्म, च्यवनप्राश, छाग घृत, लक्ष्मी विलास रस, राजमृगांग रस, हीरा भस्म, स्वर्ण बसन्त मालती आदि आयुर्वेदिक उत्तम औषधियां हैं।

प्राणिज औषधि

—:※:—

अधिकांश में सर्व साधारण यही अनुमान करते आये हैं कि रोगों का उपचार केवल जड़ी बूटियों द्वारा ही किया जा सकता है किन्तु यह बात नहीं है। कितने ही रोगों में तो पशु पक्षियों के मल मूत्र अथवा उनके अवयवों की आवश्यकता हुआ करती है। पश्चिमी चिकित्सा शास्त्र में ऐसी औषधियों की अधिक प्रधानता रहती है और हमारे आयुर्वेद शास्त्र में भी इस का थोड़ा बहुत उल्लेख अवश्य पाया जाता है किन्तु व्यवहार रूप में कम। यहां हम पाठकों कि ज्ञातव्य हितार्थ संक्षिप्त रूप में कुछ प्राणिज औषधि वर्णन कर रहे हैं।

हड्डी:— नाड़ीव्रण और भगन्दर में तेंदुआ की हड्डी पानी में घिस कर लेप करें। अस्थि व्रण और गलित कुष्ट पर मनुष्य की हड्डी महीन पीस कपड़ छन कर सूखी लगावे। नासूर में कछवे की पीठ की हड्डी घिस कर लगावे।

चूहेकी लेंडी:— छोटे बच्चों का पेशाब पखाना बन्द होने पर पानी में पीस कर नाभी पर लेप करे। प्रमेह में चूहे की २-३ लेंडी दूध के साथ लें

मकड़ी का जाला:— यह जाला तारों की सूरत का न लेकर सुफेद चाँदनी के आकार का काम में लें। चोट लगने से रक्त निकल रहा हो तो यह जाला चिपका दो। नहरू रोग में पान के गुड़ के साथ खानेको दें। दिन भर उपवास करें और शाम को मीठा खाना खायें नमकीन न खाये। चौपायों के लग जाने पर

घाव होकर कीड़े पड़ गये हों तो जाला रोटी के साथ खाने को दें। चातुर्थिक ज्वर में गुड़ में मिला कर दें।

मुर्गी की बींटः— पके हुये फोड़े को फोड़ने के लिये मुर्गी या कबूतर की बींट का लेप करे।

काक जंघा कीटः— काक जंघा कीट नामक एक वनस्पति होती है और इस में जो एक कीड़ा होता है। उसे खिलाने से बच्चे का सूखा रोग जाता रहता है।

पेद्र्ः— बकरे के पेट में से निकलती है। यह धातु वर्धक प्रमेह नाशक, वात शूल, मेद रोग आदि का नाश होता है। यह केशर, घी, अदरक का रस, पीपल, जायफल आदि प्रथक २ अनुपान के साथ प्रथक २ लाभ दिखाता है।

मोर पंखः— हिचकी और रान्ति पर मोर पंख की राख और पीपल, शहद के साथ दें। हर प्रकार के विष उतारने के लिए तम्बाकू के साथ चिलम में रख कर पीवें।

गौ मूत्रः— हर प्रकार की खाज, खुजली को प्रथम गोबर से रगड़ कर साफ करें और फिर मूत्र से धोवें या लगावें तो लाभ हो। क्षय तथा पांडू रोग पर पुराने लोह कीट को बबूल अथवा बहेड़े की लकड़ी के कोयलों में तपा २ कर १०० बार गौ मूत्र में बुझावें और फिर खरल करले। एक रत्ती चूर्ण शहद पीपल के साथ देवे इसी को मंडूर कहते हैं।